॥ श्री गणेशाय नमः ॥

सफलता एक सफर है मंजिल नहीं

बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय
झांसी

हिन्दी
में पी. एच. डी.
उपाधि हेतु प्रस्तुत
शोध प्रबन्ध
2004-2005

शोध निर्देशक
डॉ. एन. डी. समाधिया
डी. लिट्
प्राचार्य- डी.वी.कालेज
उरई

अनुसंधित्सु
राकेश कुमार द्विवेदी
सुशील नगर, उरई
जिला-जालौन

शोध-निर्देशक का प्रमाण-पत्र

मुझे प्रमाणित करते हुये हर्ष है कि राकेश कुमार द्विवेदी ने 'निर्मल वर्मा के कथा-साहित्य में साम्प्रतिक सन्दर्भ एवं दृष्टि' विषय पर अनुसन्धान-कार्य सम्पन्न कर लिया है। शोध-कार्य के उपक्रम में अनुसंधित्सु निरन्तर मेरे सम्पर्क में रहकर मेरा दिशा-निर्देश प्राप्त करता रहा है। अनुसंधित्सु ने बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय झांसी शोध-परिनियमावली के समस्त उपबन्धों का पालन किया है। यह सर्वथा मौलिक कार्य है। शोध-लक्ष्य तक पहुंचने के लिये जिन उपजीव्य तथा उपस्कारक ग्रन्थों का सहयोग लिया गया है, उनका साभार उल्लेख करके अनुसंधायक ने श्रेष्ठ सारस्वत परम्परा का पालन किया है। मुझे विश्वास है कि यह शोध-कार्य हिन्दी अनुसंधान क्षेत्र में अपनी उपयोगिता सिद्ध करेगा। मैं अनुसंधित्सु के मंगलमय उज्वल भविष्य की कामना करता हूं।

डा. एन. डी. समाधिया
डी. लिट्
प्राचार्य
दयानन्द वैदिक स्नातकोत्तर महाविद्यालय-उरई

स्वस्ति

निर्मल वर्मा का कथा-संसार जीवन को तर्कसंगत, विश्वसनीय तथा आधुनिक दृष्टिकोण से देखने और उसके अंतरंग पत्र को गवेषित तथा बहिरंग परिवेश की सूक्ष्म पड़ताल करता हुआ यथार्थ की समस्तता के प्रति आग्रही है। देश, काल और परिस्थिति के परिप्रेक्ष्य में परिवर्तन का शाश्वत मूल्य उनकी रचना धर्मिता की प्राणवन्त सत्ता है। उनकी सृजन-प्रक्रिया बदलते युगबोध की प्रतीति से परिप्लावित है। औद्योगीकरण तथा उपभोक्तावादी मनोभूमि में जीवन-लक्ष्य में परिवर्तन किये। सोच और संवेदनाओं को नये आयाम उपलब्ध हुये। ऐसी परिस्थितियां सृजित हुई कि कुछ भी स्वीकार करने, कुछ भी खरीदने और कुछ भी बेच डालने की प्रवृत्ति द्वंद्वात्मक भौतिकवादी समाज की युग-चेतना बन गयी, जिसे निर्मल ने भोगे हुये यथार्थ के रूप में लोकार्पित किया है।

निर्मल वर्मा के सृजन-जगत में साम्प्रदायिक मानवीय सरोकारों की ईमानदार उपस्थिति है। मानवीय चिन्तन की जटिल विविधतायें तथा भाव-संप्रेरित संवेगों की परिव्याप्ति अद्यतन जीवन की विकासगामी उपक्रम की दस्तावेज है, जिसके माध्यम से आधुनिकता के विविध आयाम पारदर्शी रूप में दृष्टिगोचर होते हैं। वस्तुतः आधुनिकता किसी सरल विचार-धारा या दृष्टिकोण के विकास का रूपान्तरण मात्र नहीं है, प्रत्युत वह जटिल एवं संग्रन्थित मानसिकता और जीवन-मूल्यों से उद्घाटित होने वाली प्रज्ञापरक वैज्ञानिक चेतना है। आधुनिकता की ऐतिहासिक प्रस्थान बिन्दु अठारहवीं शताब्दी भी दो महत्वपूर्ण घटनायें- इंग्लैण्ड की क्रान्ति और फ्रांस की प्रजातान्त्रिक क्रान्ति है। वैज्ञानिक और तकनीकी विकास ने उत्तरोत्तर आधुनिक उपलब्धियों से वैश्विक संस्कृति में चमत्कारिक परिवर्तन किये और यह अवधारणा निरर्थ-सी हो गयी कि आधुनिकता परम्परा के प्रति एक यथार्थवादी दृष्टि का नाम है। वर्मा जी ने मानवीय सम्बन्धों को समकालीन परिवेश में ही चित्रांकित करना चाहा है। विदेश प्रवास, सुरा सुंदरी आदि का चित्रण करते हुये उन्होंने कथा साहित्य को अभिनव अभिरूपों में विरचित कर दिया है, जो प्रतिक्रियावादी तत्वों के आधुनिकतावादी अंशों को उभारते हैं। वैयक्तिक प्रेम अर्थात नर-नारी के रागात्मक सम्बन्धों की अन्तर्निगूढ़ मूलवृत्ति को आज 'आधुनिक' शब्द से ही निरूपित किया जा सकता है। इस प्रकार निर्मल वर्मा मात्र व्यक्ति चेतना के ही नहीं, सम-दृष्टि चेतना के कथाकार हैं। उनके कथा-साहित्य का मूल्यांकन परम्परित प्रतिमानों के आधार पर नहीं किया जा सकता। वस्तुतः उनके कथा-साहित्य के पीछे परिवेशात्मक जीवन की गहरी समझ और सूझ का कठोर अनुशासन है। यह साहित्य साम्प्रतिक सन्दर्भ एवं दृष्टि सुगुम्फित किये हुये है, जिसके माध्यम से बहुधा रूमानियत और अस्तित्व-बोध का अद्भुत सामन्जस्य सम्पन्न हुआ है। निर्मल वर्मा और साम्प्रतिकता के परिपार्श्व समेटे हुये हैं। उसमें सबसे प्रभविष्णु कोई बात है तो वह आधुनिकता के क्रोड़ में प्रतिष्ठित साम्प्रतिकता ही है। साम्प्रतिकता के विविध परिदृष्य-चिन्तन और भावप्रवणता,

आन्तरिक सौन्दर्यबोध और देहात्मबोध, बन्धनकारी राग और तनाव से मुक्ति देने वाला रोमाण्टिक विराग आदि सम्पूर्ण गरिमा के साथ विद्यमान हैं। वर्मा जी ने परम्परा से उठकर मानवीय चेतनाओं को नये प्रकार से तरासने की चेष्टा की है। एक ओर जहां ऐन्द्रिय भोगों के प्रति चेतना के सम्पूर्ण समर्पण के चित्र हैं, तो दूसरी ओर भोग-क्लांत वितृष्ण मनोभूमि को आत्मकेन्द्रित करने की प्रशंसनीय चेष्टायें।

वस्तुतः आधुनिकता की कुक्षि से प्रसवित होती साम्प्रतिकता दुरूह, जटिल और संग्रन्थित इकाई है। कहा जा सकता है कि आज की हवा में सांस लेने वाला हर प्राणी प्रयोगधर्मिता की सह अस्तित्ववादी संचेतना से जितना जुड़ा है, उतना ही पुरानेपन को नकार कर साम्प्रतिक नव्यता के प्रति आग्रहशील हुआ है। बहुत ही स्पष्ट है कि निर्मल वर्मा की कहानियां और उपन्यास समाधान के लिये नहीं हैं, बल्कि यथार्थ के भोगे हुये क्षणों की अभिव्यक्ति हैं। कथाकार ने मानव-मन भी वासना और परिवेश में रची-बसी सम्वेदनाओं को अपने कथा-संसार में एकरूपता प्रदान की है। लगता है मन के भीतर मन परत-दर-परत कुछ कहता चला गया है, जिसे सुलझाया तो नहीं जा सकता, किन्तु एकान्तिक क्षणों में अनुभवगम्य अवश्य बनाया जा सकता है। इस प्रक्रिया में साम्प्रतिकता के विभिन्न परिप्रेक्ष्य स्वाभाविक रूप से आकार ग्रहण करते गये हैं।

प्रस्तावित शोध-प्रबन्ध में निर्मल वर्मा के कथा साहित्य को साम्प्रतिक सन्दर्भ एवं दृष्टिबोधीय आयामों में परिशीलित किया गया है। प्रबन्ध में कुल छह अध्याय हैं। प्रथम अध्याय में आधुनिकता के समय-सापेक्ष आधार के साथ ही आधुनिक तथा साम्प्रतिक संवेदना के बीच बारीक रेखा को समालोचित किया गया है। आधुनिक वर्ग-चेतना तथा साहित्य के संदर्भ में आधुनिकता का भी शोधपरक अवगाहन किया गया है। इस अध्याय में बदहाली युग चेतना में वैचारिक तथा ऐतिहासिक परिपार्श्व लिये प्रवाहित साम्प्रतिकता की धारा का भी अनुशीलन किया गया है।

द्वितीय अध्याय में निर्मल वर्मा के कथा साहित्य-कहानियों तथा उपन्यासों का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया गया है।

प्रबन्ध का तृतीय अध्याय निर्मल वर्मा के कथ्य में साम्प्रतिक सन्दर्भों का अनुसंधात्मक अनुशीलन करता है। इसके अन्तर्गत साम्प्रतिक युग-बोध, मूल्यहीनता की स्थिति, सामाजिक मूल्यों में बदलाव, सम्बन्धों में नये आयाम, यथार्थ के प्रति बदला दृष्टिकोण, यथार्थ के प्रति लेखकीय तटस्थता, राष्ट्रीय-अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिमानोन्मुखी चिन्तन, साहित्य के कथ्य में नये मूल्यों की संप्रेषणा तथा कालधर्मी कथ्य-विधान- का निरूपण किया गया है।

प्रबंन्ध के चतुर्थ अध्याय में निर्मल वर्मा के कथा शिल्प में साम्प्रतिक सन्दर्भों की पड़ताल करते हुये भाषिक संरचना और नया शिल्प, सांकेतिक प्रभावान्विति, शिल्प और प्रतीक विधान, परिवेशगत जीवन्तता और भाषिक संरचना की अंतरंगता, जटिल मनोजगत को सूक्ष्म रूप से समझते तथा उसे अभिव्यक्त करने की क्षमता तथा अंग्रेजी वाक्य विन्यास के प्रभाव से संबंधित परिबोध का प्रत्यक्षीकरण किया गया है।

पंचम अध्याय में राजनैतिक, सामाजिक, साहित्यिक तथा युग धर्म स्तर पर कथ्य और शिल्प की दृष्टि से निर्मल वर्मा के कथ्य तथा शिल्प के ध्रुवान्तं का गवेषक अध्ययन किया गया है।

निर्मल वर्मा के कथा साहित्य में प्रबन्ध के षष्ठ अध्याय में प्रभाव सृष्टि एवं प्रभाव दृष्टि को शोधपरक अनुशीलन के साथ इस शोध-कार्य की उपलब्धि तथा महत्व पर प्रकाश डाला गया है। इस अध्याय में साम्प्रतिकता बोधीय आयामों के परिप्रेक्ष्य में निष्कर्ष मूलक स्थापनायें भी प्रस्तुत की गयी हैं।

अंत में परिशिष्ट के अन्तर्गत उप-जीव्य तथा उपस्कारक ग्रन्थों अनुसंधान कार्य में प्रयुक्त पत्र-पत्रिकाओं की सूची संलग्न है।

मैं यह शोध-कार्य सम्पन्न कर सका- इसका सम्पूर्ण श्रेय मेरे श्रद्धेय गुरुवर डा. एन. डी. समाधिया को है। यह उनके शुभाशीष का ही प्रतिफल है कि निर्मल वर्मा के कथा-साहित्य में साम्प्रतिकता जैसे तर्काग्रही विषय पर मैं जटिल शोध-यात्रा करके लक्ष्य तक पहुंच सका। इस महत्वपूर्ण कार्य में मैं अपने पिता डा. दिनेश चंद्र द्विवेदी तथा मां श्रीमती राजेश्वरी द्विवेदी के कदम-कदम पर बढ़ाये गये साहस को आजीवन विस्मृत नहीं कर सकता। मैं धन्य हूं कि ऐसे माता-पिता मिले जिन्होंने अपनी भूमिका को सदैव सकारात्मक तरीके से निभाया। दैनिक जागरण के ब्यूरो चीफ श्री एस. पी. सिंह चौहान तथा डा. गीता सिंह चौहान ने भी इस कार्य में उत्साह बढ़ाने वाला आशीष दिया। इस कार्य की सफलता के लिये उनका हाथ सदैव मेरी पीठ पर रहा। पत्रकारिता के क्षेत्र में उंगली पकड़कर आगे बढ़ाने वाले संजय श्रीवास्तव का सहयोग हर पग पर मेरे साथ रहा। प्रिय अतुल त्रिपाठी और उनसे भी प्रिय अनुज त्रिपाठी ने शोध कार्य को मुकाम तक पहुंचाने के लिये मुझमें ऊर्जा का संचार किये रखा। इनका दृष्टिकोण निःसंदेह सराहनीय है। अंत में मैं अपने कुछ अन्य मित्रों के बारे में जरूर कहना चाहूंगा जिन्होंने इस प्रयास को लेकर सच्चे मित्र का चरित्र निभाते हुये स्वयं को गौरवान्वित महसूस किया। पत्नी किरण के सहयोग को भूलना धृष्टता होगी। पीछे रहकर भी उन्होंने आगे बढ़ाने का जो रास्ता दिखाया और किसी असुविधा को मेरे सामने नहीं आने दिया इसलिए उनका मैं सदैव ऋणी रहूंगा।

अनुसंधित्सु

राकेश कुमार द्विवेदी

अनुक्रमणिका

क्रमशः

प्रथम अध्याय

निर्मल वर्मा के कथा-साहित्य में साम्प्रतिक संदर्भ एवं दृष्टि

::-:: प्रथम अध्याय ::-::

विषय प्रवेश :-

आधुनिकता एक कालवाची शब्द है। काल का कोई ठोस आकार नहीं होता। अतः उसके स्वतंत्र रूप का साक्षात्कार भी कठिन है। पररिवेश के साथ रखकर उसकी अवधारणा स्पष्ट हो सकती है। परस्पर आकर्षण-विकर्षण और संघात से जीवन और प्रकृति में जो परिवर्तन होते हैं, उनका नैरन्तर्य ही 'काल' का बोध कराता है। इस अर्थ में 'काल' अनुभव के साथ एकाकार हो जाता है। हमारे अनुभव में ही 'काल' की सत्ता है। आधुनिकता का सम्बन्ध किसी न किसी रूप में 'वर्तमान' के साथ जोड़ा गया है। वर्तमान अर्थात् वर्तमान अनुभव से। यहां 'वर्तमान' शब्द का संकीर्ण शाब्दिक अर्थ लेने वाले 'वर्तमान' को तात्कालिकता से जोड़ सकते हैं। पर आधुनिकता के संदर्भ में 'वर्तमान' शब्द का बड़ा व्यापक अर्थ लेना होगा और इसका काल विस्तार काफी लम्बा खींचना पड़ेगा। वस्तुतः आधुनिकता का सम्बन्ध हमारे अनुभवों से है, जिन्हें हम वैज्ञानिक औद्योगिक सभ्यता के अनुभव कह सकते हैं।[1] इस वैज्ञानिक-औद्योगिक सभ्यता का जन्म पश्चिम में बहुत पहले हो चुका था, पर बीसवीं शताब्दी से तो यह सम्पूर्ण विश्व में छा गयी। विज्ञान ने पहली बार रूढ़ियों और रहस्यमय चमत्कारों से अलग होकर जीवन और जगत को एक यथार्थ और वैज्ञानिक दृष्टि से देखा। सृष्टि के अनेक रहस्यों का, जिन्हें मनुष्य दैवी चमत्कार समझता था, विज्ञान ने उद्घाटन किया। उसने मनुष्य को एक तार्किक, संतुलित और स्वतन्त्र दृष्टि प्रदान की। विज्ञान के आविष्कारों ने औद्योगिक तथा उपभोक्तावादी संस्कृति को जन्म दिया। डार्विन ने बहुत पहले "Theory of evolution" द्वारा मनुष्य की धार्मिक भावनाओं को झकझोर दिया था। मार्क्स और फ्रायड जैसे विचारकों ने उसे पुष्ट और गतिशील किया। "ईश्वर, रहस्य तथा धर्म की रूढ़ियों से अलग मानवीय सामर्थ्य में विश्वास आधुनिकता का एक लक्षण है। काल संवाह में आधुनिकता का प्रवाह निरन्तर साम्प्रतिक सन्दर्भों का सृज करता हुआ समकालीन परिवेश का सूत्रधार बना रहता है। उसका उत्स प्रगैतिहासिकता में, वर्तमान साम्प्रतिकता में और भविश्यगत् नितनूतनता में सन्निविष्ट है।"[2]

मार्क्स के द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद ने यदि मानवीय इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या की, तो फ्रॉयड के मनोविश्लेषण ने मनुष्य को उसके मनोजगत के अनेकानेक रहस्यों से परिचित कराया। इन सभी महत्वपूर्ण प्रभावों ने मानव के सम्पूर्ण अस्तित्त्व में हलचल मचा दी। दैवी चमत्कार, रहस्य और अन्धश्रद्धा का युग समाप्त हुआ। मनुष्य की भावुकता कम हुयी और एक नये प्रकार की बौद्धिक जागरूकता का विकास हुआ। "इस नवीन बौद्धिक जागरूकता ने परम्परागत रूढ़ियों

1- रचना के सरोकार- विश्वनाथ तिवारी, पृष्ठ 69

2- हिन्दी साहित्य की कालयात्रा- डॉ. एन. डी. समाधिया- पृष्ठ 41

के स्थान पर यथार्थ को महत्त्व दिया। नैतिकता के परम्परागत मानदण्ड टूटने लगे। श्लील-अश्लील को नयी दृष्टि से देखा जाने लगा।''[1]

(क) आधुनिकता :-

आधुनिकता का स्वरूप निर्धारण कालगत सातत्य की सापेक्षता से सिद्ध होता है। वस्तुतः क्रियाओं प्रतिक्रियाओं के जटिल जाल को बनाना और धुंधलाना मानव जीवन की एक जीवन्त और अनिवार्य शर्त है। मनुष्य काल की सतत प्रवाहमान धारा में अवगाहन करता हुआ यद्यपि वर्तमान से प्रतिबद्ध बना रहता, फिर भी भूत और भविष्य के खिंचाव से जकड़ा हुआ महसूस करता है। भूत जहां अवचेतन से व्यक्ति की कार्यपद्धति की प्रेरणा का पुष्ट आधार बनता है वहीं भविष्य आशावादी दृष्टि को लेकर सकारात्मक सिद्ध होता चलता है। इस प्रकार वर्तमान के आगे और पीछे दोनों छोर मनुष्य के क्रमिक विकास में सफल सोपान है। आज के परिवेश के दबाव में जूझता मनुष्य विगत जीवन के संदर्भों को वर्तमान की प्रासंगिकता से जोड़ लेना चाहता है। मनुष्य की इस मानसिक यात्रा को हम आधुनिकता और परम्परा के बहुत निकट पाते हैं। परम्परा एक विकासशील प्रक्रिया है, जिसे मानव चेतना के विकास की मानसी सृष्टि कहा जा सकता है।

पाश्चात्य विचारक हारीशां के अनुसार परम्परा को नपे-तुले शब्दों में परिभाषित किया गया है- "A body of customs, beliefs skills of saying handed down from generation age to age."[2]

अर्थात् रिवाजों, आस्थाओं, दक्षताओं या कहावतों का वह आकार जो पीढ़ी से पीढ़ी अथवा युग से युग को हस्तान्तरित किया गया हो। परम्परा एक सहज विरासत नहीं है, उसमें संशोधन होकर ही आधुनिकता का अनिवार्य संदर्भ तब बन जाता है। जब उसे मथकर समसामायिक जल से निर्मल बनाया जा सके।

डा. नलिन विलोचन शर्मा परम्परा का व्यापक अर्थग्रहण करते हुए मानव की रचनाधर्मिता में उसका ऐतिहासिकता महत्व प्रतिपादित करते हैं- ''परम्परा का व्यापकतम अर्थ है, वे सारी संस्कारित रूढ़ियां, साहित्यिक मान्यताएं और अभिव्यंजना की प्रणालियां- जो एक लेखक को अतीत से प्राप्त होती हैं।''[3]

परम्परा का प्रमुख लक्षण और विचारधारा परक प्रतिमान डा. शर्मा ने संस्कारगत रूढ़ियों साहित्यिक मान्यताओं और अभिव्यंजना की प्रणालियों में अनुशीलित किया है। होता यह है- कि परम्परा के विकास की अनिवार्य रेखा अतीत से वर्तमान तक सतत, सहज गतिमान बनी रहती है जो सेफ टी. सिप्ले ने यही कहा है- "The essential line of development coming to usxtout of the past..........in order way."[4]

परम्परा से आशय ऐसे भाव-बोध से है जो अनुकरणशील हो, परिपक्व हो और जीवन दर्शन से समंजित हो। चूंकि मानव चिन्तनशील प्राणी है इसलिए उसने आधुनिक काल से जीवन तथा जगत के विषय में चिंतन कर उत्कृष्टतम उपलब्धियां संजोते हुए जीवन्त परम्परा, उनके रहस्यों का उद्घाटन किया है। इसी चिंतन और उससे उत्पन्न विचारधाराओं के फलस्वरूप विश्व की

1- साहित्य चिन्तन- डॉ. सुधेश, पृष्ठ 62
2- Dictionary of literary terms, page no. 381
3- साहित्य का इतिहास दर्शन, पृष्ठ 276
4- Dictionary of world literary, p. 585

विभिन्न संस्कृतियां और सभ्यताओं ने परम्परा से ही अभिनव रूप ग्रहण करते हुए मानव जीवन के सुसंचालन का मार्ग प्रशस्त किया है। डा. विद्यानिवास मिश्र का परम्परा विषयक दृष्टिकोण इस दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण है। उनका मत है- 'परम्परा का अर्थ है...........जो श्रेष्ठ से भी श्रेष्ठतर हो, जो कभी भूत न हो और न भविष्यं, जो सतत वर्तमान हो, जो कभी सिद्ध न हो-निरन्तर साध्य हो।'[1] परम्परा का भारतीय संस्कृति के मूल में मुख्य उपादान आस्थात्मक भावना, नैतिकता, धर्म परायणता त्याग आदि से प्रतिबद्ध है। सामान्य रूप से सामाजिक परम्परायें, संस्कृति और सभ्यता पर टिकी हुयी हैं। इनमें जलवायु और देश-विदेश के निवासियों के द्वारा परिवर्तन होते रहते हैं। दीर्घकाल से ही चिन्तकों के चिन्तन का आधार आध्यात्मिक ही रहा है। लेकिन आज के आधुनिक काल में युद्धों की विभीषिका, जन आन्दोलनों के बाहुल्य, आर्थिक विषमता, निर्धनता, मध्य वर्ग की संकटकालीन स्थिति और धार्मिक सामाजिक रुढ़िवादी की बेड़ियों में ग्रस्त मानव जीवन में विभिन्न भारतीय और पाश्चात्य विचारकों को जीवन दर्शन परक चिन्तन के लिए विवश किया है। आधुनिक बहुआयामी अभिव्यंजना है। वह आज के बीच के साथ एक मिलीजुली ऐसी प्रतिक्रिया है, जो समाज, इतिहास दर्शन आदि का विश्लेषण कर मानव जीवन को एक वैज्ञानिक दृष्टि प्रदान कर रही है। वस्तुतः आधुनिकता के ग्रहण के लिये कालगत सातत्य के समानान्तर उसे ग्रहण करना न केवल आवश्यक है वरन अनिवार्य बन गया है। पाश्चात्य विचारधाराओं के सम्पर्क में आने से आधुनिकताबोधीय चरणों का विकास भारत में बहुत अधिक हुआ। अपनी पुरानी विरासत को नये अर्थ सन्दर्भ देने के लिये वैज्ञानिक चेतना का प्रश्रय ग्रहण करना पड़ा। विपिन कुमार अग्रवाल ने आधुनिकता के पहलुओं पर विचार करते हुए सटीक विवेचन किया है।

आधुनिकता की प्रकृति सूक्ष्म है। इसकी कोई स्थूल, पूर्व निश्चित और अपरिवर्तनीय दिशा नहीं है जिसे व्यापक ऐतिहासिक दृष्टि से खोजा जा सके। परमाणु की तरह इसके पास कोई यादगार नहीं है, बल्कि हम कह सकते हैं कि आधुनिकता मूलतः एक खण्डित घटना है।

इसका बीती हुयी घटनाओं से दूर का सम्बन्ध है।[2] यथार्थतः आधुनिकता के परिवेश का बहुत बड़ा योग है और परिवेश काल के समान्तर गतिशील मानवीय विकास की सांस्कृतिक प्रक्रिया से संघटित है। आधुनिकता एक संवेदना है जो समसामयिक आदमी के दुख दर्द से जुड़ने में उपजती है और अभिनव मार्ग का द्वार खोलती है। डा. इन्द्रनाथ मदान ने आधुनिकता की प्रकृति पर टिप्पणी करते हुए लिखा है- 'आधुनिकता को अपरम्परागत परम्परा भी कहा जाता है।

ऐतिहासिक अनिरन्तरता का भी नाम दिया जाता है तथा कभी इसे अन्त के बीच की दृष्टि से पहचानने की कोशिश भी की जाती है।'[3] सच तो यह है कि आधुनिकता अपनी संरचना में अनेक विकल्पों को संजोये रखती है। इस प्रकार वह एक प्रक्रिया होने के कारण एक से अधिक दौरों से होकर गुजरी है। जब विचारक आधुनिकता को समझने के लिए इन अन्तर्विरोधों से जूझता है, तब आधुनिक प्रकृति के अन्तर्द्वन्द्वों को वह आत्मसात करता चलता है और वह अनुभव करता है कि इसमें एक और वैयक्तिता है तो दूसरी ओर सामाजिकता, एक ओर मानव नियति का एहसास है, तो दूसरी ओर आत्मसंघर्ष की निकट स्थिति है। इसे कहीं समसामयिक माना गया है तो कहीं समसामयिकता का अतिक्रमण करने वाली मूल्य दृष्टि। कहीं इसे एक कालखण्ड में व्याप्तबोध की

1- परम्परा बन्धन नहीं, पृष्ठ 11

2- आधुनिकता के पहलू, पृष्ठ 19

3- आधुनिकता और हिन्दी साहित्य, पृष्ठ 19

स्वीकृति माना गया है, तो कहीं आधुनिकता और समसामयिकता का अन्तर ही गड़बड़ा गया है।[1]

तत्त्वतः आधुनिकता जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में पृथक-पृथक अर्थ संदर्भ रखती है और वह संस्कृति तथा सभ्यता के पारस्परिक अतिक्रमण का एक सहयोग बिन्दु है। आधुनिकता किसी सरल विचारधारा या दृष्टिकोण के विकास का रूपान्तरण मात्र नहीं है। वरन जटिल एवं संग्रथित मानसिकता और जीवन मूल्यों से उद्घाटित होने वाली प्रश्नानुकूल वैज्ञानिकता चेतना है।

आधुनिकता का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य 18 वीं शताब्दी की दो महत्वपूर्ण घटनाओं से समझा जा सकता है। वे घटनाएं हैं- इंग्लैण्ड की औद्योगिक क्रान्ति और फ्रांस की प्रजातांत्रिक क्रान्ति। भारत में आधुनिकता का प्रारम्भ सन् 1857 की धार्मिक सामाजिक जागृति से माना जाता है। वैज्ञानिक और तकनीकी विकास ने उत्तरोत्तर आधुनिक उपलब्धियों की गिरफ्त में जकड़ लिया है। फिर भी वह अपनी चेतनाओं में आधुनिक नहीं हो सका है। उपयुक्त ही कहा गया है- भारत अभी पश्चिमी सभ्यता से पूर्णतया ग्रस्त नहीं हो पांया है जिस तरह पश्चिमी देश हो रहे हैं। अतः यहां वे स्थितियां उत्पन्न नहीं हो पायी हैं जो पश्चिम में हैं।[2] वस्तुतः आधुनिकता की कोई सार्थकता है तो वह मानवीय संवेदनशीलता से है। स्वातंत्र्योत्तर भारत का नवलेखन आधुनिकता को एक दृष्टि के रूप में गहराई प्रदान करता है तो दूसरी ओर उस दृष्टि को सृजनात्मक साहित्य में एक क्रान्तिकारी अर्थवत्ता को प्रदान करता है। इस प्रकार सन् 50 के बाद का साहित्य एक प्रकार से आधुनिकता-बोध और उसकी सृजनात्मकता, समानान्तरता का है। आधुनिकता परम्परा के प्रति एक यथार्थवादी दृष्टि का नाम है। वास्तविकता यही है कि परम्परा और आधुनिकता एक दूसरे के सहयोगी ही नहीं वरन एक दूसरे के विवेचन करने वाले तत्व भी हैं। जिस प्रकार वर्तमान परम्परा पर छाये अवधि के कुहासे को हटाकर अपनी स्वचेतना से प्राण प्रतिष्ठा करता है, उसी प्रकार अतीत वर्तमान की संवेदात्मक दृष्टि को वह बिन्दु देता है, जहां से उसे अपनी आधुनिकता की यात्रा प्रारम्भ करनी है। और वह बिन्दु अपनी सम्पूर्ण प्रासंगिक उपलब्धियों के साथ वर्तमान में संक्रमिक हो जाता है। डा. धनंजय वर्मा ने आधुनिकता और परम्परा को जोड़ते हुए लिखा है- आधुनिकता क्लासीकल परम्परा के प्रति जागरूकता अपनाती है- अपनी परम्परा से नया सम्बन्ध ज्ञान और उस संदर्भ में अपनी प्रतीति ही आधुनिकता की सार्थकता है।[3] आधुनिकता और परम्परा का सापेक्ष दृष्टि से बहुत महत्व है। समग्रतः कहा जा सकता है कि परम्परा के प्रति निर्मम और यथार्थवादी दृष्टिकोण ही परम्परा के प्रति आधुनिकता का मूलभूत विरोध सूत्र है। यही कारण है कि परम्परा और आधुनिकता में एक जीवंत संवाद स्थिति को स्वीकार करना आवश्यक हो गया है।

आधुनिकता हमें एक सीमित अर्थ में मौलिक बाती है तो परम्परा इस मौलिकता को कालगत सातत्य की विश्वनीयता का समर्थन देती है। आधुनिकता को अपने वृहतर और रचनात्मक प्रायोजन सिद्धि के लिए परम्परा का मंथन और उसके उपयोगी अंशों का ग्रहण अत्यावश्यक है।

1- आधुनिकता का समय सापेक्ष आधारः-

आधुनिकता सम्बन्धी विचारधारणाओं को काल सापेक्ष चिन्तन सूत्रों में बांधना अनिवार्य है।

1- आधुनिकता और समकालीन रचना संदर्भ, पृष्ठ 18 (सं. नरेन्द्र मोहन)

2- आधुनिकता बोध और स्वातंत्र्योत्तर कहानी सुरेश चंद्र शर्मा मेरठ विश्वविद्यालय का प्रकाशित शोध प्रबंध

3- हस्तक्षेप, पृष्ठ 215

आधुनिकता का सम्बन्ध अपने युग के समसामयिक संदर्भों से भलीभांति जुड़ा हुआ है। इसीलिए काल सापेक्ष परिपुष्ट विचारधारा आधुनिकता में भी चिनत्य बनी हुयी है। आधुनिकता अपना प्राणरस अपने समसामयिक वर्तमान से करती रहती है। डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी ने बहुत ही स्पष्ट कर दिया है- 'आधुनिकता देशकालातीत धारणा हो ही नहीं सकती। परम्परा को ही आधार मानते हुए वह अपने परिवेश के प्रति आत्यांकित रूप से प्रतिबद्ध है। वह अपने आयाम को कितना ही विस्तृत कर ले उसकी अर्थवत्ता अपने परिवेश से जुड़ने में है।'[1] कालातीत होने का अर्थ यही हो सकता है कि हम किसी काल में अस्तित्व प्राप्त तथ्य या विचार की सीमाओं के प्रति सावधान रहें। वस्तुतः अपने देश काल के प्रति तटस्थ होना आज के व्यक्ति के लिए सम्भव नहीं रहा। वह नित्य ही परिवेश के दबावों को झेलता हुआ संघर्षरत है। यही कारण है कि किसी भी आधुनिक व्यक्ति को अपने युग के प्रति संवेदनात्मक प्रतिक्रिया ही व्यक्त होती है। आधुनिकता समय सापेक्षता की दृष्टि से समकालीन की पर्याय है। डॉ. नगेन्द्र ने युग सापेक्ष आधुनिकता को सोदाहरण व्याख्यायित करते हुए लिखा है कि भारत में आधुनिकता का सूत्रपात 18 वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से माना जाता है, क्योंकि देश के विभिन्न भागों में ब्रिटिश शासन की नींव पड़ चुकी थी। आधुनिक भारत की रूपरेखा 1857 की वैज्ञानिक क्रान्ति के बाद स्पष्ट हुयी। यद्यपि यह क्रान्ति सफल न हो सकी फिर भी इसने भारतीय जनता को अपने अधिकारों के प्रति सजगता प्रदान की है और वे ब्रिटिश शासन के प्रति विद्रोह करने को तैयार हो गये। इसी प्रकार यूरोप के इतिहास में आधुनिक युग का सूत्रपात 15 वीं शताब्दी में हुआ किन्तु उसका वास्तविक स्वरूप 17 वीं शताब्दी के विज्ञान के विकास के साथ ही सामने आया। समय सापेक्ष दृष्टि से आधुनिकता परिवर्तनशील है। अतः उसे वर्तमान समय तक सीमित रख पाना असम्भव है। इस दृष्टिकोण के अनुसार आधुनिकता का अर्थ है पुराने की तुलना में अपेक्षाकृत नया। और यहीं से साम्प्रतिकता का धरातल सृजित होता है।

इस विचार के अनुसार बीसवीं शताब्दी 19 वीं शताब्दी की तुलना में आधुनिक है।[2]

"The twentienth centuary more modern then nintenth centuary and today is more modern then yesterday."[3]

डॉ. विशम्भर नाथ उपाध्याय ने सापेक्षता का सम्बन्ध देश काल व्यापी अस्तित्ववादी रेखा पर निर्दिष्ट करते हुए लिखा है- 'अस्तित्व का अर्थ ही है कि हम किसी काल में स्थित और किसी देश में स्थित तथ्य पर विचार कर रहे हैं।'[4]

यह विचार दो रूप में व्यक्त हुआ है- पहले रूप में वह तटस्थ है, और दूसरे रूप में संयुक्त। दोनों ही रूपों में आज का व्यक्ति अधिक संवेदनात्मक बन गया है। यद्यपि परिवेश के दबाव में टूटना आधुनिकता का लक्षण नहीं है बल्कि परिवेश से जूझने की आंतरिक व्यथा के चिन्ह उकेरने में ही आधुनिकता अपने सही अर्थ को स्पष्ट करती है। उदाहरण के लिए मध्यकालीन सामन्ती व्यवस्था में सामान्य जनता का शोषण होता था। वह अपना स्वतंत्र आर्थिक एवं सामाजिक विकास न कर पाने के अर्थ में परतंत्र भी थी किन्तु उसकी जीवन व्यवस्था इतनी छितरायी हुयी नहीं थी जितनी हमारी आज की जीवन व्यवस्था है। आज हम अपने संविधान के अनुरूप स्वतंत्र हैं, किन्तु परिवेश के दबाव में स्वयं को वाह्य खण्डित और किसी अर्थवित्ता की तलाश में जूझता पाते हैं।

1- क ख ग जनवरी 1964
2- नई समीक्षा-नये संदर्भ, पृष्ठ 61
3- Modernity and contenporary, page 70
4- जलते और उगलते प्रश्न, पृष्ठ 69

हमारे आज के संघर्ष की प्रवृत्ति नितान्त आधुनिक है। आधुनिकता केवल नयापन है तो अब प्रश्न यह उठता है कि नये और पुराने का भेद किस प्रकार किया जाये। तब स्पष्ट रूप से एक ही उत्तर सामने उछलता है कि समय सापेक्षता के आधार पर भूत और वर्तमान का आकलन किया जाये। आधुनिकता युग की मांग को ध्यान में रखते हुए एवं भ्रष्ट परम्पराओं का परित्याग करती है और मूल्यों को अवधारित करती है, जो वर्तमान संदर्भों में समाज के लिए लाभप्रद एवं स्वास्थ परक हो सकते हैं। आधुनिकता इन मूल्यों का पुनःसंस्कार करने के पश्चात् इसको एक नये रूप में प्रतिष्ठित करती है।

इस प्रकार जिस युग में इन विचारों की प्रमुखता हो जाती है, वह युग अपने पूर्ववर्ती युग की तुलना में अधिक आधुनिक हो जाता है। कहने का यह आशय बिल्कुल नहीं है कि नये युग में पुरानी और विरोधी मान्यताएं सर्वथा लुप्त हो जाती हैं। वे भी जीवित रहती हैं, परंतु उनका स्थान नयी विचारधारा की अपेक्षा गौण हो जाता है। आधुनिकता की इसी काल सापेक्ष विरोध मूलक विचारधारणाओं पर ध्यान करते हुए विपिन कुमार अग्रवाल लिखते हैं कि- जहां विरोध दीखे वहीं आसपास आधुनिकता के मिलने की सम्भावना अधिक होगी।[1] आधुनिकता का स्वरूप जो कल था वह आज हो, जो आज है वह कल भी हो, यह दावा नहीं किया जा सकता है।

आधुनिकता का स्वरूप शाश्वतरूप से काल सापेक्ष है। आधुनिकता एक तरह की संश्लिष्ट विचार पद्धति है, उसे समय सापेक्ष समकालीन विचार पद्धति के रूप में ही ग्रहण किया जा सकता है। किसी सामाजिक या व्यक्तिगत दर्शन से जोड़कर विश्लेषित नहीं किया जा सकता।

समकालीन चेतना और जागृति को ध्यान में रखकर स्वतंत्र रूप से आधुनिकता के सम्बन्ध में सर्वव्यापक दृष्टि से विचार करना ही उसकी समय सापेक्षिकता है। आधुनिक ऐतिहासिक काल से विकसित होकर आज के बोध से सम्पृक्त हो गयी है। मनुष्य अतीत की अपेक्षा वर्तमान में अधिक जीना चाहता है। आधुनिक मनुष्य के बढ़ते हुए ज्ञान और चिन्तन से नित्य नवीन खोजें की हैं। फलतः प्राचीन मूल्यों, सामाजिक और पारिवारिक सम्बन्धों, रूढ़िगत विचारकों आदि का रूप बदलाव और नये मूल्यों नये सम्बन्धों तथा नये विचारों की स्थापना हुयी है। बदलाव के क्रम में काल सापेक्ष यथार्थ धरातल उजागर होता गया है। इसी बात को डॉ. लक्ष्मीकांत वर्मा ने इस प्रकार कहा है- पूर्व निर्धारित उद्देश्य की अपेक्षा क्षण के यथार्थ के प्रति सापेक्ष दायित्व बोध ही आधुनिकता का प्रमुख लक्षण है।[2] आधुनिकता के द्वारा परिवर्तन रेखांकित होता है और यह रेखांकन समय की धुरी के साथ घूमता चलता है। फिर भी यह परिवर्तन शीघ्रगामी नहीं होता। हम आज को कल की तुलना में आधुनिक मानने लगे। अतः आधुनिक युग विशेष का ही हो सकता है। इसमें पुराने तथा विरोधी अवधारणाओं और मान्यताओं के बीच नयी अवधारणाएं और मान्यताएं अपनी प्रमुखता प्राप्त कर लेती हैं। आधुनिकता को हम समय सापेक्ष मानते हुए यह निर्विवाद रूप से कह सकते हैं कि आधुनिक युग का प्रारम्भ 15 वीं शताब्दी में धार्मिक पुनर्जागरण के रूप में हुआ और भारत में सन् 1857 की सैनिक क्रान्ति के रूप में हुआ। दृष्टव्य यह है कि पश्चिम की 15 वीं शताब्दी की चेतना धार्मिक है और भारत की सन् 1857 की चेतना राष्ट्रीय है। ये दोनों अभिचेतन स्वरूप वैज्ञानिक चेतना से भिन्न है। अतः आधुनिकता काल सापेक्ष एक जागरूक एक परिवर्तनशील तत्व है।

1. आधुनिकता के पहलू, पृष्ठ 23   2- नये प्रतिमान पुराने निष्कर्ष, पृष्ठ 42

2- आधुनिक संवेदना और समकालीन संवेदना:-

आधुनिकता के साथ समकालीनता का प्रश्न उठाना स्वाभाविक ही है। आधुनिकता को समकालीनता का पर्याय मानना सर्वथा भ्रामक है। आधुनिकता समकालीनता से नितान्त अलग अर्थ रखती है 'समकालीनता' अंग्रेजी शब्द "Contemporary" को कहते हैं जिसका सम्बन्ध समय सामयिकता से है और 'आधुनिकता' को अंग्रेजी में "Modernity" कहते हैं जिसका सम्बन्ध प्रवृत्ति या शैली से है। 'आधुनिक' एक ऐसा शब्द है जो आधुनिक जीवन दृष्टि के निर्वाह में आधुनिक अस्तित्ववाद का निर्वाह करता है। समसामयिकता या समकालीन से हमारा आशय देशकाल के साथ-साथ उस क्षण गहरी तीव्रानुभूति की ग्राह्यता से है, जो परिस्थिति से उपजती है और बिना किसी पूर्वाग्रह के सावेग औचित्य के साथ व्यक्त होती है।[1] समकालीनता आधुनिक होने का मानदण्ड नहीं है बल्कि यह अधिक कहना उचित होगा कि आधुनिकता की सर्जनात्मक अर्थवत्ता समसामयिकता के अतिक्रमण करने में है। रचनाकार को देशकाल की समीपता में कालजीवी बनना पड़ता है।

यह अर्थ उसकी अपनी घटनाओं और तथ्यों में समकालीन नहीं होता, बल्कि उसकी समकालीनता वर्तमान से उस संवेदनात्मक सम्प्रक्ति में होती है, जो देशकाल और प्रकृति के दिवाकाल से आबद्ध बनी रहती है। यही कारण है कि समकालीनता और आधुनिकता में भाव बोधीय अन्तर आ जाता है।

महादेवी वर्मा ने समसामयिकता का जूझता हुआ प्रश्न स्पष्ट किया गया है- 'समसामयिक और शाश्वत परस्पर विरोधी परिस्थितियां नहीं हैं, उनमें 'है' और होना चाहिए का अन्तर भाव है अनेक समसामयिक अतीत बनकर ही शाश्वत का सृजन करते हैं। यह एक इतिवृत्त है और दूसरा अनेक इतिवृत्तों के संघात से निर्मित भावात्मक लक्ष्य है। कोई भी व्यापक लक्ष्य स्वयं तक पहुंचाने वाले साधनों का विरोध नहीं करता और साधनों का अस्तित्व परिस्थितियों में रहता है।'[2]

आधुनिकतावादी संवेदनशील लेखक अतीत से जुड़कर वर्तमान में रहकर भविष्य से जुड़ा रहता है। समसामयिक लेखक केवल वर्तमान में जीता है। आधुनिकता के लिए संवेदनात्मक दृष्टि में बौद्धिक पकड़ का समावेश अपरिहार्य है आत्मबोध का कवि परम्परा को स्वीकार करते हुए भी उसे अस्वीकार करता है। यह भौतिक जगत की सीमाओं से अपने को असहनीय मानता है।

डॉ. बच्चन सिंह ने संवेदना के धरातल पर आज के लेखकीय दृष्टि को स्वीकारते हुए लिखा है- आधुनिक बोध का कवि बन्धनों के प्रति तीखी आलोचनात्मक नजर रखता है। उनकी कड़वी तीखी अनुभूतियों से गुजरता है, उन्हें भोगता है, झेलता है और टकराहटों से से काव्य में विशिष्ट ऊर्जा दिखायी देती है जो बराबर मूल्यगत होती है।[3] आधुनिकता समकालीनता को अपने रूप में ग्रहण करती है किन्तु अपनी रचनात्मकता में वह समसामयिकता के उन संदर्भों को नकार देती जो मानव के सांस्कृतिकता के विकास को अवरुद्ध करते हैं। समसामायिक होना व्यक्ति में जागरूक होने का भ्रम भले ही उत्पन्न कर दे, किन्तु अपने चिन्तन और सृजन को अर्थ देने के लिए उसे समसामायिक तथ्यों और घटनाओं को अपनी संवेदना की आंच में पिघलना ही होगा।

1. नई कविता के प्रतिमान पृष्ठ 263 (लक्ष्मीकान्त वर्मा)
2. साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबंध पृष्ठ 28
3- समकालीन साहित्य और आलोचना की चुनौती, पृष्ठ 55

नेमिचन्द्र जैन ने ठीक ही तो लिखा है- वास्तव में युगीन भाव चेतना को पहचानने का प्रयत्न प्रत्येक जागरूक व्यक्ति का धर्म है, किसी के ऊपर एहसान नहीं।[1] इतिहास का महत्वपूर्ण क्षण किसी के पहचानने के लिए रुकता नहीं व्यक्ति की अपनी ही नियत उसकी पहचान से जुड़ी होती है। समकालीन लेखक जीवनगत, संवेदना को बटोरते हुए अपने समय के पैगम्बर हो जाते हैं और उनका संवेदनशील बोध निर्लिप्ता के साथ एक का दूसरे को, दूसरे का तीसरे को दिये जाने वाला क्रम बन जाता है।[2] तत्वतः समसामयिक साहित्य के अन्दर विषय और वस्तु की व्यापकता होती है। वर्तमान स्थितियों के चित्रण और औसत विचारों को शब्दाडम्बर दे देने मात्र से आधुनिकता की रचना नहीं हो सकती। ऐसा प्रायः देखा गया है कि समसामयिक लिखा गया साहित्य आधुनिकता बोध से सदैव निलिप्ति रहता है।

बात स्पष्ट है कि समकालीनता में ठहराव है और आधुनिकता की गतिशीलता में ठहराव का अभाव है। बल्कि यूं कहें कि परम्परा के विकास के लिए और आधुनिकता के महत्व के प्रतिपादन के लिए समकालीनता अपरिहार्य और विशिष्ट है तो उपयुक्त होगा आधुनिकता समकालीन संवेदना से दूर एक अभिनव जीवन दृष्टि है। जो पग-पग पर सनातन संवेदनशील मूल्यों का ह्रास करती चलती है। आधुनिकता और समकालीन चेतना को इस प्रकार समझा जा सकता है- अंग्रेजी साहित्य के रस्किन, टेनीसन और कालीइव विक्टोरियन काल में थे। इनके काव्य में अपने समय के वैज्ञानिक और औद्योगिक चेतना का इतिहास मिलता है लेकिन वे आधुनिक नहीं समसामयिक लेखक हैं।

हिन्दी साहित्य में मैथिलीशरण गुप्त रचित ''भारत भारती'' तथा माखन लाल चतुर्वेदी की अधिकांश कविताएं समसामयिक ही कहलायेंगी।[3] आधुनिकता सामायिक परिवेशों, सामाजिक जीवन की बदली हुयी रेखाओं, समस्याओं, मान्यताओं, विश्वासों से उत्पन्न चेतना होती है।

आधुनिकता का अभिप्राय नग्नवाद या अति यथार्थवाद से नहीं है और न ही आधुनिकता कोई बाहरी साज-सज्जा बनावट और उपकरण है। आधुनिकता भीतर की चीज या कहें कि ऐसी जीवन दृष्टि है जिसे हम जीवन साधन के रूप में प्रयोग करते हैं। लक्ष्मीकान्त वर्मा का यह कथन विचारणीय है- 'आधुनिकता वर्तमान को सजग रूप सें मांगने और उस भोग से नये संदर्भ में देखने को जीने की क्षमता है।'[4] समकालीन संवेदना और आधुनिकता बोध में मनुष्य के लिए कई तरह के वैचारिक संकट होते हैं। वह प्राचीनता परम्परा या स्वीकृत सामाजिकता को छोड़कर जिन विकल्पों को चुनता है वे किसी चीज के बदले में होते हैं इसीलिए किसी प्रतिवाद से जुड़े होते हैं। विज्ञान के इस युग में यदि कोई युगसत्यों से विमुख होकर प्राचीन मूल्यों और आस्थाओं से सम्प्रक्त है तो उसे आधुनिक नहीं कहा जा सकता, भले ही वह समकालीन होने का दावा करे। इसके अतिरिक्त प्रयोगधर्मी मुहावरों, प्रतीकों अथवा बिम्बों के माध्यम से समकालीन संदर्भों को यथार्थवादी ढंग से प्रस्तुत कर देने से ही कोई लेखक आधुनिक नहीं हो जाता।

आधुनिकता को किसी संकीर्ण और कट्टर अर्थ में यथार्थवादी कहना भी उतना ही असंगत है जितना कि प्रतीकवादी या बिम्बवादी कहना। जहां तक मुहावरों का सवाल है, वह श्आकामक भी हो सकता है और उद्वेगहीन भी। देखना यह है कि रचनागत संवेदना के उल्टा न पड़ता हो या उसे

1. बदलते परिप्रेक्ष्य पृष्ठ 46 2. परम्परा और आधुनिकता (निबंध- आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी)
3. आधुनिकता और मोहन राकेश पृष्ठ 7 4. नये प्रतिमान और पुराने निष्कर्ष, पृष्ठ 87

झूठ सिद्ध न करता हो। ऊपर से समसामयिक दीखने पर भी हो सकता है कि कोई लेखक आधुनिक न हो रचना का ऊपरी परख पर खरा न दीखता हुआ भी कोई लेखक आधुनिक हो।[1] आधुनिकता समकालीन मूल्यों के प्रति जागरूक भी है परन्तु उन्हें स्वीकार करने के लिए बाध्य नहीं है। इसका अर्थ यह है कि आधुनिकता का समकालीन से कोई सम्बन्ध नहीं आधुनिक बोध से सम्पन्न प्रत्येक रचना आधुनिक नहीं मानी जा सकती। समकालीन लेखक के अपने आग्रह हो सकते हैं जिनके परिणामस्वरूप उसके द्वारा किया गया युग यथार्थ का निरूपण पक्षपातपूर्ण हो सकता है- ऐसी अवस्था में समकालीनता पर आधारित लेखकीय दृष्टि से एकागी बने रहने की आशंका बनी रहती है जिससे जीवन को उसके समग्ररूप में देखना सम्भव नहीं रहता। आधुनिक लेखक सामयिक आग्रहों से युक्त होकर जीवन को उसकी समग्रता में देखने का प्रयास करता है वह समकालीन स्थितियों के प्रति जागरूक होता हुआ भी उसकी परिधि तक सीमित नहीं रहता। स्टीफन स्पैन्डर का मंतव्य है- "The modern is actually conscieas of the contemporary values but do not exceptita value."[2]

3- साहित्य के संदर्भ में आधुनिकता:-

आधुनिकता सम्बन्धी साहित्य की चिन्तनीय विडम्बना आधुनिक युग से ही शुरू होती है। भारतेन्दु युग से ही साहित्यकार ने स्वचेतना, जागृति और आधुनिकबोध के विविध रूप अंकुरित हो उठे थे। प्रत्येक कवि या साहित्यकार में इस प्रकार के बीज न्यूनाधिक रूप में पाये जाने लगे थे जब हम साहित्य में आधुनिकता के घटक तत्व के बारे में बात करते हैं, तो साहित्य का उभयनिष्ठ रूप- आत्मनिष्ठ और समाजवादीय रूप मुखरित होने लगते हैं। कहा भी गया है- आधुनिकता का एक रूप अगर आत्मनिष्ठ और आत्मकेंद्रित है तो दूसरा समानधर्मी और प्रगतिशील। इन दोनों के तनाव का चित्रण ही समकालीन साहित्य भी है और दोनों के संतुलन की खोज भी।[3] भारतेन्दु युग का रचनाकार अपने सांस्कृतिक परिवेश के प्रति सजग होता हुआ भी उस परिवेश का अभ्यान्तीकरण नहीं कर पाया है, जबकि आज का रचनाकार यह स्वीकार करता है कि भले ही कोई लेखक वैचारिक दृष्टि से कोई वाह्य आकार स्वीकार कर ले, तब तक उस आग्रह के तत्त्वों का अभ्यान्तीकरण नहीं होता, जब तक अन्तर्जगत के तत्त्वों में उसका रंग नहीं चढ़ जाता। जब तक वह हृदय में तड़पते हुए जीवनानुभव का एक भाग नहीं बन जाता, तब तक उस आग्रह के अनुरूप साहित्य निष्प्राण और कृत्रिम ही रहेगा।[4] आधुनिकता अपनी नवीनता और विविधता के कारण प्रत्येक साहित्य में अपने संदर्भ से जुड़ी होती है। आधुनिकतावादी साहित्य के लिए वैयक्तिकता एक शर्त होती है। इसलिए आधुनिकतावादी साहित्यकार ने अनुभूति और स्वदृष्टि को अपने ढंग से साहित्य में प्रस्तुत करता है। आज के आधुनिकतावादी साहित्य में आत्मकेंद्रित विचारणा की बहुत अधिक पहल है। जर्मन कवि डांट फ्रायड ने कहा है- "There is no outer reality. There is only human consciousness constantly viewing modifying rebuilding new words out of it"s own creativity."[5] आधुनिकता

1 व 3- आधुनिकता और समकालीन रचना संदर्भ, पृष्ठ 12
2- The struggle of the modern, p.78
4- नये साहित्य का सौन्दर्य शास्त्र, पृष्ठ 88 (मुक्तिबोध)
5- Literary modernism, p.15

साहित्य में तटस्थ दृष्टिकोण लेकर जिन्दा नहीं है, वह अपने यथार्थ परिवेश के साथ अनवरत ढंग से परिवर्तित होती रही है इसीलिए आधुनिकतावादी काव्य के कुछ उपादान बन गये हैं जिनमें प्रमुख हैं बुद्धिवाद, वैचारिक संश्लिष्टता, सांकेतिकता, दुर्बोधता, रूखापन, अनास्था, अनुभूति, अजनबीपन आदि। हिन्दी साहित्य में, विशेषकर काव्य के क्षेत्र में आधुनिकता का जन्म निराला का काव्य कुकुरमुत्ता से ही हो गया था। यद्यपि इस काव्यवृत्ति में आधुनिकता की अपेक्षा समसमायिकता के लक्षण अधिक दिखायी देते हैं। उत्तरोत्तर हिन्दी के प्रसिद्ध कवियों में अज्ञेय, मुक्तिबोध, नेमिचन्द्र जैन, केदारनाथ सिंह, कुंवर नारायण आदि का नाम बहुत उठा। आधुनिक भावबोध वाले वाले कवि के काव्य में तत्कालीन परिस्थितियों के प्रति लगाव, देश-प्रेम और प्रकृति प्रेम जैसे स्वच्छंदवादी तत्व का प्रायः अभाव होता है।

आधुनिक कवि अभिव्यक्ति के लिए अभिनव प्रयोग करता है। वास्तव में यह तारसप्तक से मिलने लगता है। उसमें अन्वेषण की प्रवृत्ति है और काव्य के नये धरातल का निर्माण। यहीं से छायावाद का अन्त और छायावादी विरोध भंगिमाओं का प्रारम्भ हुआ है। आधुनिकतावादी कविता कल्पनाशील न होकर वैज्ञानिक दृष्टिकोण पर आधारित मन के अन्तर्मन का उद्‌गार है।[1]

नेमिचन्द्र जैन की प्रस्तुत कविता का चरण व्यर्थता के सन्दर्भ में आधुनिकता बोध का अनूठा उदाहरण है-----------

मैं हार जाता हूं भयंकर मौन से,
वे अपने प्राणों में छाये हुए एकान्त से।
सतत् निर्वासित हृदय को तिरस्कृत व्यक्तित्व के
थोथे असंगत दर्द ने मन की सहज अन्जाम स्वाभाविक अनावृत धार को।
कर दिया है कुंठित।[1]

आज का कवि अन्तर्मन की यातना से पीड़ित है। वह मुक्ति का क्षण अन्तर्मन में ढूंढना चाहता है।

आज का कवि अपने ढंग से जिन्दगी जीता है।

अकेलेपन के संघर्ष में टूटता है एक ऐसे कवि की रचना को मूलतः कथाकार को यहां प्रस्तुत किया जा रहा है-

पी लिया
अपने आत्मदाह में
फिर एक बार
जी लिया।[2]

मोहन राकेश जिन्दगी जीते थे व्यतीत नहीं करते थे वे दर्द को पीकर जीते थे इसलिए उन्होंने जो जिया वही.................लिखा है। आधुनिकीकरण की प्रक्रिया में सभ्यता सामाजिक सम्बन्धों और मूल्यों में तीव्र गति से परिवर्तन हुआ है। साथ ही शासन व्यवस्था का तानाशाही साम्राज्य चारों तरफ व्याप्त है। प्रजातन्त्र लोगों के लिये मात्र झूठे वादों का साम्राज्य रह गया है। व्यक्ति आजाद है यह प्रश्न हर एक के सामने लड़खड़ा रहा है। आज का कवि इन विघटित स्थितियों में

1. तारसप्तक, पृष्ठ 4
2- सारिका, मार्च 1973- मोहन राकेश, पृष्ठ 20

अजनबी व्यर्थता फूहड़ता तटस्थता और अकेलेपन का बोध करने लगा है। धर्मवीर भारती ने अपने काव्य में प्रतीक के विविध रूपों का प्रयोग किया है जिससे आधुनिकता वैयक्तिक और सामाजिक मूल्यों में उभर कर सामने आया।

मैं रथ का टूटा हुआ पहिया
लेकिन मुझे फेंको मत
क्या जाने कब
इस दुरूह चक्रव्यूह में
अक्षुणनीय सेनाओं को चुनौती देता हुआ
वही दुस्साही अभिमन्यु आकर घिर जाये।[1]

सन् 1920 के बाद की कविता अधिक दुरूह हो गयी है। आधुनिकतावादी कविता में शहरी जीवन बोध बहुत वर्णित हुआ है। किस तरह आधुनिक परिवेश में व्यक्ति का शहरी जीवन निरर्थक रूप में बीत रहा है अन्धायुग 'चांद का मुंह टेढ़ा' आदि कृतियों में यही दृष्टिकोण परिलक्षित है। मुक्तिबोध का 'चांद का मुंह टेढ़ा' का नायक अकेला है और आत्म अन्वेषण की स्थिति की झलक है दृष्टव्य है।

जितना मैं लोगों की बात को पार कर
बढ़ता हूं आगे
उतना ही पीछे रहता हूं अकेला।[2]

इन पंक्तियों में कविता का नायक आत्म निर्वासित हो गया है। इस आत्मनिर्वासन की स्थिति में आधुनिकता की अभिव्यक्ति हुयी है। मैं और वह का सम्बन्ध विघटित हो गया है। दोनों के बीच विभक्ति की स्थिति में तनाव पैदा हो गया है जिससे मैं उदासीनता की जिन्दगी अनुभव करता हूं। आधुनिकतावादी काव्य जगत के इतर गद्य साहित्य की विविध विधाओं में बदलते प्रतिमानों का संघर्ष विशेष रूप से दृष्टिपथ में उतर रहा है। द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात जहां एक ओर मनुष्य के बीच फैले हुए व्यापक आशुतोष ने नई कविता को जन्म दिया वहीं दूसरी ओर नई कविता के माध्यम से आधुनिकता का दौर हिन्दी कहानी में आया। आधुनिकता वादी दृष्टिकोण से ही कहानी के शाश्वत मूल्यों में परिवर्तन हुआ है जिससे पुरानी कहानी का आंतरिक ढांचा चरमराकर टूट गया।

आधुनिकता की प्रक्रिया में लिखी गई कहानियों में स्वानुभूति की अभिव्यक्ति की सच्चाई भोगे हुए क्षण को लिखने की प्रतिबद्धता शाश्वत रूप से नवीनता की प्रक्रिया और सम्बन्धों की तलाश की संवेदना देखने को मिलती है। आज का कहानीकार बदलते मूल्यों में मानसिक और आत्मिक दृष्टि से अधिक तुष्ट रहना चाहता है, इसलिए उसने जीवन की परिस्थितियों से मोर्चा लेने के लिए टेकनीक और भाषा के तेवर को बदला है। आधुनिकीकरण और शहरीकरण की प्रक्रिया में लिखी जानी वाली नई कहानियों में जहां-तहां नगर के बाहर का वातावरण दिखायी पड़ता है। मोहन राकेश की मिस पाल नायिका नगर, परिवेश से कटकर पहाड़ पर चित्रकला की साधना की बात सोचती है। फिर भी वह अपने अकेलेपन से टूटती है। इसी प्रकार उनकी ही एक और जिन्दगी की

1. सातगीत, पृष्ठ 79
2- चांद का मुंह टेढ़ा, पृष्ठ 33

कहानी प्रतीकात्मक दृष्टि से आधुनिकताबोधीय ही है-

हाय हाय चिड़िया मर गयी- किसी ने कहा
मरी नहीं अभी जिन्दा है- कोई और बोला
चिड़िया नहीं चिड़िया का बच्चा है
इसे उठाकर बाहर छोड़ दो
नहीं, बाहर बिल्ली खा जायेगी,
बेचारा कैसे तड़प रहा है।[1]

डा. विजय मोहन सिंह की कहानी में गहरी मानसिकता की अभिव्यक्ति हुयी है। कहानी का प्रारम्भ भी अन्तर्विरोध से होता है, जिससे आधुनिक भावबोध सामने उभरकर आया है। इसी प्रकार टट्टू सवार कहानी में उन्होंने आज के जीवन की नकाब उतारनी चाही है।

कहानीकार अनिर्णय के द्वंद्व में नायक के माध्यम से कहता है-

मैं किसी तरफ से हो ही नहीं सकता
मैं किसी बात के विरुद्ध हो भी कैसे सकता हूं।[2]

निर्मल वर्मा के 'परिन्दे' कहानी में आधुनिकता का बोध मनुष्य की अनिश्चितता और अज्ञात नियमित में उजागर हुआ है। निर्मल वर्मा की लन्दन की एक रात कहानी आधुनिकता की दृष्टि से सफल कहानी है। इस कहानी के माध्यम से शहरी अनुभव, भूख, आतंक, डर, बेकारी, रंगभेद सभी की अभिव्यक्ति हुयी है। वह सत्य भी है कि आज की दुनियां में मनुष्य आरक्षित होने के अनुभव से संत्रस्त रहता है। दूधनाथ की कहानियों में संवादहीनता और उदासीन स्थितियां पर्याप्त हैं।

इनकी एक लम्बी कहानी 'सुखान्त' में मनुष्य अपने परिवेश में किस तरह कैद है बखूबी चित्रित किया गया है।

जीवन मूल्यों के नये संदर्भ देने और जीवन अर्थ को गहरी संवेदना से समझने शक्ति जितनी मन्नू भंडारी की कहानियों में व्यक्ति के मानसिक संघर्ष की अभिव्यक्ति अधिक व्याप्त है। आधुनिकता की दृष्टि से उनकी कहांनियां 'अकेले' यही सच है, नशा 'तीसरा आदमी' विशिष्ट है। इसमें आधुनिक जीवन एवं नारी के मानसिक संघर्ष को वर्ण्य बनाया है। लेखिका इनमें जीवन संघर्ष की अभिव्यक्ति ही नहीं करती बल्कि नये जीवन की तलाश में करती है। यही सच है इसका प्रमाण है। इस कहानी में स्त्री पुरुष के विभिन्न सम्बन्धों का रूप उजागर हुआ है। प्रेम कोई निरपेक्ष सच्चाई नहीं है, सापेक्ष सच्चाई होती है। प्रेम सम्बन्धों की सम्वेदनात्मक अभिव्यक्ति आधुनिकता की उपज है। इतना ही नहीं भंडारी ने मजबूरी कहानी में दादी-मां-बेटी के अन्तराल में पल्लवित ममता को आज के परिवेश में बटोरकर देता है-

एकाएक अम्मा की चेतना लौट आयी।
क्या कहा बेटे मुझे भूल गया।
सच मेरी बढ़ी चिन्ता दूर हुयी,
जरूर प्रसाद चढ़ाऊंगी।[3]

1- एक और जिन्दगी, पृष्ठ 142
2- आवेश सन् 1968
3- मेरी प्रिय कहानियां, पृष्ठ 30

कमलेश्वर की कहानियां 'जोखिम', 'एक सड़क सत्तावन गलियां', 'नीली झील', 'दिल्ली में एक मौत' आदि कहानियां मानसिक स्पर्धा और अन्तर्द्वन्द्व की पहचान इन कहानियों में आधुनिकता भिन्न-भिन्न स्तरों पर पहुंची है। लेखक ने कहानी के माध्यम से मानवीय सामाजिक और वैयक्तिक रूढ़ियों को तोड़ा है और वैयक्तिक चेतना को संश्लिष्ट रूप में अभिव्यक्त किया है। नगर जीवन के नवीन भावों विचारों अवस्थाओं का यहां यथार्थ चित्रण हुआ है। जोखिम कहानी का नायक व्यवस्था के संसार को झेलते हुए मृत्यु के संग्राम को भी झेल रहा है। नायक दोहरी अर्थ व्यवस्था के तनाव में जिन्दा है जो आधुनिकता का परिणाम है। 'धूप का एक टुकड़ा' कहानी वर्मा जी के जीवनगत अजनबीप संवेदना की कहानी की नायिका का कथन ध्यात्व है-

मैंने सुना है कुछ ऐसे देश हैं जहां तक लोग नशे में धुत नहीं हो जाते हैं तब तक विवाह करने का फैसला नहीं लेते।[1]

नई कहानी के कथ्य में अजीब सी उदासीनता और व्यंग्योक्तियां हैं। राजेंद्र यादव की भविष्य के पास मंडराता अतीत कहानी में सम्बन्धों के विच्छेद होने व्यथा में आधुनिकता उभरी है। इस कहानी में दाम्पत्य प्रेम की अवस्था में ले जाता है और कहता है- हां फिर बोली कि मुझे प्यार करोगी और खुश रहोगी।

हां प्यार करूंगी और खुश रहूंगी।[2]

आधुनिकता के साथ उपन्यासकारों ने व्याख्यायित किया है,

'अमृत और विष' अमृतलाल नागर की एक विशिष्ट कृति है उन्होंने कई कथासूत्र इसमें जोड़े हैं ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य को लेकर योग यथार्थ का चित्रण और जीवंत पात्रों का निरूपण इस उपन्यास की विशेषता है आधुनिकता बोधीय अंग्रेजी माहौल का जिक्र करते हुए कथाकार ने लिखा है- 'अंग्रेजी भाषा की जानकारी गोरा रोबीला स्वरुप और बातें करने का ढंग राधेलाल को अंग्रेज व्यापारियों में और हुकमरा के निकट सम्पर्क में ले आया।'

लालाजी अपने धर्म कर्म के कट्टर रहे पर धन्धा परस्त होते-होते अंग्रेज परस्त भी हो गये उन्हें यह विश्वास था कि जो कारोबार अंग्रेजी ढंग पर और अंग्रेजों के संरक्षण में चलेगा वही फलफूल सकेगा बाकी सारे धन्धे मिट जाएंगे। निर्मल वर्मा का उपन्यास 'वे दिन' में आधुनिक बोध कलात्मक ढंग से अभिव्यक्त हुआ है। लेखक इस उपन्यास के माध्यम से उपन्यास साहित्य के पुराने चौखटे को तोड़ता है और नये भाव विचारों का व्यापक फैलाव करता है। इस उपन्यास में सभी पात्र अकेलेपन का बोध करते हैं। उपन्यास के पात्र रायना, उसका पति, उसके बच्चे, मारिया 'में' टीड़ सभी अकेलेपन के बोझ से पीड़ित हैं। सभी पात्र स्वजीवन में व्यर्थथता का अनुभव करते हैं। सभी के जीवन में एक तरह की उदासीनता, तटस्थता, व्यर्थता और खालीपन व्याप्त है जो एक दूसरे के सुख दुख और सम्बन्ध से परिचित होना व्यर्थ समझते हैं। उपन्यासकार ने उपन्यास के माध्यम से शहरी जिन्दगी की जटिलता और वास्तविकता को पकड़ने का प्रयास किया है। नगर बोध से छुटकारा पाने के लिए कथानायक पहाड़ पर जाने की सोचता है।[3] आधुनिकता नगरीकरण की प्रतिक्रिया से उत्पन्न एक प्रक्रिया है। साहित्य विशेष रूप से हिन्दी साहित्य में आधुनिकता की गहरी छाप जितनी कविता, कहानी और उपन्यास में उतनी नाटक में

1- कौवे और काला पानी, पृष्ठ 111

2- त्याग का भोग, पृष्ठ 52 (इलाचंद्र जोशी)   3- वे दिन, पृष्ठ 65

नहीं कविता कहानीकार आस्वाद एकान्त में बैठकर किया जा सकता है लेकिन नाटक के भाव को पढ़ने के लिये और सही अर्थों में नाट्यार्थ के साक्षात्कार के लिए नाटककार को पाठक, दर्शक, अभिनेता, रंगमंच और रंगशाला की दशाओं में बांधना पड़ता है। नाटक में सहसा नयापन लाने में नाटककार डरते हैं फिर भी जगदीश चंद्र माथुर, विपिन कुमार अग्रवाल, अमृत राय, मोहन राकेश आदि ने आधुनिक वैज्ञानिक रोशनी से अन्धविश्वासों को तोड़ा है। विपिन कुमार अग्रवाल का नाटक 'अपाहिज' नाटक देश, समाज और मनुष्य की आजादी की अवस्थाओं की तत्यकालीन अवस्था के संदर्भ में प्रस्तुत है-

खल्लू- भाषण हो रहा है।

कल्लू- हां।

खल्लू- आराम हराम है। यह कौन है कल्लू।

कल्लू- तुम

खल्लू- मैं।[1]

इसी प्रकार मोहन राकेश ने 'आधे-अधूरे' नाटक में नवीन भंगिमा और नूतन अर्थवत्ता व्यक्त की है। इस नाटक में घर और सम्बन्धों के प्रतिबद्धता का प्रश्न है।

जब व्यक्ति सम्बन्धों और कर्तव्यों के घेरे में खड़ा होकर अपने अस्तित्व की मांग करता है तो इससे प्रश्न सहज ही खड़े होते हैं-

'जिसे देखो वही मुझसे उल्टे ढंग से बात करता है,

जिसे देखो वही मुझसे बदतमीजी से पेश आता है।'[2]

4- आधुनिक वर्ग चेतना और आन्तरिकता:-

विज्ञान आधुनिक समाज की सर्वाधिक गत्यात्मक पहलू है। विज्ञान के कारण मजदूरी और मेहनत, कार्य और चिन्तन, नगर और महानगर कस्बा और ग्राम, उत्पान और उपभोग सभी के मानदण्ड बदल गये। इसके साथ वैयक्तिक, पारिवारिक, सामाजिक सम्बन्धों का आधुनिकीकरण हुआ है। संयुक्त परिवार और अन्य सामाजिक सम्बन्ध आज के परिवेश में उपयोगी नहीं रह गये हैं। अर्थ के दबाव और वैज्ञानिक तर्क के कारण यथार्थ के धरातल पर सामाजिक सम्बन्धों के मानदण्ड टूटे और टूटते ही जा रहे हैं। मानव मूल्य के बदलते प्रतिमा आधुनिकता बोधीय निष्कर्षों के रूप में इतने अधिक पैने और नुकीले बन गये हैं कि हम मनुष्य को नितान्त अकेला, नितप्रांण महसूस देख रहे हैं। भारत का शासक कानून के प्रश्रय में जीवित न रहकर धन की गोद में खेलता रहा है। सनातन मानव मूल्यों में धर्म को ऐसा शाश्वत मूल्य कहा गया है जो भावनात्मक पक्ष को तो प्रबल करता ही है, साथ ही हमारी आचार संहिता को भी संकलित करता है। विचारक बटेंड रसेल ने कहा है- "A religion is a more or less coberent system of beliefs and conceing a super natural order of being force, places of other entities."[3]

आज आधुनिकता के परिपार्श्व में राजनैतिक और वैज्ञानिक बोध के कारण धर्म से आस्था

1- तीन अपाहिज , पृष्ठ 36

2- आधे-अधूरे, पृष्ठ 65

3- वैज्ञानिक परिदृष्टि, पृष्ठ 43

धीरे-धीरे समाप्त हो रही है। इसका मूल कारण यह है कि आज का व्यक्ति तर्क के आधार पर जिन्दा है क्योंकि आज हमारे जीवन की समस्याओं का समाधान नहीं कर पा रहा जीवन में धर्म का स्थान ले लिया। विज्ञान ने हमारे खाने-पीने से लेकर रहन-सहन के तौर-तरीके और सभ्यता तक को प्रभावित किया है। विज्ञान ने प्रकृति की अनेक अकथनीय, अविश्वासनीय शक्तियों से परिचित कराया। विज्ञान ने भौगोलिक दूरियों को समाप्त कर मनुष्य को पास-पास लाकर खड़ा कर दिया। इस प्रकार सम्पूर्ण मानवीय मूल्यों और सम्बन्धों में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए हैं। धर्म के बल पर जीवन के समय में विजय दुंदभि बजाने वाले मनुष्य के रथ चक्र के पहिये को विज्ञान ने तोड़मरोड़ दिया है और कम्प्यूटर पद्धति का आविष्कार किया है। प्रसिद्ध वैज्ञानिक Matinowsky ने कहा है कि विज्ञान और धर्म जीवन बोध के आधुनिकता और परम्परा जैसे चरण हैं।[1] आज व्यक्ति रूढ़िवादी तत्वों के प्रति अधिक उदासीनता व्यक्त करने लगा है आज ऐसे लोगों की संख्या नगरीय प्रविष्टि से बहुत कम है जो पुराणों और प्राचीन धर्मशास्त्रों के आश्चर्यजनक कथनों में विश्वास करते हैं। आज व्यक्ति अपने जीवन में बुद्धि और विवेक के द्वारा उपयोगी धार्मिक विचारों को ही स्वीकार करता है जिससे धार्मिक व्यवस्थाओं परम्पराओं और मान्यताओं में बहुत तेजी से परिवर्तन हो रहा है। उदाहरण के लिए विधवा विवाह का प्रचलन विजातीय विवाह का प्रचलन पति पत्नी जीवित रहते हुए भी विवाह का प्रचलन विजातीय विवाह का प्रचलन आदि सब स्वीकार है। आज मनुष्य इतना अधिक व्यस्त है कि वह धार्मिक संस्थाओं को अनुष्ठानों कर्मकाण्डों के लिए समय नहीं दे पाता क्योंकि वे उसे अन्धविश्वास समझते रहते हैं। विवाह जैसे कार्य को भी एक घंटे में समाप्त कर दिया जाता है वर्तमान समय में धार्मिक संस्थाओं को जीवनोपार्जन का साधन मात्र मान लिया जाता है। मानव मूल्यों के विघटन की प्रक्रिया पुराने मूल्यों के जड़ होने से लगातार बढ़ी है। प्राचीन और नवीन जीवन मूल्यों के मध्य टकराहट या मुकाबला आधुनिक भावबोध का मूसलाधार कमलेश्वर ने बदलते मूल्यों के संदर्भ में कहा है- धर्म अब गति देने वाली शक्ति नहीं रह गया है इसलिए एक अजीब तरह की निर्धनता है जीवन पद्धति के मूल्यों को तय करने का काम अब धर्म नहीं करता है हमारे जीवन के सवालों का जवाब देता है।[2] आधुनिकीकरण और औद्योगिकीकरण और नगरीकरण की प्रक्रिया ने सामाजिक जीवन को बहुत अधिक प्रभावित किया है। परिवार का परम्परागत स्वरूप प्रचलित मानदण्ड और यहां तक कि व्यक्ति के वैयक्तिक जीवन में भी परिवर्तन हुआ है। औद्योगिकीकरण और आधुनिकीकरण के फलस्वरूप परिवारों का परम्परागत रूप तेजी से टूट रहा है। और जहां कहा जाता है था सात पांच की लकड़ी और एक जने का बोझ, इसके प्रतिरोध के रूप में आज यह कहा जाने लगा है कि एक गमले में चार और एक में एक।[3] नवीन आवश्यकताओं में वृद्धि होने से जीवन में पुरानी व्यवस्था अपर्याप्त प्रतीत होने लगी है।

आज धनोपार्जन और परिवार को भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये पति पत्नी दोनों घर से बाहर कार्य करते हैं। उनका जीवन इतना अधिक व्यस्त हो गया है कि बच्चों और परिवार के अन्य सदस्यों पर अपना ध्यान नहीं दे पाते।

जीवन की व्यस्तता पति पत्नी के मधुर सम्बन्धों में एक तनाव उत्पन्न करती है। होता यह है

1- Science and religion and other essays, p.24
2- नई कहानी की भूमिका, पृष्ठ 107 3- मौखिक कहावत (बुन्देलखण्ड) प्रस्तोता प्रमोद कुमार शर्मा

कि वे निजी गुणों के विकास रत रहते हैं और एक ही परिवार में रहते हुए भी एक दूसरे के परिस्थिति का बोध है, सहानुभूति बोध, आत्मीयता का बोध आदि सब धीरे-धीरे समाप्त कर देते हैं।

अपनी अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये आज का हरेक आदमी नयी परिस्थिति नये मूल्यों का आविष्कार करता चलता है। मनुष्य अभी अपने परिवेश के कट जाने का बोध करता है तो कभी परिवार से वह दिग्भ्रमित होकर नये सम्बन्धों की तलाश में जीवन की विषमताओं को जोड़ लेता है और लगता है कि अभाव घिरा हुआ जीवन मनुष्य को जड़वत बनाता जा रहा है। आज मनुष्य के जीवन में सहानुभूति आत्मीयता, परस्पर सहयोग आदि का अभाव है। डा. रमेश कुन्तल मेघ का कथन स्पष्ट है- मनुष्य का अभिपर्शित, मुक्त, सचेतन और सहज कार्य ही अजनबी हो गया है। वह अपनी निजता को खो बैठा है। इस तरह अजनबी कार्यकृति तथा निर्वैयक्तिक मनुष्य क्रमशः अकेली भीड़ तथा अजनबी इंसान के हेतु है।[1] हमारा देश पाश्चात्य देशों के अपेक्षा अधिक पिछड़ा हुआ है। आज की शासन व्यवस्था और अर्थतंत्र ने पाश्चात्य मूल्यों को ले लिया लेकिन यहां के व्यक्ति को असहाय अकेला छोड़ दिया। रोजी रोटी के लिए आदमी ने आदमी की पहचान को भुला दिया वह अलग रहकर भी परतंत्र है और निजत्व के स्तर पर लुप्त प्राय है। जहां आदमी को आदमियत के मूल्य से आंका जाता था वहां आज आदमी को सिपाही, अध्यापक, छात्र, गुण्डा बदमाश आदि हिस्सों में बाँट दिया है। बदलते मूल्यों में आज का आदमी छटपटाहट महसूस कर रहा। सच्चाई तो यहां तक है कि हिन्दुस्तान का प्रजातंत्र जीवन के लिए प्रवंजना मात्र बन गया है। आधुनिकता के सहारे पूंजीवाद की बाढ़ जोर पकड़ती जा रही है। लोग अपने श्रृंगार कपड़े और विलासिता की चीजों पर पैसा पानी की तरह बहा रहे हैं, और अपने अगल-बगल आत्मीय लोगों को भी चिथड़े में लिपटे भूखे नंगे देखकर आंखें बन्द किये जा रहे हैं। देश जब आजाद हुआ था तब राष्ट्रीय मूल्यों के प्रति व्यक्तियों में जितना आत्मदान था वह उतना ही बिखर आज भ्रष्ट आचरण में लिप्त हो गया है। कमलेश्वर का कथन बहुत सटीक है- मेला उठने के तत्काल बाद ही जैसे झण्डियां, सुतलियां, बल्लियां, तोरण और अल्पनाएं बिखर और फैलकर छितरा जाती है वैसे ही आजादी का यह मेला उठते देर न लगी और चारों तरफ बिखराव, अव्यवस्था, छितराव नजर आने लगा।[2]

स्वातंत्र्योत्तर सम्पूर्ण साहित्य चेतना का केन्द्रीयभूत शब्द आत्मिकता रहा है। इस अवधि में आधुनिक होने की अवस्यकता और अत्याधुनिक होने की और अत्याधुनिक देखने की लालसा पर जितना बल दिया गया है। सांस्कृतिक क्षेत्र में हमारे देश का प्रत्येक युगीन आन्दोलन की प्राचीन मूल्य बोध के साथ जुड़कर नये मूल्यों की स्थापना की प्रक्रिया से टूट गये और धीरे-धीरे उसी रूढ़ि का शिकार हो गया जिससे वह मुक्त होना चाहता था लेकिन स्वतंत्रता के पश्चात सभी क्षेत्रों में विस्फोट पैदा हो गया है और ऐसा अनुभव किया जाने लगा कि स्थापित मान्यताओं को चुनौती देने का कार्य एक विशेष अवधि का किसी विशेष व्यक्ति या व्यक्ति समूह का नहीं होता वरन यह एक सतत गतिशील प्रक्रिया है।

आधुनिकता का बोध इस गतिशील प्रक्रिया का नैरन्तर्य प्रदान करता है। प्राचीन और नवीन

1- आधुनिकता बोध और आधुनिकीकरण, पृष्ठ 194
2- नई कहानी की भूमिका, पृष्ठ 15

मूल्यों के प्रति जितना टकराव हिन्दी की विविध विधाओं में कहानी विधा विशेष ने झेला है उतना और किसी ने नहीं। उसने कहा था (चन्द्रधर शर्मा गुलेरी), हार की जीत (सुदर्शन), ताई (विशम्भर नाथ शर्मा कौशिक), नमक का दरोगा (प्रेमचन्द्र) जैसी कहानियों का झुकाव स्थापित जीवन मूल्यों के समर्पित होने का है और आजादी के बाद लिखी हुयी कहानियों में आक्रोश, विद्रोह, तनाव, अलगाव, घुटन, सेक्स सम्बन्धी अभिनव आयामों का दौर है।

पेपरवेट (गिरजाकिशोर), एक दिन का मेहमान (कमलेश्वर), प्रतिज्ञा (राजेंद्र यादव), यही सच है (मुन्नू भण्डारी), काला रजिस्टर (रवीन्द्र कालिया) आदि कहानियों में सम्बन्धहीनता तथा सम्बन्धों के नये आयाम के मूल्यों के साथ चिन्हित किये गये हैं।

वर्ग चेतना और यांत्रिकता– आज यंत्रीकरण औद्योगिकीकरण ने सामाजिक मूल्यों में युगान्तकारी क्रान्ति की है।

वैज्ञानिक चेतना ने मनुष्य को अनुभववादी सिद्ध कर दिया है। पाश्चात्य सभ्यता का अंधानुकरण बढ़ता जा रहा है। मनोरंजन का तरीका बदल गया है। जीवन की समस्याएं वैज्ञानिक चेतना से सुलझायी जा रही हैं। बाप-बेटा एक परिवार में एक घर में एक दूसरे के सम्बन्ध का विरोध कर रहे हैं। विज्ञान ने श्रद्धा के स्थान पर विश्लेषण की दृष्टि दी है। हमारा जीवन यंत्र चालित हो गया है। जीवन के वाह्य परिवर्तन और वातावरण के चक यंत्रों से सम्बन्धित है। विज्ञान ने जीवन में सुख सुविधा की उपलब्धि करायी है इसलिए मनुष्य अपने जीवन में जाने अनजाने विज्ञान का महत्व स्वीकार करता चलता है। जानसन ने बहुत स्पष्ट कहा था कि- 'हम उस स्थिति में आ रहे हैं कि जब मस्तिष्क को, आत्मा को और पदार्थ को एक समझा जायेगा और इस दृष्टिकोण को स्वीकार कर लिये जाने पर उनके बीच वरीयता की कोई आवश्यकता नहीं रह जायेगी।'[1]

वर्ग चेतना और यान्त्रिकता ने मनुष्य के मस्तिष्क का आधुनिकीकरण किया है। आज व्यक्ति-व्यक्ति के पारस्परिक सम्बन्धों में वर्ग द्वंद्व है। शासक शासित शोषक -शोषित, पूंजीवाद - सर्वहारा, धनी, गरीब, सेठ-मजदूर, नेता नागरिक, ईश्वर-आदमी, बड़ा-छोटा के मध्य वर्ग चेतना ने एक जेहाद छेड़ रखा है। आधुनिकता वादी प्रयोगों ने मनुष्य को बाहर भीतर असंतुलित बना दिया है और ऐसा लगता है कि इस दृष्टि ने हमारे रस को ही सोख लिया है। उदाहरण के लिये कहा जा सकता है कि यांत्रिकरण और सभ्यता के विकास के संदर्भ में प्रकृति स्वयं ही निजी गुणों को खोती जा रही है। जिस तरह आज नारी फैशन की दुनियां में आकर अपने को अधिक आधुनिक और सभ्य साबित करने के चक्कर में अपना नारित्व खोती जा रही है और अधिक आधुनिकता परक हो जाने पर उसमें फूहड़पन ही दृष्टिगत होता है। केवल आधुनिकता बोध या यंत्रिकृत हो जाना ही पर्याप्त नहीं है उसमें भाव सम्वेदन का उतना ही स्थान है जितना शरीर में प्राण का। डा. विशम्भर नाथ उपाध्याय ने आधुनिकता के सिद्धान्त और प्रयोग को सम्प्रष्टि पर ला खड़ा कर देने का सुझाव दिया है- 'अभी तो इस देश में तकनीकी विकास पूरा नहीं हुआ है, न ही शिक्षा सार्वजनिक हो पायी है, तब आधुनिकता और प्राचीनता का सह अस्तित्व जब तक रहेगा तब तक समाज को समग्रता हम उसी स्तर पर नहीं ले जाते, जिस पर हम विचार कर रहे हैं।'[2]

1- A systematic introduction, p.392

2- जलते उबलते प्रश्न, पृष्ठ 70

(ख) कथा साहित्य के ऐतिहासिक संदर्भ और बदलती युग चेतना-

प्रारम्भिक हिन्दी कथा साहित्य जीवन के यथार्थ बोध से मुक्त अलौकिक व जिज्ञासावर्द्धक कार्य व्यापारों के चित्रण की प्रकृति प्रबल रही है। तत्कालीन कथा साहित्य के अन्तर्गत गृहस्थ धर्म, पारिवारिक धर्म, सामाजिक आचार-विचार आदि को महत्व देते हुए प्राचीन भारतीय मान्यताओं को आधार बनाया गया है। तत्कालीन भारतीय समाज के सुधारवादी आन्दोलनों ने आदर्श की ओर उन्मुख करते हुए कथाकारों को परम्परा की निष्ठा से जोड़ दिया है। प्रेमचन्द्र युग तक हिन्दी कथा साहित्य पारम्परित मान्यताओं के घेरे से घिरा रहा है और प्रेमचन्द्र के युग में आकर गांधीवादी विचारधारा के प्रभाव से कुछ समस्याओं को उजागर करने में बल मिला है। राष्ट्रवादी नेताओं की उग्र प्रक्रिया सन् 1920 के कांग्रेस के अधिवेशन से शुरू होती है। पट्टामिसीदार-भैया का यह कथन उपयुक्त ही है- नागपुर कांग्रेस से भारत के इतिहास में एक नया युग पैदा होता है।

निर्बल क्रोध आग्रह पूर्वक प्रार्थनाओं के स्थान पर भारतीय नेता जिम्मेवारी का एक नया भाव और स्वावलम्बन की स्प्रिट ले रहे थे।[1]

इस उबती वैचारिकता से आंदोलन काल में देश को बहुत बड़ा बल मिला। गांधी जी के नेतृत्व में राष्ट्र ने पुनः अपने राजनैतिक उद्देश्य के लिए अपनी एकता और दृढ़ संकल्प का परिचय दिया। आन्दोलन जितना व्यापक तीव्र होता गया सरकार का दमन चक्र भी उतना ही नृशंस और अमानवीय होता चला गया, किन्तु स्वराज्य के लिए भारतीय जनता हर कीमत चुकाने के लिए तैयार थी। गांधी जी के असहयोग बहिष्कार के सिद्धान्त से सामाजिक जीवन में नयी चेतना संचार हुआ। युवक, संस्थाएं, वकील, व्यापारी, विदेशी विक्रय सभी स्वतंत्रता महायज्ञ में आहुति देने के लिए निकल पड़े थे। इस स्थिति का चित्रण प्रेमचन्द्र की (लाल फीता) की कहानी में हुआ। कहानी का पात्र, हरविलास अपने हर परिश्रम से मजिस्ट्रेट के पद तक पहुंचा वह सचरित्र निर्भीक और न्यायप्रिय शासक बना। इस परिणाम उसे कई बार भुगतना पड़ा जब उसे मिलता है लाल फीते में बंधा हुआ एक गुप्त विदेश का पत्र जिसमें असहयोगियों के दमन के लिए आज्ञा दी गयी है आर्थिक कठिनाई के होते हुए भी बीस वर्ष की नौकरी से त्यागपत्र दे देता है।[2]

प्रेमचन्द्र ने गांधी जी के असहयोग आन्दोलन के हर पक्ष को कहानी में संजोया है। प्रेमचन्द्र देशवासियों में स्वावलंबन और आत्मविश्वास की भावना को जमाना स्वाधीनता आंदोलन को सफल बनाने के लिए आवश्यक मानते हैं।

डा. रक्षापुरी ने गांधीवादी विचारधारा और उसमें उबलती हुयी क्रांति को सुस्पष्ट शब्द दिये हैं- कालान्तर में गांधी जी के देशव्यापी आंदोलन और जनता के त्याग, उत्सर्ग एवं दृढ़ता ने देश के रियासतों की नींव ही हिला दी थी, किन्तु इन ताकतवर और वफादार देशी रियासतों के जाल से यह मुश्किल हो गया था कि अंग्रेजों के खिलाफ कोई आम विद्रोह पूरे देश में फैल सके।[3]

1- कांग्रेस का इतिहास, पृष्ठ 288

2- प्रेम चतुर्थी, पृष्ठ 60

3- प्रेमचन्द्र साहित्य में व्यक्ति और समाज पृष्ठ 68

फिर भी अंग्रेजों के भेदनीति से तंग आकर देशी रियासतें एकजुट होने लगी हैं और 15 अगस्त 1947 ई. के दिन मानव रक्त रंजित स्वतंत्रता भारत को मिली है और भारतीय द्वीप दो राजनीतिक भूखण्डों में विभाजित हो गया है। तत्कालीन कहानीकारों ने समाज की घटनाओं, दुर्घटनाओं और हलचल भरे राजनैतिक जीवन को विविध रूपों में अपनी कहानियों में चित्रित किया है। इस काल में सुदर्शन, विशम्भर शर्मा कौशिक, ज्वालादत्त शर्मा, चण्डीप्रसाद हृदयेश पहाड़ी, चतुरसेन शास्त्री, जयशंकर प्रसाद, भगवतीचरण शर्मा, यशपाल अज्ञेय, अमृतराय आदि अनेक कहानीकारों ने प्रेमचन्द्र पद्धति का अनुसरण करते हुए समाज के राजनैतिक जीवन को कहानियों में चित्रित किया है। 20 वीं शताब्दी के भारतीय समाजा जीवन मुक्ति आन्दोलन को विविध पक्षों से प्रभावित हुआ है। इस आन्दोलन के विरोधी तत्व विदेशी ही नहीं स्वदेशी भी थे। सम्पूर्ण राज्य वाह्य और आंतरिक सम्बन्धों में उलझा रहा। राजनैतिक संघर्ष के साथ-साथ सामाजिक बुराइयों को सुधारने के लिये सुधार आन्दोलन भी चलाये गये। कदाचित राजनैतिक क्षेत्रों में यह समझा जाने लगा था कि समाज की कुछ विशेष कुरूतियां मुक्ति आन्दोलन को शिथिल बना रही हैं इसलिए नशाबंदी, अस्पर्शता, निवाराण और स्वावलम्बन पर विशेष बल दिया गया। समाज के जीवन के प्रति सर्वांगीण राजनैतिक दृष्टि गांधी जी की जयती से बदलाव में आयी। इस काल में कथासाहित्य की पृष्ठभूमि मुख्यता दो विचारधाराओं में बंटी हुयी थी। पहली मावधारा के समर्थक जयशंकर प्रसाद थे जिन्होंने कथासाहित्य को परम्परानुमादित आदर्शवाद की ओर बढ़ाया और दूसरी विचारधारा एवं प्रवर्तक प्रेमचन्द्र थे जिन्होंने समस्या मूलक उद्भावनाओं को जागृति दी। नारी और समाज सुधार, वैश्या जीवन तथा दहेज उन्मूलन, अनमेल विवाह तथा बहुपति-पत्नी विवाह आदि समस्याओं को लेकर प्रेमचन्द्र ने सामाजिक मूल्यों का निर्धारण किया।

1- कथा साहित्य में उगती वैचारिकता तथा बदलता परिप्रेक्ष्यः-

स्वातांत्रयोत्तर हिन्दी कहानियों में समाज विषयक गुणात्मकता का बोध होता है। आज की कहानी चतुर्दिक दिशाओं से सामाजिक मूल्यों के प्रति यथार्थवादी वातावरण बनाये हुये। सामाजिक परिवर्तन से प्रेरित जीवन मूल्यों के प्रति आज के कहानीकार अत्यधिक सजग एवं सचेष्ट हैं। उनके कहानी साहित्य में इन परिवर्तित जीवन मूल्यों को अभिव्यक्ति मिली है। आज का व्यक्ति वर्तमान समाज में परिवर्तन चाहता है। आज के युग में चाहे स्त्री हो पुरुष, उनके पारस्परिक सम्बन्धों में बदलाव आता जा रहा है।

समकालीन कहानी साहित्य पुरानी मान्यताओं के घेरे से निकल कर व्यक्ति के बदलते हुए आयामों से आज जुड़ रहा है। सच तो यह है कि समाज के विकास में भिन्नता व समन्वय स्थापित करती है ताकि संघर्ष की स्थिति पैदा न हो इसीलिए समाज को भिन्नता व समन्वय का गत्यात्मक संतुलन कहते हैं।[1] स्वतंत्रता के पश्चात नई पीढ़ी ने समाज के खुरदुरे प्रतिमानों से जिस भारत का जीताजागता रूप देखा है उसकी इच्छा है कि उसे छूकर देख समाजवादी चेतना ने कहानीकारों के विशिष्ट स्वर प्रदान किये। स्वाधीनता से पहले गांव का कैसा शोषण था मार्कण्डेय लिखते हैं-

1- स्वातंत्रयोत्तर कथा साहित्य में सामान्य संतुलन, पृष्ठ 38 (सीताराम शर्मा)

कोई 25 वर्ष बीते होंगे जब दुखना का पति जीवित था 10 बीघे का काश्तकार है किन्तु वह चल बसा और दूसरे दिन ठाकुर ने बेदखली का हुकुमनामा भेज दिया।[1] गांधीवादी स्वराज की उपलब्धि केवल इतनी ही नहीं की किसान को शोषण से मुक्त कराया जाये उसे पंचायतराज की कल्पना भी विशिष्ट थी। मार्कण्डेय ने रियासती और सरकारी हुक्मनामा का अन्तर समझाते हुए यही कहा है कि पहले जमींदार का कारिन्दा व वारंट लेकर पंचायतराज पर व्यंग्य दृष्टि पर प्रहार करते हुए उन्होंने कहा है 'हमी को तो पिसना है' दादा मरेंगे, जरेंगे हम, अन्य उपजायेंगे पर मजा दूसरे पा रहे हैं पंचायत बनी थी किसानों के फायदे के लिए और सरपंच हो गये गयादीन ठाकुर उनकी खूब मुट्ठी गर्म होती है।[2] आज का मनुष्य पुरानी रीतियों और आस्थाओं में झुलस रहा है। 20 वीं सदी के वर्तमान दशक में भी गांव को बीच जमींदार अभी भी कायम है। शिवप्रसाद सिंह ने लिखा है- रामसुगम तिवारी गांव के जमींदार थे। जमींदारी भले ही छूट गयी पर उनके घर अब भी 400 बीघे पक्के सीर होता है।[3] सामाजिक विद्रूपताएं आज भी अपना सिर उठा रही हैं। डा. सिंह की कहानी का पात्र कम्बो नारी जीवन की मार्मिक कहानी का उद्घाटन है यद्यपि अन्याय और शोषण चिरजीवी नहीं होते लेकिन फिर भी आज गांव से लेकर शहर तक भटकती नारी की स्थिति दुखद है।

चिड़ियों के जाल में फंसाने वाले बहेलिये भी इतनी फुर्ती से अपना काम न कर पाते होते जैसी फुर्ती जमींदार के गुन्डे मासूम औरतों को पकड़ने में दिखाते हैं।[4] शहरों में नारी यातना की कहानी और अधिक बेजोड़ है। कमलेश्वर ने 'एक थी कमला' कहानी में उस नारी का चित्रण किया है जो महानगर में चारों तरफ की यातनाएं भुगत रही है।[5] नारी संकट की कहानी यहीं नहीं खत्म होती क्योंकि उसके आगे कुछ हुआ ही नहीं है। दरअसल आज के समाज में नारी की स्थिति में उस सुन्दर खिलौने सी है जिसे पुरुष लेने की हठ करता है और ग्रहण करते ही धड़ाम से तोड़ देता है। मध्य वर्ग की सामाजिक संस्कृति अवधारणाओं के प्रति कहानीकारों ने मानवीय सम्बन्धों के संदर्भ में बदलते मूल्यों के साथ इन धारणाओं को उजागर किया है प्रतिगामी पीढ़ी जो भूत को आदर्श मानकर चल रही है उसे आगामी पीढ़ी का बोझ बढ़ता ही जा रहा है। आज आवश्यकता इस बात की है कि नई पीढ़ी परिवेश में अपने हस्ताक्षर बनाये। आज सामाजिक समवाय इतना संकुल और जटिल है के उगजी हुयी वैचारिकता ही ग्रहण करने में समर्थ हो सकती है।

अतः आज के कहानीकार ने जिन्दगी का मुहावरा समझ कर आत्मसात करने का प्रयास किया है। आज के जीवन के रास्ते में विरोध के रास्ते में पहाड़ भी आ सकते हैं और खाई भी, पर पहाड़ों का लांघकर और खाइयों को पाटकर हमें अपना जीवन रास्ता चुनना ही होगा। मानव एक स्वतंत्र व्यक्ति के पुनर्निर्माण के लिए सतत प्रयत्नशील रहा मानवतावाद का अभिप्राय यह है कि मनुष्य का आधुनिक जीवन केवल बुद्धि के अर्थ में ही सार्थक नहीं अपितु उसमें भाव संवेदना का भी प्रबल स्थान बने। स्वातंत्र्योत्तर कहानीकारों ने पारम्परिक मूल्यों का मूल्यांकन किया और उनमें नये नये मूल्यों का समावेश किया। मानव जीवन दिन प्रतिदिन बदलता जा रहा है। उसके सोच विचार रहन सहन में काफी फर्क आ गया है। डा. बच्चन सिंह ने लिखा है- मानव मूल्य अपेक्षाकृत अधिक व्यापक और दुरुह है इससे जाहिर है कि यथार्थ के बदल जाने से मूल्य भी

1- हरामी के बच्चे- महुए का पेड़, पृष्ठ 39
2- हंसा जाये अकेला, पृष्ठ 54
3- कर्मनाशा की हार, पृष्ठ 153
4- कर्मनाशा की हार, पृष्ठ 105
5- खोयी हुयी दिशायें, पृष्ठ 101

बदल जाते हैं।[1] मानव समाज में परिवर्तन आता है और जीवन मूल्य बदलते हते हैं। सचमुच यह यथार्थ परिवर्तन आता है और मानवीय सभ्यता के आदि युग से आज तक परिवर्तनों में विभिन्न स्थलों का विवेचन यह सिद्ध करता है कि भौतिक परिस्थितियों के बदल जाने से विचारधारा में भी परिवर्तन आता है। इन आवश्यकताओं के फलस्वरुप मानवीय आचार विचार तथा आध्यात्मिक आदर्शों का उदय और विलय और नवीनीकरण होता रहता है यही आचार विचार और आदर्श किंचित अर्थ भेद के साथ मानव मूल्य कहे जाते हैं।

डा. रमेश चन्द्र ने स्वातंत्रोत्तर बदले परिप्रेक्ष्य में मानव मूल्यों को स्वीकारते हुए लिखा है कि अब तक स्थिति से यह स्पष्ट है कि व्यक्ति स्वतंत्र बन्धुत्व, मानव समानता, न्याय, प्रेम और युग विचार सम्बन्धी वे मूल्य हैं जिनकी ओर नये कहानीकारों का ध्यान आकर्षित हुआ है। समाज की यथार्थ स्थिति में इनका विशेष महत्व न होने के कारण व्यंग्यपरक विद्वता का चित्रण हुआ है और यही नवीन मूल्यों का संकेत कर रहा है।[2]

वस्तुतः इन जीवन मूल्यों का बौद्धिक और भावनात्मक दोनों स्तरों पर विकास हुआ है। स्वातंत्रोत्तर कहानी आचरण के मूल्यों को नकारती गयी है।

मध्य वर्ग की प्रेमजनितक कुण्ठायें आज के कहानीकारों का आधार बनी हुयी हैं। आज प्रेम मूलतः ऐन्द्रिक बन गया है। आकर्षण इसकी धुरी है। आज के कहानीकार में प्रेम की समस्या कथ्य का रूप लेकर समाविष्ठ होती जा रही है। प्रेम और समाज दो विरोधी बातें लगने लगी हैं, जिसके कारण पति-पत्नी और प्रेयसी या पति-पत्नी या प्रेमी दो न होकर तीन हो गये हैं। बदलते परिप्रेक्ष्य में मानव मूल्यों का यह बिखरा रूप ही कहा जा सकता है। खेल-खिलौने में राजेन्द्र यादव की यह धारणा बहुत स्पष्ट है- तन ने मन को निगल लिया। आत्मसात कर लिया।

केवल तन की दीवारें सामने हैं जो छूने पर बिजली के करेंट की तरह झटका देती हैं।[3] प्रेम की समस्या को सिर्फ मध्यवर्गीय मानसिकता का विकृत और कुण्ठित प्रतिबिम्ब बताकर एक तरफ उठा फेंकना सारे सामाजिक ढांचे को नजर अंदाज करना है। प्रेमसूत्र में बिगड़ने वाले मानव मूल्य अपने आप के लिये नये तस्वीर के रूप में है। निर्मल वर्मा की कहानियों में वैयक्तिक चेतना के मूल्यवादी रूप सामने उभर कर आये हैं। जलती झाड़ी की लवर्स कहानी में आत्मकेन्द्रीयता की उफान है। कहानी का पात्र में परिवेश को भोगता है। पुरुष और नारी के सम्बन्ध का मूल्य वैसे उसके पास हो ही नहीं। नारी उसके लिये आज भी भोग्य है। अपनी गरज के निमित्त तो वह उसकी चप्पलें अपने हाथों में पकड़ सकता है। अपने रुमाल में बांध सकता है और कहिये तो उसके तलवे भी चाट सकता है।[4] बदलते परिप्रेक्ष्य में विचारधारापरक मानव मूल्यों में सांस्कृतिक परिवेश का पर्याप्त प्रवाह दिखाया हैं। यदि कोई कहानीकार भावुकता का सहारा लेकर आज को अबूझ स्थिति से आरोपित अर्थ भर देने की चेष्टा करता है तो वह उसकी जल्दबाजी ही है।

'सितम्बर की एक शाम' इसी यथार्थ की सम्भावना और व्यर्थता का अन्तर्विरोध दिखाते हुए चित्रित की गयी कहानी है। अतीत के प्रेम से छुटकारा पाकर मुक्तावस्था में व्यक्ति की चेतना को यथासम्भव प्रकाशन बनाया गया है। जिन्दगी के संदर्भ में व्यर्थता का उसे आभास है लेकिन अतीत के प्रति उसका लगाव इतना भीतरी होता है जिससे छुटकारा पाना सम्भव नहीं है। निर्मल

1- समकालीन साहित्य, पृष्ठ 129

2- हिन्दी कहानी में जीवन मूल्य, पृष्ठ 55

3- खेल खिलौने, पृष्ठ 4

4- जलती झाड़ी, पृष्ठ 28

वर्मा की कहानी का नायक कहता है- आज तुम सोचती हो कि मैं इससे भिन्न हो सकता था जो आज हूं वह उन दिनों मेरे भीतर था।[1]

आज के कहानीकारों की कहानियों में व्यक्तिगत चेतना परक स्थितियों का अधिक तकाजा है। यह व्यक्तिगत परिवेश अलगाव को पैदा करता जा रहा है और इधर कहानी कला चिन्तन सृजन की बेईमानी में इधर-उधर भटकती जा रही है। लिवलिजी भावना से रौंदी हुयी जीवन की वास्तविकता उसके मन पर किस प्रकार प्रतिक्रिया करती है। दृष्टव्य है- 'मैं पहली बार इस घर में आया घर में कोई परदा करने वाला तो नहीं था पर बड़ी झिझक लग रही थी मैं गौर से भाभी को ताक रहा था......................वे जान गईं कि मैं उन्हें देख रहा हूं पर जैसे इसमें सकुचाने या सिमटने की कोई बात ही नहीं थी।'[2] कहानी में बढ़ती सहधर्मी सूत्रता आज फूटती वैचारिकता को साथ लिये हुए है और लगता है कि आजकल मानव खण्डित व्यक्तित्व से ढंके दोहरेपन को ढो रहा है। तमाम कहानियों में रचना प्रक्रिया की एवं आज के व्यक्तित्व की कुण्ठाएं एवं दमित वासनाएं अभिव्यक्ति पाने के लिए छटपटा रही हैं। भोगा हुआ मानव मूल्य भी आज की कहानियों का विवेच्य विषय है। सैद्धांतिक दृष्टि से मोहभंग में डूबा हुआ कथाकार केवल दमित वासनाओं को ही नहीं ओढ़ रहा है बल्कि सामाजिक संदर्भों में मृत्युगामी शक्तियों से जूझते हुए दायित्व के निर्वाह की अपेक्षा भी कर रहा है। मार्कण्डेय जैसे कहानीकार के लिए यह बात निर्विवाद सत्य है। पौरुस्तय के आस्था की सीधी अभिव्यक्ति उनकी कहानी में है। 'प्रलय और मृत्यु' कहानी का कथ्य की पुष्ट करता है मनुष्य अजेय है, उसकी चिन्ताग्रस्त आंखें बता रही हैं कि वह सोच रहा है। क्षण भर को वह हस्तबुद्धि हो गया है पर उसकी शक्तियां तो अपनी जगह हैं।[3]

कथा साहित्य में उगती वैचारिकता ने बदलते मूल्यों को अभिनव दिशाएं दी हैं। समग्रतः आज के परिवेश का दायित्व व्यक्ति के निजी जीवन दर्शन से ओतप्रोत है। प्राचीन आचरण सम्बन्धी मूल्यों का विघटन हो ही गयी है। आज के कथाकार के सामने प्राचीन मूल्यों का चश्मा नहीं है, इसलिए वह भी पुराने मूल्यों का अर्थ बदलना चाहता है। उदाहरण के लिये ऊषा प्रियम्बदा का कहानी को लिया जा सकता है। माता-पिता की सेवा का अब कोई अर्थ नहीं रह गया है। वृद्धावस्था में सुख की कामना करने वाले पिता को आज का परिवार बर्दाश्त नहीं कर पा रहा है।[4]

नर नारी के जीवन में बनते बिगड़ते मूल्य निजता के परिचायक बन गये हैं। आज के अर्थ में संकुल समाज में धन और पद दोनों वस्तुएं सामाजिक प्रतिष्ठा के लिए मेरुदण्ड हैं।

धन का मोई कई बार पति को इतना पतित बना देता है कि वह अपनी पत्नी को धनी, सम्पन्न और उच्च पदासीन अफसरों से सम्बन्ध बनाने की प्रेरणा देता है। मन्नू भण्डारी की नई नौकरी का पात्र कुन्दन अपनी पत्नी के बल पर उच्च शिखर पर चढ़ना चाहता है। कुन्दन के कानों में डा. फिशर के शब्द प्रायः गूंजते रहते हैं- 'यू विल हैव टू वी वेरी सोंशल, लवली योर वाइफ।'[5]

इन बातों में निहित संकेत और आश्वासनों को समझकर कुन्दन आश्वस्त होता है। डायरेक्टर के स्वागत के लिए वह अपना घर सजाता है और चाहता है कि किसी तरह अपने और फिशर के बीच हुयी ताजा बातें रमा को सुनाये। पति-पत्नी के सम्बन्धों के विघटन के लिए प्रत्येक स्थान पर केवल पति को दोषी नहीं ठहराया जा सकता, पत्नी भी है।

1- परिन्दे, पृष्ठ 118
2- राजा निरवंशिया (कमलेश्वर), पृष्ठ 70
3- हंसा जाई अकेला, पृष्ठ 171
4- वापसी, पृष्ठ 56
5- मेरी प्रिय कहानियां, पृष्ठ 42

विष्णु प्रभाकर की 'ठेका' कहानी का पति-पत्नी से इसलिए नाराज है कि वह उसे बिना बताये किसी व्यक्ति के पास क्यों गयी, परन्तु ज्यों ही पत्नी उसे ठेका मिलने की सूचना देती है वह प्रसन्न हो जाता है। इधर गिरिराज किशोर की कहानी में पति पत्नी के अतिरिक्त तीसरे आदमी की परिकल्पना की गयी है।

पत्नी रीता ऊंची अफसर है और पति क्लर्क है।

पत्नी का अवैध सम्बन्ध डिप्टी सेक्रेटरी से है। पति मामूली क्लर्क होने के कारण चाहते हुए दोनों का बोध करने में असमर्थ है और मन ही मन कुढ़ता रहता है। पति के मन में हीन भावना प्रवेश पा जाती है और वह पत्नी द्वारा की गयी साधारण सी बात में भी दूसरे अर्थ खोजने लगता है।

'प्रतीक्षा' राजेंद्र प्रसाद की कहानी में हर्ष नाम का पात्र पत्नी के रहते हुए भी नन्दा से सम्बन्ध बनाये हुए है और चाहता है कि उसकी पत्नी को कोई प्राणलेवा बीमारी हो जाये ताकि उसके मरने की स्थिति में वह नन्दा से विवाह कर सके। विजय मोहन सिंह की 'वे दोनों' कहानी का पति अनिल पत्नी से कार्यालय को कहकर घर से चला जाता है, लेकिन कार्यालय से अवकाश लेकर वह पार्क में लेटा हुआ 'प्रीति' नामक लड़की से चुहल करता रहता है और इधर पत्नी उसे चौंकाने के विचार से बिना सूचना दिये मिसेज शुक्ला के कार्यालय चली जाती है।[1] आधुनिकता की चेतना देहात के स्त्री वर्ग में भी कहीं-कहीं दिखायी दे रही है। अन्धविश्वासों का कुहासा धीरे-धीरे हट रहा है और स्त्री अपने अधिकारों के प्रति सचेत हो रही है।

वह पुरुष केन्द्रित समाज में अपने बल पर जीने का अधिकार मांगने लगी है। धर्मवीर भारती की 'गुलकी बन्नो' पात्र 'सती' इसी चेतना से सम्पन्न है। वह साबुन बेचकर आजीविका चलाती है और गांव के परम्परागत समाज के मध्य अपनी आसीमता बनाये रखती है।

पति द्वारा प्रताड़ित 'गुल' को दुर्दिन में वह सहारा देती है और उसे समझाती है कि अत्याचारी पति के सामने उसे कभी सिर नहीं झुकाना चाहिए।

'अच्छा किया तुमने।

मेहनत से दुकान करो। अब कभी थूकने भी मत जाना उसके यहां। हरामजादा दूसरी और कर ले चाहे दस और कर लो। सबका खून उसी के मत्थे चढ़ेगा। यहां कभी आये तो कहलाना मुझसे, इसी चाकू से दोनों आंखें निकाल लूंगी।'[2]

यांत्रिक सभ्यता ने मानव को इतना आत्मकेन्द्रित और स्वार्थी बना दिया है कि आसपास घटित होने वाली बड़ी से बड़ी घटना उसे द्रवित नहीं कर सकती। कमलेश्वर की कहानी 'दिल्ली में एक मौत' का 'मैं' पात्र उस बिल्डिंग में रहने वाले दूसरे लोग सेठ दीवानचन्द्र की मृत्यु का समाचार पाकर भी उससे अप्रभावित रहते हैं, उनका दैनिक जीवन सामान्य गति से चलता रहता है।

जैसे कुछ हुआ ही न हो। 'मैं' अपने कमरे में छिपा रहता है और उधर आंख पर संकित होकर इधर-उधर देखता है कि उसे ठंड में सुबह-सुबह शवयात्रा पर चलने का कोई आग्रह न करे।[3]

यांत्रिक सभ्यता ने मानवीय संवेदना को इतना कुण्ठित कर दिया है कि श्रद्धा, सहानुभूति

1- टट्टू सवार, पृष्ठ 47
2- बन्द गली का आखिरी मकान, पृष्ठ 77
3- मेरी प्रिय कहानियां, पृष्ठ 79

और प्रेम जैसी उदास भावनाएं मन को स्पर्श तक नहीं कर पातीं। आज की कहानियां 'आज' को बुन रही हैं।

आज अभिनव धारणाएं अभिनव मार्ग पर अभिनव दिशा लेकर गतिमान हो रही हैं, जिससे समाज के आधारभूत प्रश्न आज की मानसिकता के साथ लटके हुए हैं। वस्तु सत्य से परे आज के समाज में एक ऐसी आन्तरिक सूक्ष्म अनुभूति काम कर रही है, जो व्यक्तिगत रेशे-रेशे में बिखेरना चाहती है।

आज के व्यक्ति के लिए सबसे बड़ी चिन्ता है समाज सापेक्ष भाव संवेदन के वैज्ञानिक यांत्रिकी की जो मानव को विन्यस्त करती जा रही है। आज के कथाकार ने जीवन में संदर्भ और प्रवृत्ति को परखने तथा चित्रित करने के लिए सामान्य एवं विशेष पात्रों की सृष्टि की है। मनहर चौहान कृत 'मत छुओ' कहानी में पात्र के उन जीवन क्षणुओं का वर्णन है जो लौट नहीं सकते और उनकी स्मृति मात्र शेष रह गयी।[1] मन्नू भण्डारी ने 'चश्मे' कहानी में मनुष्य के विविध पात्रगत दृष्टिकोणों का परिचय दिया है जहां एक ही वस्तु को पात्रगत विचारणों से भिन्न भिन्न देखा जाता है तथा एक पात्र एक ही वस्तु को विचार के विविध दृष्टिकोणों से देखने का प्रयास करता है। मि. वर्मा और मिसेज वर्मा दोनों सामान्य एवं विशेष पात्र के क्रमशः परिचायक हैं। मि. वर्मा चश्मे का प्रयोग नहीं कर रहे थे। उनकी धुंधली आंखों के सामने एक और ही अस्पष्ट सा पत्र उभरने लगता है। धीरे धीरे इसका प्रत्येक शब्द बिना चश्मे के स्पष्टतर होता गया।[2] स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानियों ने उगती वैचारिकता के साथ साथ बदलते परिप्रेक्ष्य की पहचान की है। टूटते हुए पारिवारिक सम्बन्ध, बनते हुए नवीन सम्बन्ध, नारी का आज संघर्ष, नारी का प्राचीन भाव से मिलकर नवीन विचारभूमि में प्रयोग, बदलता हुआ परिवेश मानव के अस्तित्व का प्रश्न, प्रेम और यौन सम्बन्धी समस्याएं एवं मनुष्य का विश्रृंखल होता हुआ व्यक्तित्व आदि कथा व्यथा के नये आयाम हैं। नयी कहानी जीवन मूल्यों एवं जीवन दर्शन का नवीन संदर्भ में पर्याय है। उसने पुराने ढांचे को तोड़कर नया मुहावरा खोज निकाला है उसमें आधुनिकता की चुनौती स्वीकारने की क्षमता हैं। जीवन के विरुद्ध पहलुओं, सूक्ष्म स्तरों को छूने तथा पकड़ने की लालसा है, उसने आधुनिक जीवन की विषमताओं, कुंठाओं से ग्रसित मानव के हृदय की रोमानी स्थिति का बड़ा सूक्ष्म विवेचन किया है और इन सारी आधुनिक जीवन की परिस्थितियों से उत्पन्न मानव बोध ही आधुनिक बोध है। इस युग के सजग कहानीकार ने बदलते मूल्यों के साथ भोगे हुए यथार्थ को अभिव्यक्ति प्रदान की है।

2- ऐतिहासिक परिदृश्य और आधुनिकता:-

आज का कथाकार मनुष्य के चेतना प्रवाह में निमन्जित होकर यथार्थ का अन्वेषण कर रहा है। यह तथ्य कम आश्चर्यजनक नहीं है कि हिन्दी का कथा साहित्य जो किस्सा, कहानी के दौर से गुजर रहा था वह आधुनिकताबोधीय सापेक्षता को लेकर आज सीना तानकर खड़ा है। आज की हिन्दी कहानी की अपनी रचना सापेक्षता में जिस बिन्दु पर रेखांकित है वह बिन्दु कहानी की विकास यात्रा का अगला पड़ाव न होकर एक और शुरुआत है। इस यात्रा में जिस रास्तों से होकर

1- मत छुओ, पृष्ठ 60

2- मन्नू भण्डारी की श्रेष्ठ कहानियां, पृष्ठ 43

वह आज गुजरी है वे नये होने के साथ-साथ वे उसके अपने खोजे हुए हैं इसलिए किसी भी बिन्दु पर खड़े होकर कहानी का इतिहास नहीं लिखा जाता यह बात बिल्कुल ही सटीक है कि जहां ऐतिहासिक परिदृश्यों में कहानी विधा ने आदर्श के ताने बाने की शुरुआत की थी वहां आज वही विधा रचनाधर्मिता को ईमानदारी से आत्मसात करते हुए जीवन, समाज, परिवेश से स्वतः ही जुड़ गयी है। प्रमाण सापेक्ष वास्तविकता और प्रमाण निरपेक्ष जीवन दृष्टि ये दो ऐसे प्रसंग रहे हैं जिनके बीच कथा रचना टकराती रहती है। डा. धनंजय ने लिखा है- इस बात को तब आसानी से समझा जा सकता है जब इस वैशिष्ट्य को भी ध्यान में रखा जाये कि आज की हिन्दी कहानी समसामयिक अनिवार्यताओं के बींच से उद्भूत होकर उन्हीं के साथ साथ क्रमशः बढ़ती गयी है............स्पष्ट है कि इसका उन्मेष उसी चरम् सीमा तक जाता है, जिस सीमा तक ऐतिहासिक परिदृश्य अंततोगत्वा सपाट सरल पृष्ठभूमि बन जाता है। परिवेश की ऐतिहासिकता कहानी की रचनात्मकता को ग्राह्यता के स्तर तक लाती है, यह ऐतिहासिकता उसकी केन्द्रीय स्थिति को पुष्ट तथा कला शिल्प को समृद्ध करती है।[1]

1- समकालीन कहानी दिशा और दृष्टि, पृष्ठ 11

आजादी के बाद का नवलेखन एक और आधुनिकता को एक दृष्टि के रूप में गहराई प्रदान करता है तो दूसरी ओर सृजनात्मक साहित्य को घुलनशील बनाता रहा है। आधुनिकता का विवेचन जिस प्राथमिक एवं मुख्य समस्या के रूप में उभारता है वह उसका विकल्पात्मक स्वभाव है और यह उसकी अनिवार्य निर्मित है। आधुनिकता कतिपय परिदृश्यों को साथ लेकर एक ऐतिहासिक दौर से गुजरी है और आज भी जारी है। उसकी पहचान उतरते चढ़ते, गिरते-पड़ते, अनेक पहलुओं से की गयी है तभी तो डा. इन्द्रनाथ मदान ने इसे ऐतिहासिक अनिरन्तरता कहा है।[1] निर्विवाद सत्य है कि न तो आधुनिकता को एक दृष्टि के रूप में अर्जित किया जा सकता है और न उसे नपे तुले शब्दों में ही कहा जा सकता है। उसमें तो टूटते विश्वास और बढ़ते चरण सभी समाहार हो जाते हैं। यह एक ऐसा बोध है जो टिकने या रमने की छूट नहीं देता है जो इससे छूट जाना चाहता वह सही अर्थों में आधुनिक नहीं हो सकता इसे कहीं टूटते बनते सम्बन्धों से स्पष्ट किया जाता है तो कहीं अन्तर्विरोधों की पहचान बताया जाता है। आलोचक आधुनिकता को समझने के लिए भीतर व वाह्य वैयक्तिक परिवेशों का आंकलन करता है और कहता है कि इसमें एक और वैयक्तिकता है तो दूसरी ओर सामाजिकता है, एक ओर नैराश्य है तो दूसरी ओर जीवन का यथार्थ भाष्य है। एक ओर मानव नियति का अहसास तो दूसरी ओर आत्म संघर्ष की विकट स्थिति है। आधुनिकता अपने अनेक जटिल संदर्भों में अनूठी और विलक्षण है। आज आधुनिकता की प्रवृत्ति ने ऐसी परिवर्तनीय दिशा का निर्धारण किया है जो पारिवारिक सामाजिक और बिगड़ते सम्बन्धों को अपने कंधों पर ढोती जा रही है। ऐसा कहने में भी कोई हिचक नहीं है कि आधुनिकता की वजह से जीवनगत इतिहास का पल्लवन हुआ है। 19 वीं शताब्दी में सामाजिक परिवेश में परिवर्तन हुआ। नये औद्योगिक नगरों की नींव पड़ी। आर्थिक व्यवस्था में परिवर्तन हुए जिससे जनता की विचारधारा भी प्रभावित हुयी, दूसरी ओर समानता प्रचारक शिक्षा पद्धति ने जनमानस को प्रभावित किया, जिससे सामाजिक परिवर्तन होने लगे। यह परिवर्तन व्यक्ति और समाज, ईश्वर और व्यक्ति, पुरुष और स्त्री, मालिक और नौकर के सम्बन्धों में विशेष रूप से देखा गया। इतिहास, दर्शन की व्याख्या जब मात्र रोमांटिक नहीं रही अपितु इसका परीक्षण वैज्ञानिक एवं क्रान्तिकारी दृष्टि से किया गया। इतिहास की दृष्टि से नहीं व्याख्या करने वाले दार्शनिकों में हरबर्ट स्पेन्सर, मार्क्स, जान स्टर्ट, मिल, चार्ल्स डार्विन आदि मुख्य हैं। बहुत ही स्पष्ट है, कि ऐतिहासिक परिदृश्यों में मनुष्य के अस्तित्व के लिए विचारकों ने बार-बार ध्यान दिया है। डा. शिवप्रसाद सिंह का मत है- 'आधुनिक कल्याणकारी शासन के विशाल मशीनी संयंत्र में मनुष्य मामूली बन चुका है।[2] व्यापक पैमाने पर मनुष्य के हाथों का काम छीन लिया गया है। तकनीकी पद्धति हमारे जीवन को इतना प्रभावित करती चली जा रही है कि उसके अभाव में आगे बढ़ना नहीं चाहते।'

तकनीकी के प्रभाव से मनुष्य के रहन-सहन, तौर-तरीके और सम्बन्धों में ही परिवर्तन नहीं आया बल्कि तकनीकी ने साहित्य, दर्शन, संगीत, चित्रकला सभी को परिवर्तित करके रख दिया है। इस प्रकार मशीनी सभ्यता ने जीवन और जगत में विषमता और अलगाव भर दिया है। कुछ एक प्रचारक इन अलगाववादी पद्धतियों के बीच भी अपनी अवधारणा अलग रखते हैं। उनके मतानुसार प्रत्येक युग जिसमें परम्परागत धारणाओं और मूल्यों के प्रति विद्रोह हुआ और नये

1- आधुनिकता और हिन्दी साहित्य, पृष्ठ 19

2- आधुनिक परिवेश और अस्तित्ववाद, पृष्ठ 71

मूल्यों की स्थापना हुयी अपने पूर्ववर्ती युग की तुलना में आधुनिक ही हुआ है। ऐतिहासिक परिदृश्यों में आधुनिकता को समझने के लिए कह सकते हैं कि केवल आज का युग ही आधुनिक नहीं है इससे पूर्व भी आधुनिक युग और आधुनिक मानव हुए हैं। डा. रमेश कुन्तल मेघ का कथन विचारणीय है- आधुनिक होना केवल आधुनिक मनुष्य का ही एकाधिकार नहीं है। लगभग सभी कालों में आधुनिक मनुष्य (अर्जुन, कौटिल्य, कबीर) भी हुए हैं और इससे पहले भी आधुनिक युगों की उपज हुयी है। जब-जब पवित्र आस्था की चेतना को तार्किक चेतना के विवेक ने अपदस्थ किया है, तब-तब आधुनिकता की झुंझलाहट हुयी है।[1]

प्रागैतिहासिक काल में बुद्धमत ने अपने समय की सामाजिक कुरीतियों और अंधविश्वासों का विरोध किया।

बुद्धमत का काल अपने पूर्ववर्ती काल की अपेक्षा निश्चय ही आधुनिक रहा होगा। यह अलग बात है कि आज के संदर्भ में वह पुराना पड़ गया हो कबीर ने अपनी परम्परा के विरुद्ध विरोध किया और एक नये जीवन दर्शन को सामने रखा।

20 वीं शताब्दी, 19 वीं शताब्दी की अपेक्षा आधुनिक ही है, लेकिन इस गतिमान आधुनिकता बोध को सभी विचारक एक जैसा ही नहीं मानते। इस वर्ग में उन विद्वानों का विशेष योग है। जो आधुनिकता को आधुनिक युग देन ही स्वीकार करते हैं।

आधुनिकता को सनातन मानने वाले विद्वानों का विरोध करते हुए डा. लक्ष्मीकान्त वर्मा ने लिखा है- जो लोग यह मानते हैं कि प्रत्येक युग आधुनिक रहा है- शायद वे 'आधुनिक' का नितान्त चलताऊ अर्थ समझते हैं।[2]

यदि पिछले युगों की मूल चेतना पर गहराई से विचार किया जाये तो प्रतीत होता है कि प्रत्येक देश की जीवनगत संबंधी तार्किक दृष्टि भिन्न-भिन्न रही है।

आज वैज्ञानिक अन्वेषणों का संसार है, जिसे सभी देश समान रूप से आगे पीछे अपना रहे हैं, परन्तु मानव मूल्यों और सामाजिक जीवन संबंधी विचारधाराओं में तालमेल नहीं है।

खासतौर पर दो विचारधाराएं पूरी दुनियां में प्रवाहित है।

(1) सामन्तवादी विचारधारा (2) समाजवादी विचारधारा।

सामन्तवादी विचारधारा व्यक्ति की स्वतंत्रता को सामाज सापेक्ष मानकर व्यक्ति के स्वतंत्र अस्तित्व का हनन करती है और इधर साम्राज्यवादी देश समाजवादी विचारधारा का विरोध इस विचार पर करते हैं कि इसके अन्तर्गत मनुष्य का अस्तित्व मशीन में पुर्जे की भांति होता है। इस प्रकार आज विश्व में एक ओर व्यक्ति स्वातंत्र्य और प्रजातांत्रिक अधिकारों का स्वर प्रधान हो रहा है तो दूसरी ओर समाजवाद और राष्ट्रवाद का।

प्रत्येक देश की आधुनिक संबंधी दृष्टि अपनी है। अगर इनमें समानता है तो केवल एक ही है, वह है वैज्ञानिक दृष्टि, जो विश्व को निरन्तर सत्य के आयामों के अन्वेषण की ओर उत्साहित करती है और मानव मूल्यों को निरन्तर गतिशीलता प्रदान करती है। आधुनिकता के मूल्य में वैज्ञानिक जीवन दृष्टि उसे कहते हैं कि जो समसामयिक जीवन को उसके गति में ग्रहण करे।[3] साहित्य के संदर्भ में आधुनिकता का अर्थ तो जुड़ा ही है, साथ ही साथ कलागत प्रभाव को भी

1- आधुनिकता और आधुनिकीकरण, पृष्ठ 56 2- नये प्रतिमान पुराने निष्कर्ष, पृष्ठ 38
3- आधुनिकता और हिन्दी कहानी (डा. इन्द्रनाथ मदान), पृष्ठ 184

देखा जा सकता है। डा. गंगाप्रसाद का विचार है- 'चिन्तन का कला पर प्रभाव सा कला का चिन्तन पर प्रभाव से दोनों बातें अन्योन्याश्रित है। यूरोपीय का आन्दोलन यदि यूरोपीय कला आन्दोलन यदि चिन्तन धाराओं को प्रभावित करता है तो भारत में मोक्ष के चिन्तन में विविध कलाओं पर भी प्रभाव डाला है। आधुनिक समय में जाकर प्रत्येक चिन्तन धारा को किस वैज्ञानिक दृष्टि से बनाया गया है वह वैज्ञानिक दृष्टि वस्तुतः चिन्तन की पद्धति कही जा सकती है। यह विचित्र तथ्य है कि आधुनिकता चिन्तन का कोई नियत अनुशासन नहीं है और वह अनेक प्रकार से चिन्तन पद्धति का एकरूपता का विनियोजन करती है।'[1] आधुनिकता का ऐतिहासिक परिदृश्य साहित्य सृजन की सम्पूर्ण प्रक्रिया के साथ है साहित्य जीवन से प्रभावित होता है और जीवन का परिवेशजन्य परिस्थितियों, घटनाओं एवं तथ्यों का प्रभाव पड़ता है। तथ्य जगत के अन्तर्गत सारा मानविक व्यापार प्रभावित होता है। वस्तुतः मानवीय संवेदना का सम्बन्ध अन्तर्मन के सत्यों से है। इस रूप में मानवीय संवेदना वाह्य परिस्थितियों, तथ्यों तथा वैज्ञानिक आविष्कारों से अवश्य प्रभावित होती है। इससे जीवन मूल्य परिवर्तित होते हैं तथा नये जीवन मूल्यों का निर्माण होता है और मनुष्य का रागबोध, सौन्दर्य बोध प्रभावित होता चलता है। मानवीय संवेदना नवीन तथ्यों को समेटने के अनन्तर पुरानी संवेदनाओं से संदिग्ध होती रहती है और मूल्यों का सही बोध सृजक को तत्कालीन जीवन संदर्भों से प्राप्त होता है। डा. रामदरश मिश्रा ने लिखा है- 'बहुत मर्यादायें, मूल्य समानताएं किसी युग में आकर पुरानी पड़ जाती हैं, सारहीन सिद्ध हो जाती हैं, फिर नये मूल्यों की खोज करती हैं। दर्शन, मूल्य, बोध आदि की नवीनता साहित्य में उभरती है किन्तु साहित्य संवेदना के माध्यम से प्राचीन और नवीन को एक शृंखला में बांधे रखता है।'[2]

आधुनिकता बोध का अर्थ केवल वैज्ञानिक उपलब्धियों से ही नहीं, बल्कि ऐतिहासिक बदलते मनोव्यक्ति की दृष्टि से है उदाहरण के लिये आज मानव वैज्ञानिक उपलब्धियों के सहयोग से चांद और मंगल ग्रह तक पदार्पण कर चुका है और यहां पर जीवन की खोज कर रहा है।

यदि को रचनाकार इन खोजों से प्राप्त निष्कर्षों के आधार पर कविता या कहानी की रचना करे तो वह रचना विषय-बोध के स्तर पर न कविता है और न कहानी क्योंकि इन खोजों से प्राप्त तथ्य उसके जीवन का अभिन्न अंग नहीं बन सकें। इनके साथ इनका संबंध स्थापित नहीं हो पाया। वैज्ञानिक उपलब्धियों का बोध वैज्ञानिकों के लिये अपने क्षेत्र का आधुनिक बोध हो सकता है परंतु रचनाकार का आधुनिक बोध यह तब तक नहीं हो सकता जब तक कि उसके जीवन के समप्रक्त होकर उसके अनुभव का बोध नहीं बनता और उसकी संवेदना को प्रभावित नहीं करता।

समकालीन साहित्य बदलते मूल्यों के साथ ऐतिहासिक परिदृश्यों को झुठला नहीं सकता इसलिए समकालीन साहित्य में मूल्यों के संबंध में अराजकता की स्थिति के प्रति हताशा और कटुता की झलक मिलती है। आधुनिकता के मध्यकालीन धार्मिक मूल्यों विश्रंखलन कर जिन भौतिकतावादी जीवन मूल्यों की स्थापना की वे सही रूप में पनप नहीं सके ये मूल्य धनी वर्ग के भोग विलास और स्वार्थसिद्धि का साधन बन गये हैं हमने आधुनिक वैज्ञानिक उपलब्धियों को तो अपना लिया परंतु अपनी चेतना में आधुनिक नहीं हो सके हैं। ऊपर से आधुनिक लगने वाले लोग

1- आधुनिकता साहित्य के सन्दर्भ में, पृष्ठ 38

3- आज का हिन्दी साहित्य- संवेदना और दृष्टि, पृष्ठ 23

अंदर ही अंदर मध्यकालीन रूढ़ियों से ग्रस्त है और दोहरी जिन्दगी जीने को विवश है ये अवसरवादी लोग आगे आने पर धर्म की ओट लेते हैं और जब चाहते है तब धर्म का मुखौटा हटा कर आधुनिक हो जाते है। समकालीन साहित्यकार नये मूल्यों की स्थापना नहीं कर रहा है अपितु समकालीन जीवन की विसंगतियों को उद्घाटित कर रहा है ऐसे हालात में जब परिस्थितियां तेजी के साथ बदलाव ले रही है। और मानवता मूल्य भी उसी तेजी से टूट रहे हैं, साहित्यकार और कर भी क्या सकता है? कदाचित वह विघटन की प्रक्रिया को सामायिक मानकर इससे उबरने को लालायित है, इसलिए आदर्शों की विसंगतियों के उद्घाटन द्वारा सामाजिक यथार्थ को उसके सम्पूर्ण परिवेश में पाठक के समक्ष प्रस्तुत कर रहा है।

3- बदलते संदर्भ और आधुनिकता बोधः-

स्वतंत्रयोत्तर भारत में साहित्य के बदलते प्रतिमान इस तथ्य की ओर संकेत करते हैं कि विज्ञान और समाज हमें सारे मानदण्ड ही बदल दिये कहा जाता है 'यांत्रिकी की इस निविड़ वन में सतत् वेगमनय जीवन की अवकाशहीनता, निरर्थकता, अजनबीपन, संत्रास, घुटन, मृत्युबोध और अनेक कुण्ठाएं तथा विकृतियों में जन्म ले रही हैं।[1]

सामाजिक यथार्थ की गहराइयों की सच्ची पहचान स्वतांत्रयोत्तर साहित्य में उभरकर सामने लेकर सृजनशीलता को जो नये आयाम दिये हैं उनमें निश्चित ही उद्भावनाओं का परिवेशगत चित्रण हुआ है। राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं पारिवारिक जीवन सत्य को पहचानने की इन कहानियों में विशेषता है। स्वतंत्रयोत्तर काल में भारतीय जीवन की पद्धतियों का अमूल-चूल परिवर्तन देखा गया है। कहानीकार मानव जीवन से जुड़कर एक विशाल चित्रपट बुनना चाहते हैं। समिष्ठगत जीवन चिन्तन के आधार पर वे मनोवैज्ञानिक विश्लेषण को उपलब्धि मानते हैं। मानवमन जीवन की पूर्ण समस्याओं से घिरा हुआ है, इसलिये सामाजिक दायित्वबोध के निर्वाह की उसमें भावना नहीं है। आज कहानी में मनुष्य के उसके यथार्थ परिवेश में देखने और चित्रित करने के लिये प्रयत्नशील है। उनमें समिष्ठगत चिन्तन की अभिव्यक्ति है और परम्परा के प्रति विद्रोह है। स्वातंत्र्योत्तर कथाकार बदलते परिप्रेक्ष्य में सेक्स के छिछले से छिछले स्तर को उठाने में संकोच नहीं करते। विभिन्न प्रतीकों एवं प्रतिक्रियाओं के माध्यम से स्त्रैव भावंना को इन कहानीकारों ने कहानियों में उद्भावित किया है। नारियों में आज स्वतंत्र चेतना जागृत हुयी है। अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व के रक्षण के लिये उन्होंने पुरुष के अत्याचारों के विरुद्ध आवाज उठायी और वैयक्तिक, सामाजिक तथा राजनैतिक स्तर पर समानता की मांग की। युग-युग से उपेक्षित नारी ने अपने अहम की पुष्टि के लिए पुरुष के समान ही मैत्री भाव को स्वीकार किया है। स्थिति यहां तक आ गयी है कि युवक, युवतियों से जब प्रेम सम्बन्धी इच्छा प्रकट करते हैं तो युवतियां उनके सम्बन्ध को पिक्चर हाउस, पार्क तक ले जाने में नहीं हिचकती। आज की कहानी में भले ही स्त्री-पुरुष के लिये पूरक है।[2] डा. सीताराम जायसवाल का कथन विचारणीय है- 'पुरुष और

1- हिन्दी कहानी- दो दशक यात्रा पृष्ठ 56

स्त्री में समानता सम्भव है क्योंकि दोनों की आंगिक और मनोवैज्ञानिक संरचना में भेद है, जिससे स्त्री और पुरुष के स्वभाव में भी भेद होता है। वास्तव में स्त्री पुरुष समान न होकर एक दूसरे के पूरक हैं।'[1] बदलते मूल्यों के साथ आधुनिकता परिपार्श्व में स्त्रेण भावना का जिस अबोध गति से संक्रमण हुआ है, उससे नैतिक मूल्यों और सामाजिक मर्यादाओं का बाँध टूटा है। स्त्री वर्ग में जहां क्रान्ति चेतना से स्वस्थ परिणाम निकले हैं वहां परम्परा, नैतिक और सामाजिक मूल्यों का ह्रास हुआ। आज की नारी अपनी भावना या दमन के त्याग के आवरण में छिपाने के लिये तैयार नहीं है, उसे हर स्थिति में परम्परागत नारी की तरह धर्म का अनुसरण करना और जल-जलकर पुरुष के प्रति मंगल कामना करके जीवन काटना अभीष्ट नहीं है। नारी उत्क्रान्ति ने आज स्वेच्छाधारी नारियों का दमन पकड़ रखा है, जिससे मानव जीवन का स्वस्थ विकास अवरुद्ध हो गया है। रमेश चन्द्र शाह का यह कथन उपयुक्त ही है- 'कहानी में रूपायित आज की व्यक्तिमता गहराइयों से विचक्षीय और स्त्रैण भावना से परिणित है। यथार्थ की किसी एक परिभाषा पर न टिक सकने की व्यग्रता दिलो-दिमाग को बेचैन किये रहती है। बौद्धिक जीवाणुओं को अनवरत सक्रियता चेतना पर स्नायुओं पर रेंगता हुआ एक संक्रमक भाव है। अपनी कलात्मक मानसिक चेतना-संवेदना को इन संक्रमकों के बीच निष्काम छोड़ दिया जाये तो उपयुक्त ही है।'[2]

आज के रचनाशील संदर्भ स्त्रैण भाव से अधिक जूझते जा रहे हैं। कहानीकार अन्तर्विरोधों भावनाओं से घिरा रहकर यह सब लिखने को बाध्य रह गया है। आज कहानीकार जिस एन्द्रिक जालिक वास्तविकता के भीतर कहानियों का जो रूप दे रहा है उसमें विवशता के साथ उसकी आत्मकेन्द्रित भावना ही कार्य कर रही है। सामाजिक व्यवस्था के भीतर असंतोष की मनःस्थितियां जितनी स्पष्ट है उनसे अधिक स्पष्टता की मांग आज स्त्रैब भावना से प्रयुक्त कहानी में की जा रही है। अधिकांशतः कहानियां एक व्यापक अनिश्चय के भीतर लिखी आत्मकथाएं हैं। कथाकार अपनी अकथ व्यथाओं को भुलाने के लिए स्त्रैण भावना से संबन्ध जोड़ देना चाहता है। डा. भगवानदास वर्मा का मत है- 'जहां जिन्दगी के वस्तुसत्य अन्यभूति की वास्तविकता और विषय की तथ्यात्मकता में गौण हो जाते हैं तथा वातावरण के साथ उत्कट जीवन जीने का राग बनाकर प्रकट होती है।'[3]

नई कहानी ने स्त्री पुरुष के अन्तरंग में झांकने का प्रयास किया है आज की फ़ैशन परस्ती और सेक्स की उद्दामता ने नये-नये लक्ष्य प्रमाता वर्ग के सामने प्रस्तुत किये हैं। परिणामतः काम प्रसंग अनुभूति की सच्ची अभिव्यक्ति पाते जा रहे हैं। स्त्री-पुरुष के बदलते संबंधों को लेकर आज कहानी जगत में नया फैशन शुरू हो गया है। एक नये कहानीकार ने परिगणना करते हुए यह स्पष्ट किया है कि 'तमाम दुनियां की भाषा को कुल मिलाकर दो स्त्री-पुरुषों की बातचीत कहा जा सकता है, जो साहित्य में उनके सम्बन्धों के मुताबिक बदलती रहती है।[4]

नई कहानियों में इस प्रकार स्त्री-पुरुषों के संबंधों को व्याख्यायित करने का फैशन आया है। नारी-पुरुष के बनते बिगड़ते रिश्ते उनसे निष्पन्न जीवनगत अवधारणा को इनमें उभारा गया है। पिछले 25 वर्षों में प्रणय सम्बन्ध का फैशन कहानियों में इतना अधिक उभरा है कि वासनात्मक

1- मनोविज्ञान की रूपरेखा, पृष्ठ 466
2- समकालीन कहानी दिशा और दृष्टि, पृष्ठ 185
3- कहानी की संवेदनशीलता-सिद्धान्त और प्रयोग, पृष्ठ 245
4- स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी में सामाजिक परिवर्तन, पृष्ठ 84

प्रेम लोकप्रिय प्रेम बन गया है। अब प्रेम सम्बन्धों में स्वार्थ, वासना, उद्देश्य तथा अपने-अपने व्यक्तियों के परस्पर उन्मूलन की सफलता या असफलता ही परिलक्षित है। इन कहानियों में वर्णित प्रणय से अभिप्राय उस सामाजिक परिवर्तन से है जिसमें नारी इतनी आधुनिक और प्रगतिशील बन गयी है कि नारियों को अफसरों, मंत्रियों और दूसरे अधिकार प्राप्त लोगों से प्रेम करने में और नारीत्व बेचने में स्वार्थपूर्ति का साधन बनाया गया है।

बदलते फैशन परस्त प्रणयगाथा की कहानियां आज कहानीकारों ने बहुत गढ़ी हैं और ऐसा लगता है कि बदलते मूल्यों में भी प्रेम अपनी जीवन्तता बनाये हुए है। 'प्रेम अब भी एक जीवित शब्द है और उसे सुनते ही अब भी हमारी धड़कन में एक और धड़कन सुनायी पड़ जाती है, अन्तर केवल इतना ही है कि अब वह भावुकता से भरा हुआ एक पीला, बीमार और एकांगी शब्द नहीं है बल्कि वह एक भयानक मनुष्य के सबसे कीमती अनुभव के रूप में स्पष्ट होता जा रहा है।'[1]

आज के फैशन के अनुरूप ही समकालीन कहानीकार जीवन के लगभग सभी संवेदनशील चित्रों के प्रति उन्मुख होता जा रहा है। वह कहानी के संवेदन के केन्द्र में इन दूरियों को भली-भांति पहचानता है। समकालीन फैशनपरस्त स्थिति में केवल प्रवाह नहीं है, उनमें द्वंद्वात्मक रूप में वह काल के संदर्भ को जन्म देती है इसलिए आज की कहानियों में रचना संदर्भ का महत्व बढ़ता जा रहा है ये कहानियां मध्य वर्ग की जीवन संकुलिता के पूरे क्षेत्र को घेरकर खड़ी है। उनकी पार्श्व योजना में किसी न किसी रूप में आज का क्षण बोध स्पष्ट होता जा रहा है। वस्तुतः कहानी का बदलाव जीवन प्रक्रिया का ही बदलाव है। जीवन का संकट चूंकि अब दूसरी तरह का है, इसलिए कहानी की केन्द्रीय स्थिति तथा उसकी पद्धति में बदलाव आया है। बदले हुए परिवेश तथा नयी संवेदना का मतलब आज की कहानी को नये सिरे से निकालना पड़ा है। फैशन परस्त की तात्कालिक से जिन संदर्भों में रचनाकार पर ही है कहानीकार ने इस सार्थक और अनिवार्य बदलाव को अपने चेतना स्तरों में घटित किया है। तात्कालिक सार्थकता और तात्कालिक सत्य निश्चित सीमा तक रचनाकार की मदद करते हैं। डा. वार्ष्णेय ने आधुनिकता बोधीय बदलाव पर टिप्पणी करते हुए नयी कहानियों का आंकलन किया है- 'किसी पुराने जमे जमाये कहानीकार ने अपनी उभरती हुई काम पिपासा को शाब्दिक पीड़ा में बांधने के लिए 5 कहानियों की रचना कर दी, अभिव्यक्ति के लिए उसने टेढ़े-मेढ़े प्रतीकों का सहारा लिया और संग्रह का नामकरण भी प्रतीकात्मक किया 'बस एक नया फैशन'।'[2]

आज का कहानीकार महानगरीय परिवेश से जूझ रहा है। स्वातंत्र्योत्तर भारत में परिवर्तन का दौर अपेक्षाकृत नगरों में तेजी से हुआ। आज का कहानीकार उसी परिवर्तित दौड़ में नगरों का प्रवासीय बना है इसलिए लगभग सभी स्वातंत्र्योत्तर कहानीकारों ने बदलते नगरीय परिवेश को अपनी कहानी का विषय बनाया है। उन्होंने भावनात्मक संबंधों में द्वंद्व, यथार्थ की अपेक्षा नगरीय संदर्भों में संबंधों, स्थितियों में तनाव और त्रास को तरजीह दी है। अक्सर यह होता है कि आज का कहानीकार महानगर का एक कल्पित संसार रच लेता है और उस संसार में कस्बाई बोध तथा ग्राम्य संस्कार कभी प्रबल होते रहते हैं। बात यह है कि शहर में आया हुआ व्यक्ति गांव में पुनः पहुंचने पर दिखावे को प्रमुखता देने लगता है उसमें नगर बोध का अहं शक्ति सम्पन्न हो

1- नई कहानी- दिशा, दशा और सम्भावना, पृष्ठ 239

2- हिन्दी कहानी- बदलते प्रतिमान, पृष्ठ 141

उठता है। नगर में रहने वाला व्यक्ति पग-पग पर भय से आक्रान्त है। भय आज नगर के यांत्रिक जीवन को उजागर करता है, भय हमें एक जड़ता की स्थिति पर पहुंचा देता है, जिससे मानवीय संवेदनायें तेजी से मरती जा रही हैं। किसी लावारिस लाश को खरीदकर उसे अपना निकटतम सम्बन्धी बताकर उसके कफन के लिए किस प्रकार पीट-पीटकर पैसे मांगे जाते हैं।[1]

महानगरीय जिन्दगी पर पिछले दो दशकों में ढेर सारी रचनायें लिखी गयी हैं। शहर में रह रहे व्यक्ति की चेतना पर दोहरे-तहरे दबाव हैं। महानगर का जीवन निर्वैयक्तिक है। विशाल भीड़ में ठहरा हुआ व्यक्ति अपने को अकेला महसूस करता है। सामाजिकता की भिन्नता के साथ व्यक्ति मनोजन्य प्रतिक्रियाओं में भी अन्तर पाता है, इसलिए महानगर, नगर, कस्बा के विविध रूपों में आज का कहानीकार के रूप में प्रभावित किया है। आज का सौ रुपया वेतन वाला व्यक्ति महानगर में रहकर जीवन स्तर में अभावग्रस्त कहकर स्वयं पर हंसता है। महानगरीय वातावरण नई सभ्यता के केन्द्र में बोझिल होते जा रहे हैं वहां के जीवन में अत्यंत दुखद गति है, इसलिए आत्मीयता भरी पहचान के लिए तरस रहा है। आसपास से सैकड़ों लोग गुजरते हैं पर उसे कोई नहीं पहचानता। इस प्रकार के चेतन स्तर को अवचेतन की दिशा में ढूंढने का प्रयास नया कहानीकार करता जा रहा है। स्वतंत्र भारत वस्तु स्थिति में नये आकर्षण से बंधता जा रहा है। परिणामतः राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक परिस्थितियों में एक दिलचस्प परिवर्तन हुआ चूंकि साहित्य परिस्थितियों से जुड़ा हुआ है, इसलिए हिन्दी कहानी में आज का कहानीकार जीवन राग के प्रति पूर्ण आशक्त है वह नयेपन के कारण रागवन्द पीड़ा अथवा संवेदना को आत्मनिष्ठ बनाता हुआ जा रहा है। वर्तमान में अस्तित्व बोध की खोज नया मुहावरा प्रकट हुयी है। इस स्वाभाविकता में नया शब्द स्वतः ही कहानी के साथ जुड़ता जा रहा है। समकालीन कहानी में नया मुहावरा सामाजिक स्थितियों और समस्याओं को ऐतिहासिक अर्थ में समझने के लिए प्रकट हुआ है। साठोत्तरी कहानियों में नया मुहावरा उपयुक्त हो जाने से एक विशेष बात दिखने को आ रही है, वह इनमें सामाजिक स्थिति और मानव स्थिति का परस्पर मिलते जाना। यह स्थिति आज के युग में कहानी का केन्द्र बिन्दु बन गयी है। आज के व्यक्ति में कोमलता अनुभूतियां प्रायः लुप्त हो गयी हैं इसलिए कहानी, अकहानी, सचेतन तथा समांतर कहानी बनकर अवतरित हुयी है। इसके बीच बसा हुआ कथ्यात्मक लगाव, सद्भाव, प्रेम और सहिष्णुता के बदलते प्रतिरूपों में निरूपित हो रहा है।

कमलेश्वर लिखते हैं- 'प्रेम जैसा शब्द इन बदली हुयी परिस्थितियों में प्रेम की अनुभूति नहीं देता। पिता, आदरणीय और अनुभवी व्यक्ति का प्रतीक नहीं रहा। परम्परा गौरव की वस्तु नहीं रही। विश्वास अर्थहीन हो गया। बहन और भाई का रिश्ता सखी का ही रह गया। आधुनिक औरत का समर्पण का सम्बन्ध ही बदल गया।'[2]

आधुनिक युग एक संक्रमणधारा है, जिसमें राजनैतिक प्रयोग धर्मिता, यांत्रिक सभ्यता, बौद्धिक जटिलता, राष्ट्रीयता, अंतर्राष्ट्रीयता आदि की उहात्मक स्थितियां एक साथ जुड़ी रहती हैं। आज के प्रजातंत्र ने नेता परस्ती के संदर्भ मानव मन में गूंथ दिये। फलतः जीवन परिवेशगत उन्मेश में राजनैतिक धुरी बन गया है। स्वातंत्र्योत्तर भारत के सामाजिक परिवर्तन में राजनैतिक

1- हिन्दी की कहानी- दो दशक यात्रा, पृष्ठ 144

2- नई कहानी की भूमिका, पृष्ठ 203

परिवेश का महत्वपूर्ण गुण है। स्वतंत्रता प्राप्ति से लेकर अब तक इस राजनैतिक परिवेश को आधार बनाकर इस क्षेत्र में आये परिवर्तनों को स्वतंत्रयोत्तर कहानीकारों ने उजागर करने का प्रयास किया है। कहा गया है- 'प्रजातंत्रीय संस्कारों का प्रभाव अन्ततः राजनीतिक संरचना तक ही सीमित नहीं है। पारिवारिक और सामाजिक संरचनाओं को भी उन्होंने प्रभावित किया है। आज पुत्र अपने पिता से अथवा कर्मचारी अपने मालिक से दोस्ताना सम्बन्ध की अपेक्षा करता है। साठोत्तरी कहानीकार देश की प्रजातंत्रीय संरचना के अनुकूल बदले और बदलते सम्बन्धों को अति सच्चाई से परिभाषित करने को उन्मुख हुआ है।'[1]

स्वातंत्रयोत्तर हिन्दी कहानीकारों ने समाज की विषम परिस्थितियों के द्वारा मनुष्य के मस्तिष्क के अंतर्द्वंद्व अवभूत उद्भावनाओं को उजागर किया है। व्यक्ति आज भरसक प्रयत्न के पश्चात भी उसे सुलझा नहीं पाता, तब वह आन्दोलन सृष्टि पर विश्वास करके अन्य माध्यमों में अपने परिवार की आवश्यक सामग्री जुटाने का प्रयास करता है। क्रान्तिकारी विचारणा बदलते परिप्रेक्ष्य में आधुनिकता बोधीय बन गयी है। अज्ञेय ने क्रान्ति को आंदोलन सुधार न बताते हुए केवल शासन प्रणाली की एक प्रक्रिया बताया। यह तो घातक विनाशकारी भयंकर विस्फोट है, इसका न आदर्श है न ध्येय।[2] आज की कहानियों में इसी प्रकार के आंदोलित गत्यात्मक जीवन का वर्णन होता है। आन्दोलन के लिए हुयी विस्फोटात्मक प्रक्रिया को भी कहानीकारों ने अपना कथ्य बनाया है। साथ ही पुरातन परम्पराओं, धार्मिक विश्वासों एवं राजनैतिक मान्यताओं के प्रति विरोध एवं विद्रोह को साधन रूप में विचित्र करके लक्ष्य निर्धारित किया है। डा. सुरेश सिन्हा ने कहा है कि- 'सजग सामाजिक चेतना और आस्था ने जीवन जी सकने की क्षमता और वातावरण के ऊपर उठ सकने की समर्थता ही उन्हें प्रदान की है। नव मानवतावाद एवं आधुनिकता का समष्टिगत आधार पुनः उस नये धरातल पर प्रतिष्ठित करता है जहां उनकी कहानियों में नये मानव मूल्यों, सम्बन्धों एवं प्रगतिशील मापदण्डों की स्थापना विकसित हुयी है।'[3]

आज के परिवेश में नैराश्य एवं अवसाद का वातावरण घुल मिल गया है, जिसे नयी कहानी में नाना कोणों, नाना संदर्भों में उठाया है। परिवेश का बलात आरोपण व्यक्ति को नैराश्य की ओर उन्मुख कर रहा है। फलतः व्यक्ति अन्दर ही अन्दर खण्डित होता जा रहा है। परिवेश और व्यक्ति के बीच वैषम्य इतना अधिक बढ़ गया है कि वह जिन्दगी को स्वर्ग कहे जाने वाले घर की ओर बढ़ता है तब उसमें घबराहट होती है और उसकी प्रसन्नता ठिठक जाती है, और कभीं-कभी लगता है कि व्यक्ति तथा परिवेश सभी सन्धि सेतु टूट चुके हैं और अवसाद में परिणित हो गये हैं। सचमुच परिवेश की क्षमता व्यक्ति को अवसाद की ओर उन्मुख कर रही है। परिवेश की यह जड़ता व्यक्ति को इतना संवेदन शून्य कर देती है कि वह निराश होकर अन्तःमुखी बन जाता है।

नयी कहानियों में व्यक्ति के मनोवैज्ञानिक भावों को समझने की पहल है। शताब्दियों की मानसिक गुलामी ने भारतीय जनता का मानसिक ह्रास करके उसे अवसाद और नैराश्य की ओर ढकेल दिया है और राजनैतिक दल स्वार्थ के अखाड़े बन गये हैं। फिर रोजमर्रा से जूझता हुआ व्यक्ति प्रजातांत्रिक देश में क्यों न जूझता रहे। सभी अपने पेट और जीवन की खातिर ठण्डे और दरिद्र हो चुके हैं। राजेंद्र यादव का मत है कि कहानी विधा ने आज के सोच सम्वेदना को तो

1- हिन्दी कहानी की दो दशक यात्रा, पृष्ठ 72 2- विपथगा, पृष्ठ 73
3- नई कहानी की मूल संवेदना, पृष्ठ 22

समझाया है विचारणीय है कि- 'आज की कहानी व्यक्ति और परिवेश का वह सम्बन्ध क्षण है, जो ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में युग की एक-एक नब्ज छूता है और उसे नाम देने तथा समझने की कोशिश करता है।'[1]

आधुनिकता बोध के साथ बदलता हुआ परिवेश आज एक चिन्तनीय विडम्बना बन गया है। आधुनिकता एक जीवन्त और गतिशील प्रक्रिया है, उसको रूढ़िग्रस्त मानसिकता से नहीं समझा जा सकता है। आधुनिकता को ग्रहण करने और आधुनिक होने के लिये उस कालग्रत सातत्व के समानान्तर अर्जित करना होगा, जिसके लिए सहज मानवीय संवेग का होना अनिवार्य है।

4- स्वातन्त्रयोत्तर कथा साहित्य के प्रमुख आन्दोलन:-

आधुनिक हिन्दी कहानी की कथा चेतना निरंतर बदलती रही है। आज की कहानी उत्तरोत्तर प्रगतिपरक सृजनशीलता का पूर्ण स्पष्टीकरण है।

आज की कहानी जिस सीमा तक पहुंची है उससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि कहानी विधा उलझे हुए मानव जीवन के साथ सुदूर बोधता का वर्णन करती चलती है। स्वतंत्रता प्राप्ति के साथ ही देश का वैचारिक पुनर्जन्म हुआ। विचारों की एक नयी क्रान्ति नये उद्‌भावना के साथ जुड़ती चली गयी। परिणामतः पुराने के प्रति उपेक्षा और नये के प्रति आकर्षण का प्रभाव बढ़ता ही चला गया। हिन्दी तथा साहित्य में नयेपन को लेकर काफी विवाद चला और नया विश्लेषण विशेषण के साथ कहानी में जुड़ गया।

इलाचन्द्र जोशी ने लिखा है कि साहित्य में वैचारिक स्तर पर नये पुराने का संघर्ष हर काल में रहा है। पिछले युगों में भी कालीदास और भवभूति को अपनी नवीनता पर बल देने के लिए पुरानी प्रवृत्तियों के अन्धकोषकों से जूझना पड़ा था।[2] वस्तुस्थिति यह है कि नये कहानीकारों ने नयी अनुभूतियों का आविष्कार किया। फलतः नये-नये प्रयोग प्रतिस्पर्धा के साथ एक होकर मानव निष्ठा का परिचायक बनते जा रहे हैं। आधुनिकता की इस प्रक्रिया में नये के प्रति सहज आकर्षण था, जिससे प्रतीत होता है कि नवीन और आधुनिकता में पारस्परिक सम्बन्ध भी है, क्योंकि नया अभी अपने गत्यात्मक रूप से परम्परा को स्वीकारता हुआ आगे बढ़ता है, बदलती हुयी परिस्थितियों से उत्पन्न संवेदना को वह समेटता हुआ चलता है। नयी कहानी ने जब जीते जागते व्यक्तित्व को अपने सम्पूर्ण परिवेश में प्रस्तुत किया तो स्पष्ट प्रतीत होने लगा कि बदलती परिस्थितियां, परिवेश की अनिवार्यता का दबाव नयी कहानियों में था।

डा. नामबर सिंह ने पुरानी पीढ़ी और नई पीढ़ी के कथाकारों में अन्तर करते हुए स्पष्ट लिखा है- 'यह सत्य है पुरानी पीढ़ी के अनेक लेखक नये स्वाधीन भारत के सन्दर्भ को पूरी तह समझने तथा समझकर उसके साथ अपने आपको जोड़ने में असमर्थ रहे हैं।'[3]

सन् 1950 के आसपास हिन्दी कहानी में नवीन वेश प्रारम्भ हो गया था। परिवर्तन से उद्‌भुत मानवीय चेतना यथार्थ बोध के अधिक निकट हो चुकी थी। नई कहानी के बदलते परिवेश ने पाठकों को शीघ्र ही अपनी ओर आकृष्ट किया। सन् 1950 में आकर नयी कहानी सिंर और कथ्य

1- एक दुनिया समानान्तर, पृष्ठ 29
2- ज्ञानोदय, अक्टूबर 1964
3- कहानी, नई कहानी, पृष्ठ 224

की दृष्टि से कहानी से बिल्कुल अलग हो गयी। श्रीपति राय लिखते हैं कि इस अवधि में नयी कहानी ने यह चरितार्थ कर दिया कि हिन्दी कहानी में गतिरोध की बात करना नितान्त भ्रामक है।[1] इस वर्ष की उल्लेखनीय कहानियों में महत्वपूर्ण उपलब्धि की थी विसंगतियों का निरूपण। इन कहानियों में झांकते हुए पात्र अपने परिवेश की सच्चाई को अपेक्षित मानते गये, आरोपित मान्यताओं से नये कहानीकारों ने विद्रोह किया और ऐतिहासिक परिदृश्य के रूप में व्यक्ति का सम्बन्ध स्थितियों, घटनाओं, विवाद-चर्चाओं, स्तम्भों एवं परिसम्वादों से जुड़ गया। साहित्य में किसी भी विधा का नामकरण आकस्मिक रूप से नहीं होता है। जब कविता को काल विशेष ने नयी कविता कह दिया तो कुछ अन्तराल के बाद कहानी को नयी कहानी कह दिया गया। कथाकार सुरेंद्र का यह वक्तव्य स्पष्ट है- 'नयी कविता के काफी बाद कहानी चर्चा शुरू हुयी। सन् 1954 और 55 के पास यह चर्चा तूल पकड़ने लगी। 56 में इसे नयी कहानी नाम देने की सिफारिश की गयी। 57-58 तक यह सृजन स्तर पर यह अपना अस्तित्व प्रमाणित करने लगी। कहानी, कल्पना, विनोद, लहर, ज्ञानोदय आदि पत्रिकाओं ने नयी कहानी की चर्चा और उसके उन्मेष में पर्याप्त योग दिया।'[2]

स्वतंत्रयोत्तर कहानी प्रधानता आचरण के मूल्यों को नकारती चली है। समसामायिक हिन्दी कहानी में प्रमुख रूप से परम्परागत संज्ञा रूपों के विघटन का स्वर दिखायी देता है। वैयक्तिक मूल्यों की पक्षधरता से नयी कहानी विधा को अकहानी की ओर प्रेरित किया है। परिवेशगत यथार्थ के साथ नयी कहानी विधा कहानी की भूमि पर उतर कर खड़ी हो गयी है। सन् 1960 के बाद के कहानीकारों ने अपेक्षाकृत नये सृजनात्मक कृतित्व से कहानी को रेखाचित्र, संस्मरण पत्र और डायरी बना दिया। नये भाव बोध और तथाकथित आत्मिकता के लिये इन कहानीकारों को लगा कि नयी कहानी का संज्ञारूप उनकी छटपटहाट को दूर करने में असमर्थ है और सन् 70 के बाद नयी कहानी को अकहानी की संज्ञा दी गयी। गंगाप्रसाद विमल ने इस विधा को स्पष्ट करते हुए लिखा है- 'वस्तुतः मैं जब अकहानी या एन्टी कहानी की बात करता हूं, तब मेरा अर्थमेटिक से अवयक्त उस कहानी से होता है जिससे प्रेक्षण के नाम पर स्पष्ट संदेश या वक्तव्य या नहीं होता अपितु विभिन्न अवयवों, स्थितियों तथा मानसिक संगति के क्षणों में हम उसके अनेक अर्थों को पकड़कर एक समानान्तर कहानी के साथ-साथ अन्य कहानियों के साथ चलते हैं।[3]

शिल्प प्रयोग के स्तर पर अकहानी की धारणा गति प्रवृत्ति प्रकाश में आयी। लेखकों ने समकालीन भाषा वैविध्य के अनुभवों को तरासने का प्रयास किया। संकेतों, प्रतीकों के प्रतीक आग्रह नहीं बल्कि वाक्य विदिग्धता ही रही।

अधिकता के कारण अकहानियां न तो नयी कहानी के दायित्व का निर्वाह कर सकीं और न नये दायित्व के प्रति आत्मसजग ही रहीं। विचारक का मत है कि इन कथाकारों ने अपने को अलग-अलग दायरों में बन्द कर रखा है और उन्हीं के अनुकूल वे कथासृष्टि किया करते हैं इसीलिए किसी ने दर्शन विशेष से तो किसी ने मनोविज्ञान विशेष से अपने को चिपकाये रखा है।[2] समाज की यथार्थ स्थिति में सचेतन दृष्टि पारदर्शी होती है। सचेतन कलाकार विचारधारा का समर्थन करता हुआ मानवीय विश्वास को छू लिया करता है। महीप सिंह लिखते हैं- 'सचेतन एक

1- कहानी जनवरी 1955
2- नई कहानी, दिशा, दशा, संभावनायें (भूमिका)
3- हिन्दी कहानी बदलते प्रतिमान, पृष्ठ 153
4- लहर, जुलाई 1964

दृष्टि है जिसमें जीवन जिया भी जाता है और जाना भी जाता है। सचेतन दृष्टि जिन्दगी को नकारती नहीं, स्वीकारती है। सचेतन कथाकार जीवन को समग्र रूप में जीना चाहता है।'[1] सन् 1950 के बाद हिन्दी की कहानियों में अनास्था का दौर रहा है। इसके बाद सन् 1960 तक यथार्थ पर समसायिकता को रोपा गया है और सन् 1960 के बाद कलाकारों ने इस यथार्थ को अधिक भोगा है, जिसमें जीवन बोध सचेतना के साथ उजागर हुआ है। संचेतन कहानी में व्यक्ति और समाज ने उन अछूती स्थितियों की संवेदनाओं का उद्‌घाटन किया है जिनमें मानव मस्तिष्क के भीषण संकट का प्रतीक है।

सातवें दशक में सचेतन कथा का उभरकर सामने आते हैं।

संचेतन कहानी यथार्थपरक कहानियों का नया आन्दोलन है। इसके कहानीकार मानवता के टूटते, उलझते मूल्यों, जीवन का ढहती बनती धारणाओं और व्यक्ति समाज की अपराजेय आस्थाओं को वाणी देने के पक्षपाती हैं।

इस प्रकार सचेतन कहानी एक नये परिवेश को ग्रहण करने की ओर प्रयत्नशील है।

चेतना के स्तर के बदलाव की पूर्ति जैसी नयी कहानी और अकहानी में है, ठीक वैसी ही सचेतन कहानी में है।

इन कहानियों में आधुनिकता का बोध जीवन के अनुभूत सत्य के रूप में उभरने लगा है।

डाक्टर महीप सिंह का यह मंतव्य स्मरणीय है- 'सचेतन कहानीकारों का दृष्टिकोण सापेक्ष व्यक्तिगत और सापेक्ष जनजीवन को देश और काल के साथ संयुक्त रहता है.....................

यह संतुलित दर्शन है, जिसमें प्रत्येक देश काल में क्रान्तिकारी साहित्यकार पैदा हुए हैं।'[2]

आज की कहीन में नये परिवेश का यह चित्रण समकालीन जीवनधारा की बात कहता है। आज का रचनाकार अपने जीवन अनुभव को एक व्यापक मानवीय अर्थ से भी जोड़ता है। वह सामाजिक और राष्ट्र मूल्यों को जिन परिस्थितियों को जिन संदर्भ में अनुभव करता है, उस अनुभूति को सच्चाई के साथ उतारता है। दूधनाथ सिंह का कथन है कि 'आज का कहानीकार स्थितियों में भागीदारी की नियत के कारण की कहानी की खोज में नहीं भटकता है। उसके सामने मूल समस्या अभिव्यक्ति की सच्चाई की समस्या है।'[3]

सचेतन कहानीकार की चेतना राजनैतिक, आर्थिक और सामाजिक परिस्थितियों में हर तरह से वाले व्यक्ति की विवशताओं और पीड़ाओं से सम्प्रक्त है। वह जीवन बोध की हर स्थिति और यथार्थ के प्रत्येक रूप को स्वीकारता है तथा साहस के साथ उसे अभिव्यक्ति देता है। स्वतंत्रता के पश्चात जिस प्रकार समाज बोध विकसित हुआ है उसी प्रकार हिन्दी कहानियों में सक्रियता दृष्टिगत हुयी है। आज की सक्रिय कहानी ईमानदारी की परतें पर परतें उघाड़ती हुयी बढ़ती चली गयी है।

समाज का यथार्थ परिस्थिति में सक्रिय कहानी का प्रतिबद्ध होना हकीकत है। सक्रिय कहानी की यह सार्थकता है कि वह निरन्तर गत्यात्मक जीवन को उकेरती चलती है। राजेन्द्र यादव का

1- हिन्दी कहानी- एक अंतरंग परिचय, पृष्ठ 269

2- उजाले के उल्लू, भूमिका

3- नई धारा, मार्च 1966

यह कथन मान्य है- 'आज कहानी निरन्तर अपने को समृद्ध करती रही है। वस्तुतः उसके पीछे किसी सुनिश्चित दार्शनिक सिद्धान्त की अपेक्षा बदलती हुयी परिस्थितियों के अनुरूप एक दृष्टि की तलाश ही अधिक थी, इसीलिए साहित्य की यह प्रकृति अपने को नित्य नया बनाये रखने की प्रक्रिया के रूप में अधिक आयी है।'[1]

सक्रिय कहानी में होने वाले रूपात्मक परिवर्तन विविध हैं। विषय वस्तु और वाह्य यथार्थ का परिवर्तन तो कहानी के लिए उतना महत्व नहीं रखता जितनी कि कहानीकार की दृष्टि। अतएव आज का कथाकार सक्रिय जीवन दृष्टि से बंधा हुआ है, जिससे उनमें कही आदर्श और नैतिकता का रूप नहीं मिलता वरन यथार्थ रूप में भी आज की कहानियों में मौन भावनाओं से पीड़ित कृत्रिम परिवेश का निर्माण मिलता है और ऐसी ही अधिक सक्रिय कहानियां लिखी जा रही हैं। सन् 1970 के बाद कहानियों में यह प्रवृत्ति अधिक रूप से मुखरित हुयी है। ऐसा ही कहानियों का विश्लेषण करते हुए कमलेश्वर ने लिखा है- 'किन स्थितियों को कहानियों के भोगी झेल रहे हैं वे स्थितियां भी दारुण मानवीय संकट, प्रताड़ना या अपमान बोध की स्थितियां नहीं हैं। एक कथा पुरुष किसी भी केन्द्रीय संकटपूर्ण स्थिति के आरे के नीचे चिरते हुए लोग नहीं हैं, वे मात्र रात्रि शैयाओं की मसली चादरें कोने में दबे हुए गन्दे कपड़ों के लिजलिजे गिलगिले आभास भर हैं।'[2]

सचेतन कहानी के बाद समानान्तर कहानी का आन्दोलन भी विशेष चर्चा का विषय बना रहा है। सक्रिय कहानी में आन्दोलन की कोई वैचारिक पृष्ठभूमि न होने से यह दीर्घजीवी न बन सका और थोड़ी बहुत चर्चा के साथ ही समाप्त हो लिया। सक्रिय कहानी का आन्दोलन नयी कहानी के विरोध में ही खड़ा हुआ है। सक्रिय कथागत विचारधाराओं में विभिन्न विचारधाराओं का समावेश है और यह सब मिश्रण संवेदनशीलता को जिन्दगी प्रदान करता है। सातवें एवं आठवें दशक की कहानियों को समानान्तर कहानी की संज्ञा से अभिहित किया जाता है। इन दशकों की कहानियां बदले हुए भावलोक की कहानियां हैं जिनका केन्द्रीय स्वर्ग अतीत एवं भविष्य युक्त होकर वर्तमान में जीने का आग्रह स्वर है। 'समान्तर' शब्द का अभिप्राय एक समूचे परिवेश में आरोपित सामायिक अनुशीलन से है जिसमें रचना दृष्टि का विस्तर व्यापकत्व के साथ एकत्व में अनुप्राणित है। आज की कहानी की प्रतिबद्धता और अलगाववादी विचारदर्शन विशेष उभरा है।

औद्योगीकरण, यांत्रिकता, अन्तर्राष्ट्रीय, वैज्ञानिकता एवं विश्व राजनीति की सक्रियता से आज सारा विश्व भौगोलिक इकाई होता जा रहा है। अतः कहानी में आज का परिवेश आज के यथार्थ से जुड़ा हुआ है, और राष्ट्रीय-अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति बोध का उसके मध्य प्रकारान्तर है। बदले हुए यथार्थ सम्बन्धों को सम्प्रेषित करना आज के समानान्तर कहानीकार का अभीष्ट बन गया है। परिणाणतः कहानी में चिन्तन और संवेदना के स्तर भी बदलते प्रतिमानों में दृष्टिगत होने लगे हैं। समान्तर कहानी की पहचान में सामाजिक स्थितियों और समस्याओं को ऐतिहासिक अर्थ में समझने और उनके मूल स्रोतों तक पहुंचने तथा पुनः निर्णायक बिन्दुओं तक चले जाने वाली आलोचनात्मक दृष्टि विकास से कई चरण लक्षित किये जा सकते हैं। कहानियों का यथार्थ चेतना के धरातल पर आज भलीभांति विश्लेषण हो रहा है। परिवेशगत जीवन्तता मध्यवर्गीय परिवार की मेरु बन गयी है। इतना ही नहीं आज समग्र जीवन को लेकर विस्तार से चिन्तन की ओर उन्मुख

1- कहानी-रूप और संवेदना, पृष्ठ 43

2- धर्मयुग, जून 1964

किया जाने लगा है। डा. धनंजय का मत है- 'दो रुचि के व्यक्तियों में पारम्परिक रुचि का परिवर्तन होता ही है तो यह कैसे सम्भव है कि पुरानी मान्यताओं से हटकर कहानी ने जहां नयी मान्यताएं स्थापित की हैं और कहानीकार विश्व स्तर पर समस्याओं को लेकर सोचने लगा है वहां वाह्य प्रवाह कैसे असम्प्रक्त रह सकता है।'[1]

सातवें और आठवें दशक की कहानियों के विकास कम को देखते हुए समान्तर संवेदना के चेतना स्तर को पहचाना जा सकता है। सोच के सारे ताने बाने और तामझाम के केन्द्र में आदि के मानव मूल्यों का तर्क ही सबल है।

सामाजिक परिस्थितियों की निर्ममपरक और पड़ताल द्वारा ही इस ढंग का समान्तर वैचारिक रचना विधान अर्जित किया जा सकता है। डा. निरंजन मोहन ने संवेदना के बीच खड़ी समान्तर कहानी की बनावट को परखते हुए लिखा है कि सूझ और अमल के बीच खड़ी स्थिति आज भी हिन्दी कहानी के लियें सबसे बड़ी चुनौती हुयी है।[2]

समान्तर कहानियों में संघर्षशील और विद्रोहात्मक मानसिकता के विविध चित्र मिलते हैं। सामाजिक यथार्थ को क्रान्ति दर्शना के साथ प्रयोगधर्मी बनाया गया है। ये कहानियां जीवन प्रसंगों के संदर्भों में रची गयी और मानवीय सार्थकता की पहचान में जुटी हुयी हैं। इन कहानियों में राजनैतिक संदर्भ भी आक्रोश का विषय बना हुआ है, क्योंकि यहां न कोई तंत्र है न कोई व्यवस्था है। राजनैतिक बोध को इन कहानियों में उत्तेजना के साथ उभारा गया है। आज के एक दशक पहले मानव उद्‌भुत विविध परिवेशों के चित्रण की समान्तर कहानियों में भरमार रही है। नई कहानी, अकहानी, सचेतन कहानी, समानान्तर कहानी आदि आदि संज्ञायें पाठक के मानसिक स्तरों से आगे हैं।

वस्तुतः इन दशकों की कहानियों में यथार्थ के आधुनिकीकरण की प्रवृत्ति है और यह यथार्थ मूल प्रकृति में पूर्वी पर पीठिका ये जुड़कर प्रतिफलित होने वाले उद्देश्यों में तात्विक भिन्नता रखता है। वर्तमान की घिनौनी, क्रूर और भयावह स्थितियों के प्रसंग में मूल्यों की नये सिरे से जांच पड़ताल और परीक्षण की दृष्टि इन कहानियों में है।

डा. लक्ष्मीनारायण लाल के शब्दों में कहा जा सकता है- 'साठोत्तरी कहानी के स्थापित के प्रति दो दशकों से जो हमारा विरोध था, संघात था, उसके साक्षात्कार से वस्तुतः किसी भी देश का युग और संस्कृति की अपनी आधुनिकता उदित होती है।'[3]

स्वातंत्रोत्तर हिन्दी कहानी साहित्य में ज्यों-ज्यों बदलाव आया त्यों-त्यों मानव जीवन के साथ कहानी का आकार-प्रकार ही बदलता गया। कहानी विधा का नया चोला लघु कहानी के रूप में मुखर हुआ। लघु कहानियों का कथ्य पर्सनल अनुभूति की अभिव्यक्ति को लेकर लघु आकार में परिवर्तित हुआ। क्षणबोध से जुड़ी यह लघु कहानी निःसंदेह अपने परिवर्तनों में जटिलतर होती गयी है। इस प्रकार आन्दोलन के बदलते विभिन्न रूपों को कहानी विधा ने अपने में आत्मसात किया है। विचार एवं भाव दोनों दृष्टि से साहित्य की यह नयी विधा सुसम्बन्ध एवं समृद्ध है, बल्कि यूं कह सकते हैं कि जीवन को देखने की जितनी भी दृष्टियां हो सकती हैं वे सब कहानी के बदलते आन्दोलनों में विभिन्न संज्ञा रूपों में समाहित हैं। इन आन्दोलनों से जुड़ने वाले मुख्य कहानीकार

1- कहानी- परिवेश और प्रभाव, पृष्ठ 23 2- समकालीन कहानी की पहचान, पृष्ठ 63

3- ज्ञानोदय- मार्च, 1970

हैं- उमरकान्त, कमलेश्वर, निर्मल वर्मा, मन्नू भण्डारी, फणीश्वरनाथ रेणु, मार्कण्डेय, मोहन राकेश, राजेंद्र यादव, शिवप्रसाद सिंह, ऊषा प्रियम्बदा, कृष्णासोबती, धर्मवीर भारती, भीष्म साहनी, रघुवीर सहाय, रमेश बक्षी आदि।
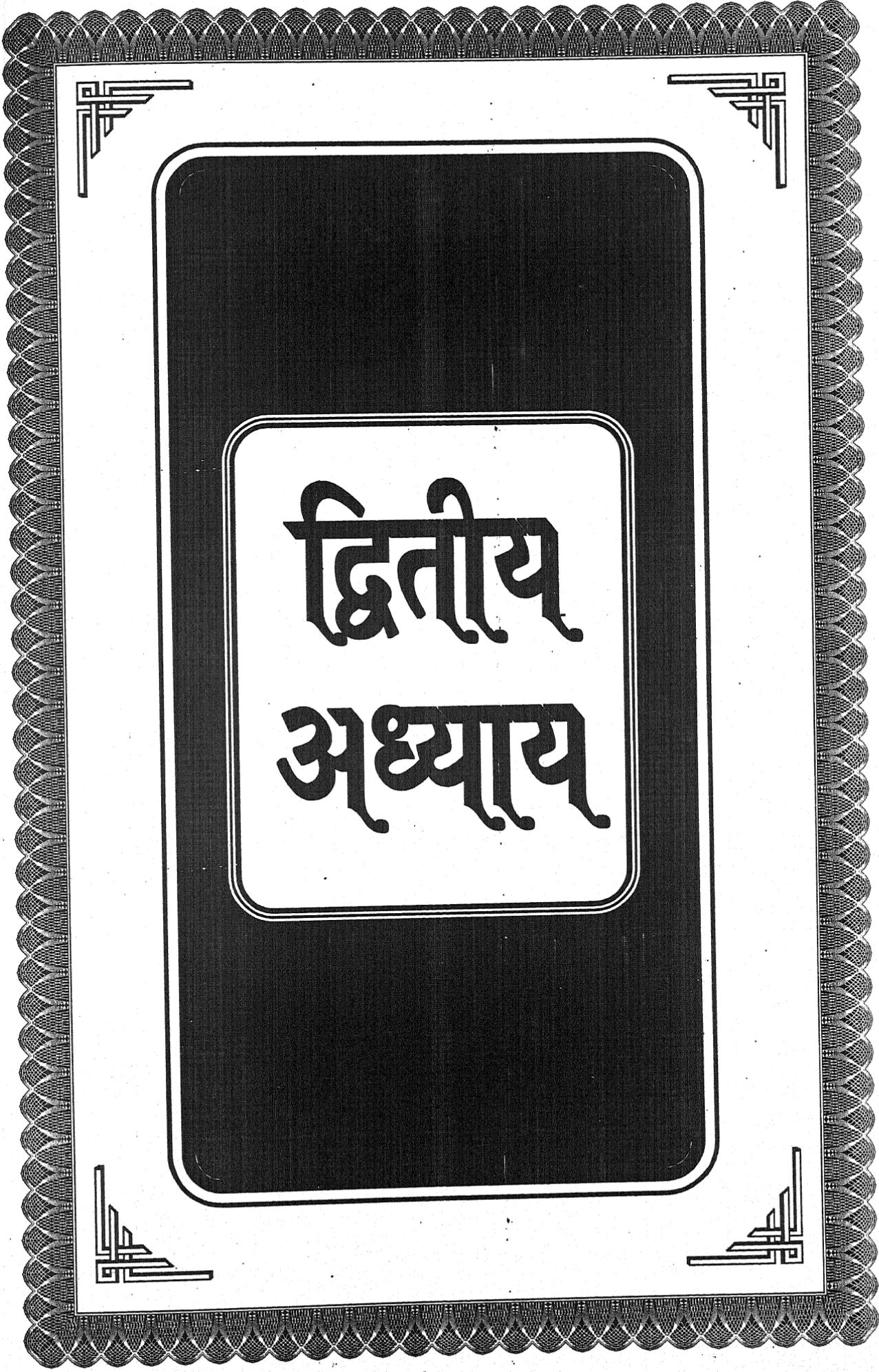
द्वितीय
अध्याय

::-::(द्वितीय अध्याय)::-::

निर्मल वर्मा के कथा-साहित्य का संक्षिप्त परिचय

(क) निर्मल वर्मा का उपन्यास साहित्यः-

(1) वे दिनः- निर्मल वर्मा कृत 'वे-दिन' पांच अनुभागों में विभक्त है। 'चेकोस्लोवाक लेखक संघ' द्वारा आमंत्रित वर्मा जी प्राग नगर में सात वर्षों तक रहे।

वहां उन्होंने चेक कथाकृतियों के अनुवाद भी किये और इण्टरप्रेटर होकर टूरिस्ट एजेन्सी में हिस्सा बटाया। वस्तुतः यह कृति प्राग नगर के परिवेशात्मक चित्रण को जहां एक ओर उजागर करती है वहीं दूसरी ओर टूरिस्ट एजेन्सी में मिले कार्य की भाव-संवेदना को अभिव्यक्त करती है।

प्रवास काल में आयी हुयी श्रीमती रायना और मीता के साथ लेख की कथा यात्रा का वर्णन प्रस्तुत उपन्यास का अभिप्रेत है। उपन्यासकार ने 'मैं, मैं मुझे मेरा' संज्ञा रूप प्रयोग करके स्वयं एक पात्र का वस्तु सापेक्ष अभिव्यंजन किया है।

'वे दिन' उपन्यास एक आधुनिकता बोधीय बहुआयामी विचारधाराओं की श्रंखला है। प्रवास काल में लेखक की मनःस्थिति और उनकी मनहृदय जनित पीड़ा का बोध का एक ऐसा दौर प्रवाहमान रहा है जिसे निर्वैयक्तिक चेतना के साथ कथाकार ने संवारा है। तत्कालीन परिवेश और परिवेश बहुमुखी आयामों में 'चेकोस्लोवाकिया' की जनता का मानसिक प्रतिबिम्बन इस प्रकार झलकता है- 'मुझे जुलाई------अगस्त की वे रातें याद हो आयीं जब यूनीवर्सिटी के छात्र अपनी-अपनी लड़कियों के साथ बाग के अंधेरे में बैठा करते थे।

बीचोंबीच कवि चैख की काली मूर्ति चुपचाप खड़ी रहती है। लोग शराब और बियर की बोतलों को मूर्ति के 'पेडेस्टल' पर छोड़ जाते थे...........फिर देर रात में गरीब बूढ़ी औरतें प्रेतनियों की तरह बाग में घुस आती थीं और खाली बोतलों को अपनी स्कर्ट की लम्बी जेबों में ठूंसकर अंधेरे में गायब हो जाती थीं।'[1]

लेखक ने सह मित्रों के साथ का आत्मीय लगाव एवं निष्ठा का बखूबी इस उपन्यास में चित्रण किया है। इतना ही नहीं यथार्थ के बदलते मूल्यों पर लेखक की दृष्टि गहराई से जमी रही है। लेखक उपन्यास के कथ्य एवं शिल्प में मौलिकता के दावे के साथ प्रस्तुत हुआ है। इतना आवश्यक है कि भारत भूमि पर इस तरह का कथानक मर्मस्पर्शी एवं प्रभावी होकर पाठक की चेतना पर पूरी तरह नहीं उतर पाता। कारण स्पष्ट है.................विदेशी संस्कृति, रीतिरिवाज आदि से जुड़ी हुयी जिन्दगी भारतीय धरातल पर एक आश्चर्य ही है।

वहां के लोग बियर, बोदका, कोन्याक (शराब) पीने में किसी भी तरह की हिचक या संकोच नहीं करते हैं। उपन्यास को पढ़ने के बाद ऐसा प्रतीत होता है कि यह सब वहां के लोगों के लिए

1- वे दिन, पृष्ठ 45

सह पेय पदार्थ है---- '------सिर्फ एक बार की बत्ती जल रही थी, बोतलों और गिलासों के कांच झिलमिला जाते थे।'[1]

प्रस्तुत उपन्यास क्रमशः टूरिस्ट जिन्दगी का एक जीवंत नमूना है। प्रथम अनुभाग से लेकर पांचवें अनुभाग तक खाने-पीने और टहलने में स्त्री-पुरुष के साहचर्य का वर्णन मिलता है। लेखक ने ईमानदारी से 'स्व' पात्र को कथावस्तु में निहित अन्य कथा पात्रों के साथ इस तरह मिला दिया है कि अहसास ही नहीं होता कि लेखक और अन्य पात्रों में भिन्नता भी है............'आह ये विदेशी विद्यार्थी। ये सब--------एक से ही होते हैं।'[2]

इस वाक्य विन्यास से इस तथ्य की पुष्टि होती है कि प्रवासकाल की मित्रता साम्य और सांगोपांग बनी रहती है। उपन्यास में अन्य मित्रों के अतिरिक्त श्रीमती रायना और लेखक मुख्य पात्र हैं।

(2) लाल टीन की छत-

प्रस्तुत कृति में तीन खण्ड हैं जिसमें क्रमशः प्रथम खण्ड में सात अनुभाग, द्वितीय खण्ड-सात अनुभाग तथा खण्ड तृतीय बिना अनुभागों के निरूपित है। उपन्यास में मुख्य पात्र 'काया' है। उपन्यास ने एक ऐसी लड़की का चित्रण प्रस्तुत किया है, जो पहाड़ी पर अपने छोटे भैया के साथ रहती है। नितान्त अकेलेपन का परिवेश और परिवेश में जूझते हुए अनेक जीवनगत अन्य पात्र 'काया' के आसपास घूमते रहते हैं। पहाड़ी का चित्रण और काया के मन की उभारन एक अंधेरी खोह बनती जा रही थी। वह उत्सुक निगाहों से सारे संसार को समझ लेना चाहती थी। उसकी समझ और भटकती हुयी दुश्चिन्ताएं उसे मन ही मन किसी तीसरे संसार का ख्याल दिलाती थीं। उपन्यासकार ने इस परिवेशगत जीवन्तता की कुछ पंक्तियां देकर समझाया है- 'कपड़े उतारने से वह सचमुच अकेली पड़ गयी थी। छज्जे पर चलती सांय-सांय हवा, कपड़ों की फड़फड़ाहट पत्ते सी नंगी, बेशर्म देह कांपने लगती। कहीं बहुत धुंधला सुखद सा विचार आता कि मुझे सर्दी लगेगी, निमोनिया होगा, काली मां के लिए मेरी जान जायेगी और तब वह धीरे-धीरे अपनी नंगी देह को सहलाने लगती है।'[3]

यह उपन्यास के पश्चिमोत्तर और विशेष रूप से पहाड़ी की आंचलिक प्रदेश को समेटे हुए है। इस उपन्यास में 'काया' छोटे, मिसजासुआ, लामा, भोलू, मंगतु, वीरू आदि पात्र फॉक्सलैण्ड की परिधि में घिरे हुए काया पात्र की मनःस्थिति का एक जीवन्त उदाहरण बने हुए हैं। काया अपने इर्द-गिर्द एक मायावी जाल सा बुन लेती है जिसमें वह अधिकांशतः समय खुद अपनी सच्ची-झूठी स्मृतियों में व्यतीत करती है। सर्दी की लम्बी छुट्टियां भी वह इधर-उधर झटकते हुए गुजारती है।

उसे अहसास होता है उसकी एक नितांत ऊर्जाहीन फीकी दुनिया है जिसमें नैरश्य, अवशाद और अकेलेपन की छटपटाहट विद्यमान है। वह विस्मृति के गर्भ में अतीत के पृष्ठ पलटती हुयी अपने आप का विश्लेषण करती है। मैं लौट आउंगी अपने कमरे में, छोटे के पास....... उसने सोचा लेकिन हाथ शीशे पर थमा था। उसकी देह से अलग, जैसे वह बिस्तर पर उठे मां के हाथ की छाया हो, जिसे वह चाहे, तो भी नहीं हटा सकती।''[3] उपन्यास का चरम विकास द्वितीय खंड में है, जहां

1- वे दिन, पृष्ठ 72
2- वे दिन, 13
3- लाल टीन की छत, पृष्ठ 88
4- लाल टीन की छत, पृष्ठ 68

'काया' एक ऐसी सीमा पर खड़ी है जिसके पीछे बचपन छूट चुका है और आने वाला समय अनेक संकेतों और संदेशों से भरा है। एक छोर पर एक असहनीय सम्मोहन है और दूसरे छोर पर, उसके जीवन की अंधेरी भूल-भुलैया है। इस मनःस्थिति का चित्रण उपन्यासकार ने 'काया' के भीतर की उत्सुकता को लेकर निरूपित किया है। यद्यपि जाने अनजाने उस पात्र विशेष पर आत्म संतोष की मुस्कान चेहरे पर यदा कदा दिखायी देती है, लेकिन उसकी मन की अन्तः तलाश इतनी विविध रंगसिक्त है जो सशंकित दृष्टि से ही उन्मेलित की जा सकती है। सचमुच उसका जीवन अतर्बाही उजाले एवं अंधेरे में भटक रहा है। कभी स्थिर आंखों से वह अपने को देखती है और कभी छुई मुई छलना सी आशंकत होकर दूसरों को देखती है। इस प्रकार के धुंधलके में उसका बहता जीवन ऊबड़-खाबड़ जीवनगत कगारों से टकराता रहता है। उत्तरार्द्ध अर्थात् तृतीय खंड 'काया' के जीवन का पुर्नजन्म बनकर अवतरित हुआ है।

वह शहर में लंबी छुट्टियां व्यतीत करने के बाद फिर वहीं 'लाल टीन की छत' के नीचे पहाड़ी पर आ जाती है। वह कभी स्वप्निल दुनिया में खामोश और उजाली रात की कामना करने लगती है तो कभी जीवन बसंत के गलित अवसान पर भी चिंतातुर हो जाती है। वह अन्जान लड़की 'काया' अब अबोध नहीं है, उसे अपनी पथरायी आंखों से घर बाहर सब सूझने लगा है। पहाड़ी के परिवेश की जीवंतता और आकांक्षाओं का घिरा हुआ आकाश एक बिंदु पर आकर उसे मिलता हुआ दिखायी देता है। उसके मन का प्रतिबिम्बन एक अंधेरी तृप्त फूत्कार से सन्निहित बनकर अवतरित हुआ है। सचमुच जीवनगत विसंगतियां और विडम्बनायें इस उपन्यास के मूल में प्रतिबद्ध हैं।

(3) एक चिथड़ा सुखः-

यह उपन्यास कथाकार के भीतर बैठे उस विचार तन्द्रा से ऊबा हुआ है जिसमें स्वर्णिम अतीत वर्तमान में झांक तो रहा है किन्तु है बहुत जीर्ण शीर्ण। 'बिट्टी' पात्र का गुजरता वक्त धीरे-धीरे हिलते हुये झरोकों में "नित्ती भाई" के साथ दर्शाया गया है।

बात बड़ी स्पष्ट सी है--- "यह गुजारा हुआ समय है और मैं बहुत पहले मर चुका हूं और आप असली दुनिया में नहीं हैं, मेरी डायरी आप तहां चाहें, रुक सकते हैं, डायरी बंद करके मुझसे छुटकारा पा सकते हैं।"[1]

"बिट्टी" की दुनिया में हिलते डुलते उस प्रकार के सम्बन्ध जिन्दगी को सिर्फ दोहरने के लिये ही जीवित है। उसके लिये सारी दुनिया होकर भी नहीं है। वह अपने आप को जिन्दगी के पन्नों पर जब कभी पलट कर देखती है तब उसे बदलते नजरिये ही दृष्टिगत होते हैं। ढहते हुए सम्बन्धों में 'नित्ती' भाई का सोच लगातार करवटें बदलता रहता है और उन्हें लगता है कि बरसों पहले चली हुयी जमीन पर वे दुबारा चल रहे हैं। 'बिट्टी' के स्थान बदलने पर भी यही सोचती है कि उसने इन दो सालों में भी जिन्दगी के कितने पाठ खेले हैं। दूसरों की जिन्दगी जीती है, लेकिन खुद वही जो पहले थी। पहले से भी बदत्तर।

1- एक चिथड़ा सुख, पृष्ठ 133

इलाहाबाद और दिल्ली के स्थान भेद का भय उसके मन में कटीले तार बनकर उग आता है। वह सोचती है कि इन छिटके तारों के बीच अपनी चाहना वह ढूंढ नहीं पायेगी। 'बिट्टी' की सारी देह सिहर कर झुरमुरा उठती है और ठिठुरते हुए कभी दिल्ली को तो कभी इलाहाबाद को ओढ़ लेना चाहती है। उसे पता है कि, उसका कोई भी तो इन्तजार नहीं कर रहा है। खुद पेड़ बनकर अपनी छाया को समेटे हुये हर जगह अपना समझकर ठिठक जाती हैं। उसकी आंखें हवा में थिर हो जाती हैं। और असली दुनिया अपने आफ उसके सामने रील की तरह घूम जाती है। उसे अपना स्वर एक दम ठण्डा और अपरिचित सा सुनाई पड़ने लगता है। फिर उसे लगता है कि वह खामोशी की दुनियां में आकण्ठ डूबती चली जा रही है। एक थरथराती सी कौध उसकी सिराओं में लपकती चली जा रही है उससे भयभीत होकर बो कभी आंखें मूंदती है तो कभी ढलते सूरज की पाली चमक देखती है बिट्टी लगातार सोचती चलती है वह अतीत भी कितना अधिक, जो 'नित्ती भाई के साथ धीरे-धीरे हथेलियों पर होकर सरका था। लेकिन वही आज अजीब सी उदासी और विस्मय से भरा हुआ चित्र बन गया है जिसे न तो कागजों पर उतारा जा सकता है और न खाली आंखों में बसाया जा सकता है "शुरु के दिनों में जब भटकते हुए थक जाते, तब अचानक बिट्टी कहती, चलो नित्ती भाई के पास चलते हैं।"[1]

लेकिन आज वही बिट्टी की नजरों से सब कुछ बचाया जा रहा है। बिट्टी का मन अब पूरी तरह से खाली है। सिर्फ हल्की सी खरोंच के रूप दो आंखों के सामने कभी-कभार झूम जाती है जिससे वह अजीब सी खुशी में क्षण भर के लिए अपने को रखकर अपने को ठिठकने के लिये बाध्य करती हैं बिट्टी की दुनिया लगता है किसी खास सेफ में बंद की दी गयी है, जिससे ठहरे हुए क्षण दुबारा आने पर भी सरसराहट पैदा नहीं करते। बिट्टी अतीत ही नहीं जन्म-जन्मान्तरों के सम्बन्धों में विश्वास ही नहीं करती, और सही भी है एक दशक में लोग जब अपना घर छोड़ कर चले जाते हैं और जब बरसों बाद लौटते हैं तो लोग उन्हें पहचानने के लिये इन्कार करने लगते हैं फिर तमाम जिन्दगियों का हिसाब तो बहुत ही कठिन ही है। बिट्टी की सोच

यद्यपि अतीत और वर्तमान दोनों छोरों से गुथा हुआ है। फिर भी वह वर्तमान के प्रकाश यथार्थ में ही विश्वास करने लगी है अतीत तो अंधेरा बन चुका है और अंधेरे में जुड़ी हुयी जड़ों को टटोलना अब मात्र बेवकूफी ही है।

निर्मल वर्मा ने आज का दिन और बीत हुआ कल का दिन के अन्तराल में लिखी हुयी कहानी का यह उपन्यास रूप निश्चित ही अनुभूत सत्य की हिस्सेदारी से बीच में ऐसे कई क्षण गुजर गये जिनमें रात हुयी दिन हुआ और हर कारने में सम्बन्ध अढ़े रहे, लेकिन आज धुंधला सा कुहासा 'बिट्टी' 'मुन्नू' 'नित्ती भाई' आदि पात्रों के मध्य छाया हुआ है, जिसमें भीगी सी ठंडक बनी हुयी है। अब जरूरत है तो एक तपती सी आंच की कि जो इस कुहासे को चमकीला बना सके, उसे उजाला और घुला हुआ कर सके।

बिट्टी का वह क्षण सबसे अधिक त्रासदी बनता है जब 'नित्ती' भाई की मृत्यु का उसे दुः समाचार मिलता है।

उसके चेहरे पर बराबर एक ठिठुरती हुयी शाम जमा हो जाती है, ना कोई भाव रहते हैं और

1- एक चिथड़ा सुख, पृष्ठ 55

ना कोई संवेदना। उसके भीतर बाहर का भटका हुआ, खोया हुआ निजता का सम्बन्ध सुख का केवल एक चमक सा रह गया है। न तो उसके जीवन में कोई रहस्य है और न कोई चमत्कार। वह सच मायने में आगे चलना भी नहीं चाहती फिर भी गुजरे हुये दिन बरबस उसे धक्का देकर आगे बढ़ाते हैं उपन्यासकार ने बिट्टी के गमगीन और भावहीन चेहरे को कथा के उत्तरार्द्ध में बड़े ही मार्मिक ढंग से चित्रित किया है। बिट्टी बेमानी से सब कुछ सुनती और झेलती जा रही है। परिवेशगत बिट्टी का व्यक्तित्व इस प्रकार दर्शाया गया है--- "यहां दुनिया खत्म.... सी हो जाती है और उसकी सरहद सिर्फ उसके खुरखुरे पांव सुनायी देते हैं थप, थप, थप, धीरे-धीरे आगे बढ़ते हुये, पत्तों और पत्थरों को कुचलतें हुये जिसके बीच बिट्टी का चेहरा दिखायी देता, आधी कटी तस्वीर-सा उठा हुआ ओंठ एक गला नीली तनी हुयी नस पसीने में झूलती बालों की लट।"[1]

बिट्टी ऐसे ही परिवेश के घेरे में एक सूक्ष्म भाव मूर्ति बन गयी है। उसका सिर्फ सिर और चेहरा ही मोम की गुड़िया की तरह है। उसके मन का निषिध मोह कभी उसे भीतर की ओर खींचता है तो कभी खुली सड़क पर लाकर खड़ा कर देता है। तब एक क्रूर सा पथरीला से रोशनी अपने जबड़े फैलाये उसे निगल लेना चाहती हैं बिट्टी पूरे उपन्यास में परिवेश से टक्कर लेती हुयी दोहरी बाहर भीतर की संकरी गलियों में भटक रही है वह कभी सिर्फ अपने को पहचान पाती है तो कभी हवा में उड़ती हुयी बातें और चेहरे से भी मुलाकात कर लेती है। उपन्यासकार बिट्टी और बौने पात्र के मध्य में संवाद को इस उपन्यास भाव मूलक शीर्षक बनाया है- बिट्टी तुम कुछ और बनना चाहोगी?

.....तुमने उस बौने को देखा था?

बिट्टी ने धीरे से कहा हां क्यों? क्यों मैं वही बनना चाहती हूं वह भयभीत सा होकर हंसने लगा। तुम चिथड़े पहनोगी? बिट्टी उसके पास सरक आयी वे चिथड़े नहीं थे........ उसने कहा वह सुख था।[2] कथाकार तारों की पीली छांव में उड़ते उतरते जीर्ण-शीर्ण मन के परिधान को सुख का भावमूलक पर्याय मानता हुआ यह कह देना चाहता है कि सारा जगत एक लम्बे क्षण से जिसे निहार रहा है उसमें कुछ और नहीं है, एक नुमाइश का मैदान है जो रंग बिरंगी रोशनियों के मध्य झूठी सच्ची स्मृतियों को अपने में लपेटे हुये है।

1- एक चिथड़ा सुख, पृष्ठ-159
2- एक चिथड़ा सुख, पृष्ठ 108-109

(ख) निर्मल वर्मा का प्रकाशित कहानी साहित्यः-

(1) परिन्दे- निर्मल वर्मा कृत 'परिन्दे' का साहित्य एक संज्ञायित किया गया है। इस कथा संकलन में कुल मिलाकर सात कहानियां हैं जिनका क्रम इस प्रकार है-

(1) डायरी का खेल (2) माया का मर्म (3) तीसरा गवाह (4) अंधेरे में (5) पिक्चर पोस्टकार्ड (6) सितम्बर की एक शाम और (7) परिन्दे।

कथाकार ने परिवेश की जीवंतता और जीवन जगत के बहुआयामी अन्तर्द्वंद्वों को को प्रत्येक कहानी में दर्शायी है। 'डायरी का खेल' कहानी अतीत वर्तमान के द्वंद्व को पात्रों के माध्यम से व्यंजित करती है। 'बिट्टी' इस कहानी का प्रधान पात्र है। आज वैवाहिक संदर्भ को लेकर अविवाहित नारी जगत में कई प्रकार के मनोवैज्ञानिक सत्य उद्घाटित हो रहे हैं। 'बिट्टी' का अचेतन इतना अधिक संत्रस्त है कि वह पूर्वा पर सम्बन्ध के विच्छेद हो जाने पर अपने विगत फोटो को भी टुकड़े-टुकड़े कर देती है। वर्तमान पर दृष्टिगत करते हुए वह जीवन के धुंधलके में जीना ही अभीष्ट समझती है। लिखा है-----उन्होंने मेरी ओर नहीं देखा- चित्र पर आंखें गड़ाये हुए बहुत धीमे स्वर से पूछा- कहां से मिली है तुम्हें यह फोटो --------फिर उन्होंने अपनी कांपती हुयी मोमबत्तियां से अंगुलियों से अलबम उखाड़कर फाड़ने लगी।'[1]

बिट्टी के इस तनावपूर्ण जीवन का बहुत बारीकी से कथाकार ने अध्ययन किया है। बिट्टी के बचपन से गलित यौवन एक विविध रेखाचित्र कथाकार ने बनाये हैं। झपकती और बोझिल आंखों की गहराई का परिमापन करते हुए लेखक ने मनहूस सन्नाटापरक जिन्दगी के बुनाव और बनाव को परिवेश के साथ निरूपित करने में सिद्धता हासिल की है। कहा गया है, हवा के तेज झोंके का थपेड़ा रेत को अपने पैरों से झाड़ता फड़फड़ाता हुआ सामने निकल गया---मरने से पहले बहुत जी भरकर जीना चाहिए, बब्बू, उनके सूखे होंठ पीछे कुछ हिले कांपे फिर जमे से रह गये।[2] इसी क्रम से दूसरी कहानी माया का मर्म, एक छोटी लड़की लता माथुर की कहानी है जो कागज की नाव बनाकर पानी पर तैराती रहती है। उसकी मनःस्थिति किसी आत्मीय टोह में अन्तः तलाश करती हुयी दृष्टिगत होती है। काल सापेक्ष धुंधले सीमान्त पर बढ़ते हुए इसे लता का पानी के बहाव में गिरने से बचाना उप लता की कागज की नाव का उसकी बड़ी बहिन के द्वारा निर्माण करना लेखक को एक साथ झकझोर देता है, फिर वह डूबती उतराती अतीत की गंध को समेटता हुआ वर्तमान में एक कहानी का रूपान्तरण करता है। तथ्य प्रतीकात्मक तथा दर्शन नैराश्यहीनता की ग्रंथि से पीड़ित है। कथाकार लिखता है- इस घटना को बीते अरसा गुजर गया मैं अब भी बेकार हूं लेकिन अब एम्पलायमेन्ट एक्सचेन्ज के दफ्तर जाने की आदत छूट सी गयी है। मैं अक्सर अपने कमरे में बन्द रहता हूं।[3]

1- परिन्दे, पृष्ठ 17-18
2- परिन्दे, पृष्ठ 26
3- परिन्दे, पृष्ठ 39-40

प्रस्तुत कथा संग्रह में 'तीसरा गवाह' कहानी तत्वतः विलक्षण कहानी है। चेतन मन के बदलते स्तरों का आंकलन कथाकार ने नीरजा और रोहतगी पात्र के माध्यम से बखूबी किया है। प्रेम के सच्चे झूठे किस्से बहुत हैं लेकिन मि. रोहतगी द्वारा दर्शाया और सुनाया गया किस्सा सचमुच मार्मिक और हृदय विदारक प्रतीत होता है कि अचेतन अर्थात् (Id) चेतन अर्थात् (Supper & age) के दोनों ओर नीरजा पात्र में क्षण बोध के साथ आकस्मिक उदय अवसान बनाये रखते हैं। नीरजा रोहतगी से औपचारिक प्रेम-विवाह करने के लिए कोर्ट में उपस्थित होती है और लगता है कि उनका यह फैसला जिन्दगी की लम्बी राह तय करेगा लेकिन कथाकार ने नीरजा के जीवन में ऐसे क्षण का बोध कराया जिससे वह अपने पर और अपने प्रेमी रोहतगी पर संसार की दृष्टि नहीं झेल पाती। मैं त्रस्त आंखों से नीरजा का चेहरा पत्थर जैसा निश्चेष्ट एवं भावहीन हो जाता है, और वह कोर्ट से पलायन के रुख को अपना लेती है। लिखा है मुझे लगता है कि कोर्ट रूम में बिताये वे दस मिनट ही सबसे अधिक महत्वपूर्ण थे।[1]

दरअसल कोई भूला भटका सा क्षण आता है जीवन में, जब प्रेमीजन अपना-अपना हृदय उड़ेल देना चाहते हैं और उससे भी बढ़कर एक मनहूस क्षण और होता है जिसमें प्रेम की सारी जिन्दगी खत्म हो जाती और लगता है कि चारों ओर से घनी नीरवता सिमट कर उनके हिस्से में आ गयी। कथा संग्रह की चौथी कहानी 'अंधेरे में' शिमला के परिवेशात्मक चित्रण को निरूपित करती है। 'बानो' इस कहानी की मुख्य पात्र है। बात यों तो जीवन के उतार-चढ़ाव को लेकर गहरे मर्म को लिये हुए है लेकिन की इस पात्र के लिए मात्र भीनी-भीनी सहानुभूति है। कथा उभरकर जीवंत नहीं बन सकी फिर भी सौन्दर्य बोध के अभिनय और अछूते आयाम इस कहानी में यत्र-तत्र उद्घटित हुए हैं। जैसे, ''संगमरमर' सी चिकनी सफेद बांहें, जिन्हें मैं शरमाते-शरमाते छूता हूं।'[2] 'पिक्चर पोस्टकार्ड' इस कथा संकलन की पांचवीं कहानी है। इसमें सीडी, नीलू, प्रभा और निकी मुख्य पात्र हैं। चारों पात्रों की मनःस्थिति मैत्री भाव की ओर इंगित करती है। गर्मियों के अवकाश में इन पात्रों की अनेक विधि मानसिकता को लेकर दर्शाया है। आज यूनीवर्सिटी और कालेज में बहुत ऐसे औपचारिक रिश्ते जन्म ले चुके हैं जहां पारस्परिक मिलना उठना, बिना किसी हिचक के सोता रहता नीलू ने लॉ कालेज के बैठे हुए लड़कों की ओर देखकर हाथ हिलाया यद्यपि वे लड़के अपरिचित ही हैं। प्रभा इसे अच्छा नहीं मानती और कहती है-- तुम पागल तो नहीं हो गयी। झाड़ के कांटे की तरह कल तुम्हारे पीछे जायेंगे।........नीलू ने कहा------'और फिर हाथ हिलाने में क्या हर्ज है?........दे वर लुकिंग लाइक सेलर्स।'[3]

'सितम्बर की एक शाम' प्रस्तुत कथासंग्रह की छठवीं कहानी है। इस कहानी में विशुद्ध रूप से परिवेशात्मक चित्रण ही है। कहानी का प्रारम्भ किन्तु झुलसते हुए विविधधर्मी वातावरण को लेकर हुआ है--------'फिर हवा थमी, पत्ते खामोश हो रहे और घास जो दिन-दिन भर कांपती रही थी, अलसायी सी सोने लगी। दिन भर पीली गर्म धूल हवा को झुलसती हुयी उड़ी थी।'[4]

कहानी का अन्त भी परिवेशात्मक बिम्ब को उरेह रहा है------'बारिश कब की रुक चुकी है लेकिन दूर तक लैम्प पोस्ट के नीचे गंदले पानी के गड्ढे में......... ।'[5]

1- परिन्दे, पृष्ठ 61
2- परिन्दे, पृष्ठ 67
3- परिन्दे, पृष्ठ 99
4- परिन्दे, पृष्ठ 111
5-परिन्दे, पृष्ठ 119

कथापात्रों ने अनुभूतिपरक झिलमिल बाणों को इस कहानी में जिया है। इन पात्रों में मुक्ति की उत्कट प्यास है जो नैतिक मान्यताओं के घेरे को तोड़ना चाहती है। अन्तिम और विशिष्ट कहानी 'परिन्दे' एक ऐसी कहानी है जो अन्तर्मुखी असीम वेदना में पात्र 'लतिका' जीवन की बची-खुची सांसें अपने व्यस्त बाणों में समर्पित कर देना चाहती है लेकिन जब अवकाश में उनके अधीनस्त रहने वाली सभी लड़कियां परुण पक्षियों की तरह अपने मंतव्य और उड़ जाती है तो लतिका को एक ओर अतीत जीवी जिन्दगी पर तरस आता है तो दूसरी ओर निस्तब्धता के अनन्त आकाश में आत्म विस्मृत होकर एक बोझित जीती जागती जिन्दगी का रूप धारण कर लेती है। लतिका याद करती है---हर साल सर्दी छुट्टियों में पहले यह परिन्दे मैदानों की ओर उड़ते हैं कुछ दिनों के लिए इस पहाड़ी स्टेशन पर बसेरा करते हैं। प्रतीक्षा करते हैं बर्फ के दिनों की जब वे नीचे अजनबी, अनजाने देशों में उड़ जायेंगे..................।[1] इस कहानी में वातावरण में मुखरित अभूतपूर्व संवेदना के स्वर हैं।

प्रस्तुत कथा संग्रह जीवगत नाना व्यापारों की ओर इंगित करता है वस्तुतः आज का जीवन कितने भयावह टकराहटों को झेल रहा जिसमें नित्य--------प्रति भावना शून्य होती जा रही है। जीवन के नय संदर्भ नये अर्थ लेकर उपजते जा रहे हैं। क्षण विशेष में भी निजता का अधिकार बोध आज व्यक्ति के पास अवशिष्ट नहीं है। इस प्रकार के तथ्यों का काल सापेक्ष निरूपण निर्मल वर्मा ने इन कहानियों में किया है।

(2) पिछली गर्मियों में:-

परम्परित कहानी की विधा के प्रतिमानों से हटकर बचे समय सापेक्ष बनाने में अग्रसर निर्मल वर्मा की कहानियां 'पिछली गर्मियों में कृत' नाम से संकलित हैं जिनका क्रम है------'धागे', 'पिता और प्रेमी', 'डेढ़ इंच ऊपर', 'खोज', 'उनके कमरे', 'अमालिया', 'इतनी बड़ी आकांक्षा', 'पिछली गर्मियों में।'

कहानीकार ने इन कहानियों में व्यवहारिक समझ और अपनेपन की तलाश दोनों को ही क्षणबोध के साथ उभरे तथा उतरे इर्द-गिर्द धागों से बुना है। अपनी परिधि भूमि से हटकर भावभग से विरक्त होकर विदेशी संस्कृति की आपाधापी की झलक इन कहानियों में निरूपित है। हर स्थिति विचित्र संभावनाओं के साथ संदिग्ध बनी हुयी है ऐसा प्रतीत होता है कि कहानीकार अंधेरे की चीख बनकर चारों तरफ के मंडराते परिवेश विदूषित भाव को अंधकार निमग्न चौराहों पर उछाल रहा है। पहली कहानी 'धागे' में होस्टल का खुला निमंत्रण तथा चित्रण है। मुख्य पात्र 'मीनू' है जो मुट्ठियों में विदेशी लहजे तथा उन्तुक्तता को दबोचकर कसे हुये है। एक अपरिचित किन्तु धनीभूत शान्ति उसके अन्तस पर छायी हुयी है निजता एवं भीरुता की हकलाहट तथा विनम्रता की सकपकाटह अपने प्रियतर भाव को इस प्रकार व्यंजित करती है-- 'उसने मेरे दो हाथ अपनी मुट्ठियों में भर लिये, तुम्हें इतनी देर कैसे हो गयी?'[2]

क्रमानुसार 'पिता और प्रेमी' कहानी में कथाकार ने ऐसे नायक की मनःस्थिति का चित्रण

1- परिन्दे, पृष्ठ 153
2- पिछली गर्मियों में, पृष्ठ 9

किया है जो एक साथ प्रेमी और पिता होने का दावा अपने भाव-बिन्दुओं को समेट करता है। वस्तुतः रास्ता चलते-चलते नायक को उसकी प्रेयसी एवं पत्र से भेंट हो जाती है। आत्मीयता के कगार पर हैरानी की मुद्रा में अजीब तसल्ली के साथ वे एक दूसरे को ताकते हैं। वे कभी अतीतोन्मुखी उद्भावना से आकर्षित होते हैं। तो कभी वर्तमान में भोगे हुये क्षणों को पूरी शक्ति के साथ जी लेना चाहते हैं। नायक के मन का उल्लास, प्रेम, वातावरण, करुणा, दया तथा स्निगध्ता चतुर्दिक दिशाओं में छिटक जाती है। बड़े दार्शनिक वैयक्तिक स्तर पर यह कथन कृतिकार के द्वारा अभीष्ट बन पड़ा है-- ''हर दिन को अपना अलोक होता है-- देह की स्मृति की तरह अन्त और शुरू में लगभग एक जैसा ही-- अंधेरे के छोर को छूता हुआ।''[1]

कहानी संकलन तीसरी कहानी 'डेढ़ इंच ऊपर' दाम्पत्य जीवन की कहानी है किन्तु यह दाम्पत्य जीवन सामाजिक, संस्कृतिक एवं नैराश्य अवसाद से आपूतिरत है।

पति के मन का भय और कुणठाजनति तस्त्र भाव चिभिन्न यातनाओं को अपने आप ही, कष्ट की कल्पना करते हुये भोग रहा है। मन की संदिग्ध परिसीमा पर कथाकार ने गहराई से विचार किया-- ''क्या यह अजीब बात नहीं है कि जब हम कभी मौत, यातना या दुघर्टना की बात सुनते हैं या सुबह अखबार में पढ़ते हैं तो हमें यह विचार कभी नहीं आता कि ये चीजें हम पर हो सकती हैं।''[2]

मनोवैज्ञानिक सत्य को उद्घाटित करने वाली कहानी 'खोज' इस संकलन की सबसे गहरी और विचार तत्व लिये हुये कहानी है। केवल एक सफेद बाल छोटी बहनों को अतीतोन्मुखी एवं अभिनवेमुखी द्वन्द्व में गिरफ्त करतां चलता है। अकारण एवं अनागत भय दोनों के पलंग के आस-पास छाया हुआ है। वे परिवेश की गंध तथा अन्तस की छटपटाहट को निस्तत्वयधता के साथ जोड़ती चलती है-- ''एक लम्बे क्षण वे गहरे विस्मय से एक दूसरे को देखती रही।''[3]

इसी क्रम में उनके कमरे कहानी के अंतर्गत एक लड़के की मानसिक त्रासदी का चित्रण है। मकान दुकान के सारे कमरे उसके मनोरूप धुंधलके से छाये हुये हैं अविस्मरणीय अंधविश्वास में डूबे लड़का एवं लड़की अर्थात् दोनों ही अचेतन मन में निर्णय के अनुसार खोये रहते हैं। यद्यपि वे दोनों ही संभल कर चलने के प्रयास का दिखावा बहुत करते हैं लेकिन न तो उनके पास विवेक से निर्मित विचार हैं और ना भावों से अपूरित अनुभाव। परिणामतः दोनों ही क्लांत आंखों में एक भीना संसार संजोये रखते हैं। कथाकार का कहना उपयुक्त ही है-- ''एक स्वप्निल-सी मुस्कान, जिसका उस कमरे की उसी-बसी गृहस्थी से कोई सम्बन्ध नहीं था।''[4]

''अमालिया कहानी अरब अमालिया और ब्राजीलियन पात्रों की कहानी है ये पात्र दिनभर शहर में निरुद्देश्य भटकते रहते हैं। उन्हें महसूसता है कि उन्हें कड़वी सी गन्ध घेरे हुये है जो वासी हवा की बदबू के साथ सारे परिवेश को दुर्गन्धमय बनाये हुये है चिन्तित मन से उसके मन का सन्नाटा संदेह की आहट एक अपरिचित भूमि पर लाकर खड़ा कर देता है जहां से वे सड़क मकान आदि को अनिश्चित भाव से देखते रहते हैं, उनके मन की धुन्ध उन्हें घसीटकर स्वरहीन बना देती है।

1- वही, पृष्ठ 31
2- पिछली गर्मियों में पृष्ठ 38
3- वही, पृष्ठ 56
4- वही, पृष्ठ 67

जिन्दगी के बाहर भीतर प्रकाश के सारे दरवाजे बन्द हो चुके हैं, इसीलिए ब्राजीलियन और अरब मित्र की मां फोटो देखकर भी मर्म से अनछुए रह जाते।

इतनी बड़ी आकांक्षा इस संग्रह की सातीं कहानी है इस कहानी में दो फौजी युवकों का मानसिक संसार अनुशीलित किया गया है। जब वे होटल के काउण्टर पर बैठे स्त्री पुरुष निस्त्रब्यता एवं मूकता पर दृष्टीपात करते हैं तो उन्हें जीवनगत सम्बन्धों की बनावट पर चिन्ता होने लगती है -- जब स्त्री और पुरुष इतने निश्चिंत भाव से आपस में चुप हों, तो अनुमान लगाना कठिन नहीं है कि वे पति पत्नी हैं।"[1]

कथा संकलन की आखिरी कहानी 'पिछली गर्मियों में' कहानी के अन्तर्गत महीप पात्र के ऊबे हुये मन का चित्रण किया गया है। महीप के पास गर्मियों में कोई खास काम नहीं है। उसका छोटा भाई केशी आर्मी में चला जाता है इसीलिए वह ऊबे मन से अकेलेपन को लेकर जिन्दगी की सांसें ले रहा है। माता-पिता के प्रति उसकी उपेक्षा शुरू से है इसीलिए रात को वह विस्मृति के गर्भ में जाने के लिये निषेध-पेय का भी पान करता है। उसके मन पर एक प्रश्न पर भरी दृष्टि जमी हुयी है जिसका उत्तर उसे न तो उसकी मां से मिलता है और न समग्र परिवेश से। इस प्रकार अवकाश के क्षणों में इन बहुधर्मी पात्रों की ओर निर्मल वर्मा ने इंगित किया है जिन्हें न निजता पर भरोसा है न परता पर बल्कि वे जीवन को बरबस चलने के धक्का दे रहे हैं।

(3) मेरी प्रिय कहानियां:-

बरसों विदेश में रहने के कारण लेखक के मन में इस कहानी संकलन में उसी प्रवास के दौरान जिन्दगी के जोखिम भरे जीने के भ्रम को दोहराया गया है। यद्यपि इस संकलन की सारी कहानियां अन्य वर्णित कहानी संकलनों में आ चुकी है, फिर भी इन कहानियों को दुबारा संकलित करते हुये लेखक ने यह स्पष्ट कर दियाहै कि इन कहानियों में वह सुखद विस्मय है जिसे बार-बार पढ़ने और समझने से कुछ नया ही मिलता है। ये कहानियां अलग-अलग टुकड़ों में काफी लम्बे अन्तरालों के बीच लिखी गयी है। 'दहलीज', 'परिन्दे', 'अन्धेरे में', 'डेढ़ इंच ऊपर' तक का अन्तराल एक अन्तहीन सूनेपन का वातावरण है और इधर 'अन्तर', 'लन्दन की रात' 'जलती झाड़ी' कहानियों में भोगे हुये यथार्थ को पुनर्जीवित करने की आकांक्षा है।

कहानीकार ने स्वयं स्वीकारते हुये यह लिखा है-- "इन कहानियों को दुबारा पढ़ते हुये मुझे लगा है कि मेरे लिये ही हर कहानी एक नाकाम और कभी-कभी सौभाग्य के क्षणों में-- लगभग सफल कोशिश रही है कि जंगल के अन्तहीन सूनेपन में उस घास के टुकड़े तक लौट सकूं जहां मैंने किसी अनजाने और मूर्खता पूर्ण क्षण में पहली बार के जीने, सूंघने रोने और देखने को खो दिया था।"[2]

कहानीकार को वीरान जगहों को भरने की आकांक्षा सदैव रही है। उसे मध्यवर्गी जीवन के अनछुए रिस्तों को भी इन कहानियों में बटोरने का साहस किया है।

कहानीकार के पात्र शाम के सर्दीले धुंधलके में अपनी हताश सूनी जिन्दगी में लिपटे हुये हैं।

1- पिछली गर्मियों में, पृष्ठ 101

2- मेरी प्रिय कहानियां, पृष्ठ 6

लेखक ने इस गहराई को प्रबल शब्दों में इन कहानियों के बीच परिमापन करने का प्रयास किया है।

एक धुंधली सी स्मृति छाया पर हर पात्र के साथ जुड़ी हुयी है पात्रगत हैरानियों की एक भुतैली आभा चारों और छिटक रही है।

इसीलिए कहानीकार इन शराबघरों का भी वर्णन विवशता से करता है जहां बारिश और ठंड से बचने के लिये अधिकांश पात्र घड़ी दो घड़ी बैठ जाते हैं कहानीकार को यूरोप के अलग-अलग शहरों की स्मृतियां इन कहानियों में चमकीला सा बोध देती चलती है।

वैसे यह कहना असम्भव है कि ये सारी कहानियां सबकी ही प्रिय कहानियां होकर संकलित हैं इतना अवश्य है कि लेखकीय प्रियता का यह सटीक प्रभाव है।

यह तर्क जुटा पाना भी विसंगत है कि इन कहानियों के प्रति दिलचस्पी का पैन्डुलम एक सिरे से दूसरे सिरे तक एक जैसा ही घूमता रहता है। कहानीकार की कथा भूमि देशी या विदेशी, यह चीज तो बहुत गौड़ है।

मुख्य बात तो यह है कि जीवनगत घटनाओं का रखरखाव परिवेश की जिन्दादिली के साथ आधुनिकता बोधीय आयामों में कितना सटीक बन पड़ा है, यही तथ्य विचारणीय है।

(4) जलती झाड़ी:-

इस कहानी संकलन में क्रमशः इस प्रकार दस कहानियां संकलित हैं, 'लवर्स', 'माया दर्पण', 'एक शुरुआत', 'कुत्ते की मौत', 'पहाड़', 'पराये शहर में', 'जलती झाड़ी', 'दहलीज', 'लन्दन की एक रात', और 'अन्तर'।

कहानीकार ने सहज एन्द्रिक बोध से वस्तुरुप को पकड़ने का इसमें प्रयास किया है। यूरोपीय देशों के भ्रमण करने के दौरान जो उसे सांस्कृतिक, सामाजिक, समस्याओं में उभरते हुये कोण मिले, उसे उसने इन कहानियों में भरपूर उतारने का प्रयास किया है। वैसे हिन्दुस्तान का स्मृत्यत्मक बिम्ब उसके मन से हट नहीं सका है।

पहली कहानी, 'लवर्स' कुछ ऐसी ही कहानी है जिसमें नीलकण्ठ, नन्दी आदि पात्र 'में' पात्र के साथ शरारत भरी दृष्टि से सहानुभूति कितनी हल्की है। वह जो उम्र के साथ बढ़ता चलता है त्यों ही खामोशी भी बढ़ती जाती है। बन्द दरवाजे की तरह उड़ते पत्तों और पुराने पत्थरों की तरह आज व्यक्ति आंसुओं की भाषा की पहचान भी भूल गया है और शायद आंसू बहाने वाला भी देर तक उस संवेदना को रोक नहीं पाता है।

कथन-------- "मैनें उसकी ओर देखा।

उसकी आंखों में बड़े-बड़े आंसू थे.......किन्तु उन आंसुओं का उसके चेहरे से कोई सम्बन्ध नहीं है....... और कुछ देर में, ढुलकने से पहले, खुद-ब-खुद सूख जायेंगे और उसे पता भी नहीं चलेगा।"[1] क्षणबोध का यह तकाजा देर तक किसी की भी प्रतीक्षा नहीं करता। वह स्त्री पुरुष के बीच में बैठकर सब कुछ यूं ही बदलता चला जाता है।

"माया दर्पण" कहानी के पात्र तरन बाबू इन्जीनियर बाबू, बुआ आदि ऐसे ही पात्र हैं जो

1- जलती झाड़ी, पृष्ठ 16

आसपास के कार्य कलापों में सर्वथा निर्लिप्त हैं।

परिवेश के पांव मुड़ते नहीं हैं लेकिन उसकी धुरी को दलदल में फंसी इन्सानियत की बू सदैव डगमगाती रहती है मनुष्य को लगता है कि आंखों के सामने अतीत की धूल धूमिल परतें दीये की लौ में हल्के से झिलमिला जाती हैं तरक फीकी सी हंसी लेकर अपनी आंखों में कातारता भरे रहती है।

वह बाबू की छाया में कब तक विश्वास बनाये रखेगी। इस प्रकार रुखी सी अभिलाष उसे बरसों तक प्रतीक्षा करने के लिये मजबूर करती है।

कहानीकार ने मानवीय भीतरी दुनिया और परिवेश की बाहरी दुनिया का एक जैसा स्वरुप चित्रित करते हुये लिखा है-- ''अपने कमरे में वापस तरन चुपचाप खुली खिड़की के आगे खड़ी रही थी। दूर-दूर तक मैदान में फीकी सी चांदनी बिखरी थी। इन्ही के आस पास कहीं इन्जीनियर बाबू रहते होंगे।''[1] तरन के सामने एक धुंधली सी तस्वीर उभर आती है जिसमें वह उदासीन आंखों से देर तक कभी अपने मर्म के बारे में सोचती है तासे कभी बाबू के रुखे चेहरे के बारे में। फिर भी वह मन्त्रमुग्ध होकर उसे अपलक निहारती रहती है। इतने पर भी उसे लगा कि बरसों के बाद उसके पास एक रहस्यमय सुख उभर आया है चारों ओर घिरते अंधकार की स्निग्ध छाया के बीच उसे सब अपनी चिन्तायें निरर्थक सी जान पड़ती हैं।

जिन्दगी का विश्वास यद्यपि उसके सामने कई बार हिलडुल चुका था फिर भी आज शाम के घिरते अंधियारे का सूनापन धुंधली तस्वीर बनकर उसके दिल को छू गया था। सब कुछ कितना दूर था फिर भी कितना अपना था ऐसा सोचती हुयी तरन एक पल के लिये भी बुझ नहीं जाना चाहती थी एक शुरुआत कहानी में हम दोनों की पहचान की खामोशी गरमाहट और बढ़ते चरणों का इतिहास गूंथा गया है कहानीकार को स्टीमर की बात और यात्रा में एक पहचान की शुरुआत स्तब्ध तो नहीं लेकिन यूरोप की फैलती दुनिया की याद दिला देती है कहानीकार यह कह देना चाहता है कि स्टीमर चल रहा है। आसपास समुद्र के फेनिल जल में धूप के द्वीप डूब जाते हैं और फिर जब हम उन्हें भूल जाते हैं, तब वे कहीं दूर बच्चे की किलकारी के मान्निद अपना चेहरा ऊपर उठा लेते हैं, और लहरों की चमकीली नोकों पर पिघल जाते हैं।''[2]

कहानीकार का बुझा हुआ चेहरा मन के भीतर छिपी यात्रा की दूरी को प्रकट कर देता है प्रश्न मेरी दृष्टि से वह धनी सी चुपकी लेकर स्टीमर पर लोगों के कोलाहल को सुनता रहता है कुछ देर तक खामोशी के बाद उसे बहुत अजीब सी दूरी का अनुभव होता है और फिर लगता है कि ये यूरोपीय निर्विकार चेहरे इतनी उद्भ्रान्त छाया को समेटे हुये हैं। यह भी एक शुरुआत है।

यह तथ्य उसके मनमस्तिष्क को झिंझोड़ देता है।

'कुत्ते की मौत' कहानी में लूसी कुत्ते का नाम नन्हे'और उसके जुड़े हुये अन्य पात्र अन्य जैसे मुन्नी आदि का जीवन इतिहास समेटे हुये है।

मुन्नी, नितिन कुछ हल्के से आकर्षण के साथ बाहर की जिन्दगी समेटे हुये है नन्हे की बेकारी दुनिया इन सब पात्रों के लिये अजूबा बनी हुयी है लूसी के अन्तयेष्टि का एक अबाध इतिहास इस कहानी में दिया गया है और लगता है कि समूचा घर एक घनघोर सन्नाटे में लिपट गया है

1- जलती झाड़ी, पृष्ठ 40

2- जलती झाड़ी, पृष्ठ 44

कहानीकार ने बताया है कि जिसे लोग पीड़ा कहते हैं और अब जो खालीपन था.......लूसी की चीखों से मुक्त, खुला, अबाद और गंधहीन।''[1]

पहाड़ कहानी में मानवीय प्रवृत्ति की अनिश्चित शुरुआत पर बल देकर स्त्री पुरुष के सम्बन्धों को समेटा गया। सामान्य तौर पर दाम्पत्य के मध्य से एक वक्त की एक बही साथ एक रहस्यमय चमत्कार पैदा हो जाता है जिससे वे टिकी हुयी धारणाओं से ही अपने को जोड़कर आगे बढ़ पाते हैं और मौलिक विचारणा को इतिश्री मान बैठते हैं कहानीकार का मत है........अक्सर होता है यह है कि बच्चे के आने पर पति.......पत्नी अनायास एक दूसरे के प्रति कुछ थोड़ा से विरक्त हो जाते हैं। चाहते हैं एक.......दूसरे को लेकिन बच्चे के माध्यम से.......और यह शुरुआत होती है अन्त होने की।''[2] यूरोपीय परिवेश का कुछ ढंग निराला ही है वहां सम्भवता यह बात लागू न हो फिर भी लेखक ने पति पत्नी के मध्य उतरते डूबते अन्धकार और प्रकाश को बारीकी से ही एहसास कराया है और अन्त में जाकर कह भी दिया है कि मुझे खुशी दाम्पत्य में देखने में अच्छे लगते हैं और इतने पर भी जब वे एक दूसरे को चाहते हों तो मेरे लिये एक रहस्यमय चमत्कार ही है।

''पराये शहर में'' कहानी का सारा परिवेश विदेशी ही है लेखक उभारती पन्नों के हाव भावों की दुनिया से भली भांति परिचित हो चुका है लड़का व लड़की जब उस दृष्टिकोण से देखते हैं तब एक दूसरे का आकर्षण देखने योग्य होता है उस परिवेश में किस प्रकार उन्ममानित और बदहवाश होकर चर्च की दीवारों से टकराकर भीड़ में खो जाते हैं और भीड़ की अन्धेरी गली उन्हें किसी प्रकार निजता के बन्धन में समेट लेती है इन सब बातों का सिलसिलेवार जिक्र इस कहानी में है लडकी बीच स्कायर में गाती रहती है लेखक भी वहीं पर खड़ा हुआ है भीड़ में गर्म देहों की पसीने से चिपचिपाहट की दुनिया गन्ध फैलाती चली जा रही है उधर एक लम्बा दुबला पतला लड़का रंग बिरंगा रूमाल गले में डालकर गुनगुना रहा है और कह रहा है कि कभी इटेलियन में तो कभी फ्रेन्च में और कभी अस्पष्ट भाषा में लेखक ने अपनी बीती हुयी शाम का यूरोपीय भीड़ का एक आत्म स्वरुप इस कहानी में बुना है।

इसी क्रम में जलती झाड़ी कहानी लेखक की अत्यन्त मजबूत लहजे की कहानी है क्योंकि इसमें लड़का व लड़की को एक दूसरे की ओर आकर्षित करने का तरीका लेखक ने दर्शाया है बाहरी संसार में वह बिना किसी शर्म छिद्रक के एक रास्ता छोड़कर दूसरे रास्ते पर बढ़ता चला जाता है। उसकी ओर प्रश्न भरी निगाहें जड़ती चली जाती हैं वह सोचता है कि वह बहुत ही मुश्किल में कभी पटाकर कभी अपने को पाता है लेखक की पहचान इसी यूरोपीय सैक्स स्त्री से होती है और वह उसके साथ भोगविलास किसी अन्वेषण के लिये सहसा चल देता है कहानीकार का कथन है........

...किधर देखा था?

...देखिये उधर झाड़ी में.......वह अब भी है

...वह कौन है

झाड़ी कांपती है जैसे उसके भीतर.......ही.......भीतर कुछ जल रहा हो। वह मेरे निकट सरक आयी.....क्या मैं सच हूं एक नरम सी सरसराहट हुयी, जैसे उसने मेरे भीतर एक पन्ना उलट दिया हो।''[3]

1- वही, पृष्ठ 59 2- वही, पृष्ठ 61 3- जलती झाड़ी, पृष्ठ 85

लेखक आखिरकार उस 'पराये शहर' में कह ही देता है, कि दूसरे दिन सुबह वह हमेशा के लिये छोड़कर चला गया। 'दहलीज' कहानी रूनी, शम्मी, जेली, मेहरू आदि पात्रों की कहानी है। रूनी अतीत और वर्तमान की झूठी सच्ची स्मृतियों में फंसी हुयी नायिका है। वह बड़ी बहिन जेली और भाई शम्मी से अन्तराल रखती हुयी अपने तक ही सीमित हो गयी है वह सोच ही नहीं पाती कि आज जिस बंगले के सामने वह खड़ी है वह बंगला अतीत के बंगले से क्या भिन्न है।

रूनी की आंखें मिट्टी के ढुहों पर बेतहाशा होकर दौड़ रही हैं। उसे ऊबड़-खाबड़ धरती पर खामोश छायायें उड़ती नजर आती हैं। रूनी की मनःस्थिति लम्बे अरसे के बाद बहुत कुछ धुंधला सी गयी हैं। कहानीकार वर्षों तक स्मृति का उदभ्रान्त उसके मन पर दौड़ लगाता हुआ पंखे समेटे हुये दृष्टि पथ में उतरता चलता है। रूनी के मन में न तो उत्साह है और न जीवन जीने की हरियाली का कोई कोमल रूप। 'लन्दन की एक रात' कहानी में लेखक ने वाद-प्रतिवाद का हल्का सा हिस्सा प्रकट किया है। कहानीकार दूसरी बार वहां गया हुआ है। वह नीग्रो छात्राओं से बहुत देर तक कुछ जानने समझने के लिये बहस करता रहता है। लन्दन की परिवेशगत सरसराहट कहानीकार के मन में अपना स्थान बना लेती है। दक्षिण अफ्रीका से आये हुये नीग्रो छात्र की बेकार की समस्या को कहानीकार ने कथ्य में स्थान दिया है। लिखता है "नीग्रो छात्र ने तनिक उत्साह पूर्वक कहा- ----हम दोनों साथ रहते हैं। कल शायद वह मुझे कुछ शीलिंग उधार दे सकेगा। .... साले कितना देते हैं? ढाई पाउण्ड----- नीग्रो छात्र ने कहा ....मेरा दोस्त बता रहा था।"[1]

वस्तुतः उत्सुकतावश लेखक ने उन बेरोजगार युवकों को वाद--प्रतिवाद में इस कहानी के भीतर स्थान दिया है। जो बाहर जाकर बेकार के शिकार होते हैं, और यह बेकारी उन्हें बहुत तंग करती है। 'अन्तर' कहानी इस संकलन की आखिरी कहानी है। लेखक के चौराहों का चित्रण, होटल की व्यवस्था का निरूपण, अस्पताल में घिरते जीवन का अनुशीलन एक साथ इस कहानी में व्यंजित किया है। वह बेझिझक अपने आप को परिवेश के तहत जोड़ लेता है। उसके मन में न तो ज्यादा घबराहट ही है और न बहुत ज्यादा उत्साह। परिवेश की दृष्टि से होटल के बाहर, स्लीपिंग किट, में भी एक उन्मुक्त जीवन व्यापार छिपा हुआ है। उसी तरह अस्पताल के जीवन में घिरती हुयी विरक्ति केवल निरर्थक ही नहीं है बल्कि व्यक्ति के जीवन के सच्चे अर्थ को प्रकट करती है। लेखक का मत है ----"-सामने एक बड़ा बिस्तर था, बिल्कुल समतल और सफेद।

.... वह खाली नहीं था।

चादर से उसका सिर बाहर आया, फिर आंखें। वह उसे देख रही थीं, फिर एक छोटी सी मुस्कराहट उसके होंठों पर सिमट आयी।"[2]

दरअसल भीतर की निपट शांति अस्पतालों के बिस्तर पर और विशेष रूप से उन सिरहाने बैठ जाती है। सारा माहौल ठंडा हो जाता है। जीवनगत आयामों की चर्चा भी वहां बेमानी सी लगती है। कथाकार उन्हीं सुदूर तथ्यों पर इस संकलन में गुथी सारी कहानियों को नये अंदाज और नये तेवर से नये अर्थ और नये संदर्भ प्रदान करता है।

5- बीच बहस में:- बीच बहस में कहानीकार ने क्रमशः पांच कहानियों को

1- वही पृष्ठ 100-101

2- जलती झाड़ी, पृष्ठ 138

संकलित किया है।

वे हैं------'अपने देश वापसी' 'छुट्टियों के बाद' 'वीक एण्ड' 'दो घर' और 'बीच बहस में।' कहानीकार निर्मल वर्मा देश-विदेश की संस्कृति को इन कहानियों के कथ्य में पहचानता हुआ बताना चाहता है कि आवासी और प्रवासी की मनःस्थिति कैसी और क्या होती है। कहानीकार दीर्घकाल तक विदेश में रहता है। उसे इस बात का अहसास है, कि भारत और भारतीय इत्तर देशों की दरिद्रता, गरीब में भी काफी अन्तर है, वह गरीबी नहीं (गरीबी पश्चिम में भी है) बल्कि सुसंस्कृत वर्ग की दरिद्रता।[1]

दरअसल हमारे देश में एक अजीब गरीबी का माहौल है, जिससे सूखे बदहवास चेहरे उपजते चले जाते हैं। कहानीकार का विचित्र अनुभव है जो हर देश की लड़कियां चाहें वह इटली, स्पेन या अपने देश की हो, शाम के झुरमुटे में एक तरह से ही खुलकर खिलखिलाते हुये हंसती है।

इन कहे हुये शब्दों के अर्थ एक ही तरह की अनुभूति विचारणा को प्रकट करते हैं। जिससे हरेक देश के जीवन हिस्सों का जायंजा लिया जा सकता है, और हर शाम चमकीले तारों की दूर-दूर तक फैली हुयी झालर को एक जैसे ही रूप में देखा जा सकता है।

कहानीकार विदेशी दूरस्थ भावनाओं का यदि पुजारी है तो भारत प्रेम का एक अनूठा स्वयं उदाहरण है। वह कहता है, कि मैं जहां उसे छोड़ गया था वहां मेरी उम्र रुक गयी थी विदेश में गुजरा समय जैसे प्लेटफार्म पर गुजरी रात हो।''[2]

'छुट्टियों के बाद' कहानी में स्त्री-पुरुष के सह-सम्बन्ध को बड़े ही बारीक धागों से बना गया है। 'मार्था' पात्र और 'मैं' पात्र का अन्दाज और उसमें जन्मी गुफ्तगू का इस कहानी में बहुत ही स्वाभाविक ढंग से वर्णन मिलता है।

लेखक लिखता है--- मेरे लिये यह उसकी अन्तिम झलक थी, जिसका नाम मार्था था। जब गाड़ी चली, वे दोनों उसी तरह एक दूसरे से लिपटे खड़े थे--प्लेटफार्म के बीचों-बीच।''[3]

दरअसल मार्था अपने सामान के बीच खोई हुयी सी खड़ी रह गयी और लगता है उसकी आंखें कुछ टटोल रही हैं। वह अपने आप को प्लेटफार्म पर होने जैसी स्थिति में नहीं सोच पा रही थी।

उसे कुछ अजीब सा लग कि फासला भी गुजरते समय की तरह देखते-देखते आदमी को अपने में निगला जा सकता है, फिर भी एक झटका सा आदमी को कभी कभार लग जाता है, जो उसे घन घोर सन्नाटे में भी अहसास दिला देता है। संकलन की तीसरी कहानी 'वीक एण्ड' जीवंत परिवेश को लेकर लिखी गयी कहानी है। प्रारंभ में ही कहानीकार कह देता है कि तीन लम्बे पेड़ पिछली रात में हवा झूम रहे थे। अब ठहरे थे, नंगी टहनियों, जैसे काले कार्बन से उतरकर बिल्कुल साफ कागज पर उतर आयी थी--------ये चिनार के पेड़ यह सुबह का भूरा आलोक, उसने सोचा।''[4]

कहानीकार बीते रात और उगते सवेरे के बीच अपनी सोच को जन्म देता है। कभी उसके सामने अंधेरा होता है तो कभी अंधेरे में टटोल कर अतीत के सुख के क्षणों को सिक्कों की तरह खनखनाता है तो कभी चलती फिरती दुहरी का सन्नाटा धूप में चमचमाती पत्तों की सरसराहट

1- बीच बहस में, पृष्ठ 14
2- बीच बहस में, पृष्ठ 9
3- वही, पृष्ठ 32
4- वही, पृष्ठ 35

उसके प्रखर जीवन की कहानी बन जाता है। व्यक्ति को अपनी निगाहें कभी तनाव की जिन्दगी में सिकुड़ती है तो कभी अजनबी चेहरे को टटोलने लगती है यह मनुष्य के जीवन में अद्‌भुत चमत्कार चमकते पत्थर, पत्थरों पर चलती पैरों की छाया के रूप में दिखायी देता रहता है। व्यक्ति स्त्री पुरुष के सहसम्बन्ध की हामी तो भरता है परन्तु उसकी ठिठुरती दुनिया उत्सुकता को एकदम समाप्त करती चलती है स्त्री पुरुष के इस जीवन सम्बन्ध का कहानीकार ने भली भांति निरूपण किया है। वह लिखता है कि उत्सुक लोगों का अन्त बहुत सुख नहीं होता कौन सा अन्त सुखी होता है? उसने मेरी तरफ देखा........और तब मैने एका एक सोचा, कि आज उसे नहीं रोकूंगी।

.... जितना मन करे उतना पीने दूंगी.........प्यार करने के बाद, जब एक साथ बहुत प्यास लगती थी। वह पलंग के किनारे बैठ जाता था और मैं उसकी नंगी पीठ पर अपने होंठ रख देती फिर दिखने लगती, चारों तरफ एक बगल से दूसरी बगल तक। विवाहित होने के बावजूद उसकी देह एकदम कुंवारी जान पड़ती थी सफेद और निरीह।''[1]

'वीक एण्ड' कहानी की नायिका बाहर भीतर अपने दिल में सपने संजोये रखती है उसके जीवन का सस्पर्श यथार्थ जगत का आभास करा देता है उसे लगता है कि जब वह अंधेरे में मेरी देह छुयेगा तब सारा संसार ठिठक जायेगा क्योंकि, वह स्वयं में जादू है, लेकिन मुश्किल तो यह है कि उसके हाथ मेरी देह से दूर हैं। मंजिल तक आते-आते एक दूसरे से दूर ही रह जाते हैं।

वह बार-बार सोचती है कि चारों तरफ एक बड़े फासले से हम मिलते हैं, हम प्यार करते हैं, सर्दियां गुजर जाती हैं फिर गर्मियां भी तहे दिल तक उतर नहीं पाती। आक्रोश में बही नायिका एक दिन यह सोच बैठती है कि वह उससे अब कभी नहीं मिलेगी, अगर वह सड़क पर दिखायी भी देगा तो उसकी तरफ देखूंगी भी नहीं। पीछे मुड़कर भी नहीं, जैसे वह हवा हो और आंखें मूंदकर उसके बीच से गुजर जाये। लेकिन एक पल के बाद जब वह आंखें खोलती तो उसे फिर उसी ओर जाना होता जहां से वह चली थी। विचारों की बदलती करवटों में स्त्री पात्र का यह दृश्य द्वन्द्व उसे अस्थिर बना देता है। तब उसके देह की उत्सुकता में और अधिक पीड़ा उपजती है फिर अनछुये देह पर उसे अविश्वास होने लगता है, और वे उन फासलों में बदल जाते हैं जैसे कि अंधेरे में अलग-अळग लैम्प पोस्ट जल रहे हों और जिन्दगी की शाम की तरह उनकी पहचान उपज आयी हो। कहानीकार 'वीक एण्ड' की नायिका का मन वह बार-बार टटोला है जिसमें समाज के लोगों से उसके मन में भय बना हुआ है।''[2]

'दो घर' कहानी में स्त्री........पुरुष के सम्बन्धों की कहानी न होकर एक अजनबी जीवनगत हलचल की कथा है। लेखक दरअसल बाहरी दुनिया से बहुत अधिक अपने को जोड़ नहीं पाया है, इसलिए वह अपने चेहरे पर एक लावारिस सी हंसी महसूस करता है। वह कहता है......''मुझे उस शहर में रहते सिर्फ कुछ अरसा गुजरा था। पहली बार विदेश में यों भी अकेलापन लटकता है.......फिर से ढलते पतझड़ के दिन थे। घर और बाहर के बीच समूचा शहर एक पीली छाया सा फैला रहता......मैं पीछे मुड़ता, इससे पहले ही आवाज सुनायी दी......जरा सुनिये........आप इण्डियन है।''[3] लेखक के लिये यह प्रश्न परायेपन से कुछ देर के लिये छुटकारा दिलाता है। वह उन अजनबी व्यक्तियों से बेझिझक मिलना चाहते हैं जो शर्म और असमंजस की कोई शिकना

1- बीच बहस में, पृष्ठ 47 2- बीच बहस में, पृष्ठ 51 3- वही पृष्ठ 56-57

नहीं लिये हुये थे। लेखक अहसास करता है कि उनकी आंखें बराबर उन्हें नाप रही हैं, और उसकी मुस्कराहट में एक उदासीन किस्म की गरमी है जो हमारे अपने देश की याद दिलाती है। इस संकलन की लास्ट कहानी 'बीच बहस में' भारतीय सम्बन्धों की कहानी है। हिन्दुस्तान के तिलमिलाते जीवन को कुछ कृत्रिम गन्ध से लपेटकर यहां प्रस्तुत किया है। बूढ़ा आदमी, डा. साहब, मुन्ने पात्र आदि ऐसे पात्र हैं जिनकी भावनाओं का कहानीकार ने तिलमिलाती रोशनी में इजहार किया है।

परिवेश का अनूठा परिमापन यहां पर भी है। बूढ़ें ने फड़फड़ाती आंखों से उसे देखा और कहा......."देखिये.......आपको हम पर शर्म है, उसके आगे? बोलिये। नहीं आप इस तरह नहीं जा सकते.......बहस के बीच में।"[1] यही कहानी का अर्थमूलक मापदण्ड है।

6- कौवे और काला पानी:-

इस संकलन में निर्मल वर्मा की सात कहानियां संकलित हैं। पहली कहानी 'धूप का एक टुकड़ा' एक ऐसी कहानी है जो एक स्त्री के भीतर बैठी हुयी सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक स्त्री अपनी छाया को सर्वत्र पल्लवित होती हुयी देखती चलती है। स्त्री पात्र बेंच के कोने पर बैठकर विवाहोत्सव पर अजीब सी मनोवृत्तियों का आंकलन करती है। वैसे उसके भीतर में न प्रकाश ही है, और न अंधेरा ही। सिर्फ है तो हल्का सा फड़फड़ाता हुआ चिमगादड़ जैसा अतीत जो पंखों के संस्पर्श से ही सारा रास्ता तय करता चलता है। वह कह भी देती है कि वर्षों की गूंज जो अंगों से निकलकर मेरी आत्मा में बस जाती थी अब कही न थी। मैं उसी तरह उसकी देह को टोह रही थी जैसे कुछ लोग पुराने खण्डहरों पर अपने नाम खोजते हैं, जो मुद्दत पहले उन्होंने दीवारों पर लिखे थे।"[2]

वस्तुतः व्यक्ति अपने भीतर एक पूरी दुनिया लेकर आता है, इसलिए जब कभी उसका कुछ छिनता है तो वह अपने बीच खालीपन का अहसास करता है।

धूप का टुकड़ा जहां बैठकर वह स्त्री शाम होने तक जो कुछ हलचलें देखती रहती थी, वे सब उसकी दुखती रगों की सही--सही पहचान थी। उस स्त्री ने वहां बैठकर उन संगीत की आवाजों को सुना था जिनमें अपने पन की खुशबू थी और आज वह उन आवाजों को सुनकर उन बेचारों पर दयाद्र हो उठती है जो आज है कल न रह सकेंगे। इसलिए वह कहती है कि धूप का टुकड़ा किस बेंच पर है--उसी पर जाकर बैठ जाती है.........एक तो इस पर पत्ते नहीं झरते और दूसरे.......अरे, आज जा रहे हैं।"[3]

दूसरी दुनिया कहानी में लेखक और एक लड़की की उस पहचान को उरेहा गया है जिसमें उगती हुयी फुनगियां हैं और सुलगती हुयी आग है। कथाकार दुनिया के तमाम अजूबों को मन मस्तिष्क की दुनिया में हाल बेहाल हो कर जान लेना चाहता है जो बहुत से विशाल और बहुत से गहरी अनुभूतियों से जुड़ी हुयी है। मिसेज टामस से अदृश्य भावों पर विचार करता हुआ वह कह ही देता है कि यह खेल नहीं था वह एक पूरी दुनिया थी। उस दुनिया से मेरा कोई वास्ता नहीं

1- बीच बहस में, पृष्ठ 124
2- कौवे और काला पानी, पृष्ठ 15
3- कौवे और काला पानी, पृष्ठ 17

था.......हालांकि मैं कभी-कभी उसमें बुला लिया जाता था.......मुझे हमेशा तैयार रहना पड़ता था, क्योंकि वह मुझे किसी भी समय बुला सकती थी।''[1]

कहानीकार ने यह साफ तौर पर कह देना चाहा है कि जो चीजें बहुत साफ सी और धूप में चमकती हुयी लगती हैं उनके अन्तर में भी बहुत सी गहरी दरारें भी होती हैं जिनको देखकर आदमी सकपका सकता है और अपने खाली हाथों को मसल सकता है। जिन्दगी की यह खोखली प्राणधारा झूलती तो चली जाती है, लेकिन अपने धुधलकों प्रतिबिम्बों को इतिहास के पृष्ठ बनाती जाती है 'जिन्दगी यहां और वहां' कहानी में परिवेशता सहजता और जीवन्तता का बहुत बड़ा हिस्सा गुंथा हुआ है। इसी आधार पर सार मानवीय विश्वास के आधार को बड़े ही तीखे रूप में फिसलता हुआ पाया गया है इस कहानी का स्थल हिन्दुस्तान का दिल्ली प्रभाग ही है। जिसमें कथाकार ने चलती फिरती रंग बिरंगी दुनिया को केंचुली बदलते हुये भली भांति देखा है। देखिये.......'एक चलती.......फिरती दुनिया- जिसके सदस्य एक दूसरे को नहीं जानते- फिर भी हमेशा एक दूसरे से मिलते हैं अंधेरे हाल में एक साथ ताली बजाते हैं- एक दूसरे को जानते नहीं, छूते नहीं तमाशा खत्म होते ही अपने-अपने कोने में खो जाते हैं।'[2]

कहानीकार कह देना चाहता है कि मौसमी परिन्दों की तरह सीजन बदलने पर अपने-अपने घोंसलों में छुप जाते हैं और फिर अंधेरी गलियों में आकर एक साथ ही भीड़ में जमा हो जाते हैं। इस प्रकर ठंडे अंधेरे गलियारे इन परिन्दों के छिपने के बहुत अच्छे स्थान हैं। स्त्री पुरुष के पहचान सम्बन्धों की यह अनूठी कहानी है एक वह स्त्री जो पढ़ाई लिखाई में व्यस्त लाइब्रेरी के मध्य ही दृष्टिगत होती है दूसरी वह पुरुष हर दृष्टि की छुअन में अपनी अनिवार्यता को पा लेना चाहता है उसका नाम फैटी है।

कनाट प्लेस के अंधेरे कोरीडोर में चलते हुये उसे अजीब सा सुख हुआ। वह कहती......"है सुख? क्या कोई ऐसी चीज है, जिस पर उंगली रखकर कहा जा सके, यह सुख है, यह तृप्ति है।''[3]

उसके लिये लाइब्रेरी से घर और घर से लाइब्रेरी एक छोटी सी दुनिया थी लेकिन वह बाहर की दुनिया को कनाट प्लेस और उसके चारों और की दुनिया थी उसे एक बार ही में जिया जा सकता है। 'सुबह की सैर' कहानी निहाल चंद्र और उससे जुड़े हुये तमाम परिवेश की कहानी है जिसमें धुंधलका है, फिर भी यत्र तंत्र बिखरे हुए सपाट पत्थर दृष्टिगत होते हैं। निहाल चंद्र उन सपाट पत्थरों अर्थात धोबी घाट पर बार-बार विचार करते हैं। उन्हें एक अजीब सा भ्रम होता है कि कहीं न कहीं यह सब कुछ उनकी उम्र के साथ उनके हाथ की छड़ी में और हाथ में पकड़े थैलों में हल्के सरसराहट के साथ प्रवेश किया जाता है। उन्हें 'सुबह की सैर' शायद इसलिये बहुत कुछ अजूबा ही अजूबा दिखायी देता है। कहानीकार ने कहा है कि एक दिन सैर करते-करते यहां आ भटके और आंख उठाते ही हवा से हवाघर उतर आया। सफेद सीढ़ियां, झालरदार झरोखे, बड़ी-बड़ी आंखों से रोशनदान----किन्तु जो चीज निहालचंद्र को हमेशा अचम्भे डाल देती थी वह था नीला गुम्बद।'[4] निहाल चंद्र उस गुम्बद को निहारते रहते और एक लम्बी सांस खींचकर आह के साथ विचारों की करवट बदलते। उनके मन मस्तिष्क पर हवा फुरफुरा जाती और करनल निहाल चंद्र की दबी भूख को उरेह जाती।

1- वही, पृष्ठ 25 2- वही, पृष्ठ 48 3- कौवे और काला पानी, पृष्ठ 51
4- वही, पृष्ठ 73

निहाल चंद्र की मानसिकता का बहुत ही निरीह वर्णन कहानीकार ने यहां किया है। 'आदमी और लड़की' कहानी में वर्मा जी ने जिंदगी के उन आयामों को रूप दिया है, जिनमें व्यक्ति जिजिविषा के सहारे सब कुछ झेलता रहता है।

बाजार और वहां की व्यवस्था का जिक्र करते हुए लेखक ने लड़की और उस बूढ़े आदमी के भीतरी संसार को अदृश्य भाव से निरूपित किया है। व्यक्ति सही गलत प्रतिबिम्बों के सहारे हर जगह अपना संसार बसाता चलता है। उस बूढ़े आदमी की मनःस्थिति कुछ ऐसी है------'कुछ खाओगे? लड़की ने पूछा आदमी ने सिर हिलाया 'फिर सीधा होकर बैठ गया..................वह सो गया था-----सपने की एक चिन्दी अब भी डोल रही थी, धीरे-धीरे वह गायब हो गयी और उसकी जगह लड़का दिखायी देने लगी।'[1]

लड़की और आदमी के मध्य सहानुभूतिपरक रिश्ता है। एक-दूसरे की चिन्ताओं को ढापने का एक अंदाज है, एक दूसरे के बीच जिन्दगी को सही संदर्भों में समझने का तरीका है। कहानीकार ने सारे परिवेश के साथ उमड़ती घुमड़ती मनोकामनाओं को इस कहानी में स्थान दिया है। कौवा और काला पानी हिन्दुस्तान के छोटे कस्बाई शहर की कहानी है जिसके पात्र 'मास्टर साहब' इस छोटे उपेक्षित पहाड़ी कस्बे से जुड़े हुए हैं। एक अध्यापक की मनोवृत्ति का कहानीकार ने गहराई से परिमापन किया है। एक अध्यापक की कस्बाई मनोवृत्ति अर्थतन्त्र की दृष्टि से हो ही क्या सकती है, इस तथ्य से कथाकार सुपरिचित है।'....................मास्टर जी की जर्जर कोठी और धुंधुआती रोशनी से मुझे अपने घर के लोग किसी दूसरे ग्रह के प्राणी जान पड़ते थे।

विश्वास करना असम्भव था कि अभी 12 घंटे पहले मैं उनके साथ था............।''[2]

लेखक को स्कूल, मैदान, बाजार सभी कुछ मास्टर जी की मनोवृत्ति की छाया के ही पर्याय जाने पड़े उसे अहसास होता है कि बाजार के नाम पर कुछ भिनभिनाते ढाबे हैं और कुछ धुंधुआते शोर के साथ व्यक्तियों के कुछेक चलते-फिरते सांचे हैं। पहाड़ियों की तुली जिन्दगी पर कथाकार का ध्यान गया है।

यह कहानी यथार्थ जगत की कहानी, जिसमें एक धड़कता हुआ दिल सींखचे की रोशनी की टिमटिमाहट लिये हुए है। इस संकलन की आखिरी कहानी 'एक दिन का मेहमान' समकालीन जीवन के मध्यवर्गीय चरित्र का अनूठा उदाहरण है, जिसमें कहानीकार ने एक ऐसी गूंज का अनुभव किया है, जो भीतर तक ठहर जाती है और संवेदना को उरेहती रहती है।

1- कौवे और काला पानी, पृष्ठ 94

2- वही, पृष्ठ 119

तृतीय अध्याय

::-:: (तृतीय अध्याय) ::-::

निर्मल वर्मा के कथ्य में साम्प्रतिक संदर्भ

निर्मल ने जीवनतम चिन्तन के विषय में बहुत कुछ लिखा है। उन्होंने कथा साहित्य की आत्मा को नये ढंग से परिभाषित करते हुए कथ्यगत बदलाव पर अधिक ध्यान से सोचा है। साहित्यगत जितना भी स्वरूप गतिमान रहा है उसका निर्वाह करते हुए उन्होंने उपेक्षित कारुणिक दुखी चरित्रों को यथार्थ के धरातल पर बहुत अधिक उभारा है। सम्पूर्ण कथायात्रा में व्यक्तिगत अभावों की प्रतिक्रिया के कारण मन में उठते उन भावों का सूक्ष्म विश्लेषण किया गया है जिनके मूल में सहज कामनायें हैं, निःसंकोच विश्लेषण है, तथा वातावरण का पूरा प्रभाव है। कथाकार का लक्ष्य वैयक्तिक अनुभवों द्वारा मानव भावों का चित्रण है। उनके कथा साहित्य में एक ओर यथार्थवादिता की महत्वपूर्ण कड़ियां हैं तो दूसरी ओर जीवनगत मनोवैज्ञानिकता के सर्वश्रेष्ठ उदाहरण हैं। यद्यपि उनका कथ्य साहित्य व्यक्तिवादी एवं आत्मकेन्द्रित अहंवादी अधिक हो गया है, इसलिए सभी कथानक अहंविद्रोह और विश्लेषणगत विशिष्टताओं को समेटे हुए है जिनको साम्प्रतिकता के परिप्रेक्ष्य में निम्न संकेतों के माध्यम से विवरण दिया जा सकता है।

(क) आधुनिक परिवेश-मूल्यहीनता की स्थितिः-

इस स्थिति विशेष का महत्व मनुष्य के काल चिन्तन से जुड़ा हुआ है। वस्तुतः आधुनिकता की आज तक जिस प्रकार की चर्चायें अब तक कहती रही हैं उनमें इस प्रश्न को प्रमुखतः परिवेश के साथ जोड़ा गया है। कुछ लेखक परिवेश को वर्तमान की सीमा तक ही स्वीकार करते हैं। इनकी दृष्टि में परिवेश का मूल अर्थ यह है 'आधुनिकता की प्रकृति सूक्ष्म' है। उसकी कोई स्थूल पूर्व निश्चित और अपरिवर्तनीय दिशा नहीं है, जिसे व्यापक ऐतिहासिकता दृष्टि से खोजा जा सके बल्कि हम कह सकते हैं कि आधुनिकता मूलतः एक खण्डित घटना है जो परिवेशगत है।[1] परिवेश क्या है? क्या वह मात्र देशकाल है? यदि ऐसा है तब परिवेश वर्तमान के नये अर्थ से जुड़ जाता है। वस्तुतः परिवेश कालगत सातत्य के समान्तर गतिशील मानवीय विकास की सांस्कृतिक प्रक्रिया के अणुओं से संगठित होता है, उसका विस्तार मानवीय चेतना का अतिक्रमण किया करता है किन्तु मनुष्य उसको अपनी चेतना के अनुरूप खण्डित रूप में ही ग्रहण करने के लिए बाध्य है। निर्मल के सभी उपन्यास औरं कहानियां ऐसे ही देशकाल पर परिवर्तनशील सम्बन्धों में निरूपित हैं। "वे दिन" उपन्यास में आधुनिक परिवेश और मूल्यहीनता की स्थिति पर उपन्यासकार ने प्रकाश डाला है। पात्र सिगरेटों की तस्करी परिवेश के सापेक्ष होकर कह देना चाहता है। लन्दन में अभी कुछ दिन पहले मेरे मित्र ने कुछ पैकेट भेजे थे--------------------- पिछले दिनों में मैं उन्हें ब्लैक में बेचने का विचार कर रहा था। ....मैंने

1- आधुनिकता के पहलू, पृष्ठ 19

मन ही मन वादा किया। क्या कर रहे हो आजकल? कुछ नहीं मैं खाली हूं।[1] उपन्यासकार व्यक्ति की चेतना को अमूल्यन की स्थिति में छू ही लेता है। सच तो यह है कि खालीपन का परिवेश सापेक्षता से अर्जित और संगठित करना चाहता है। भले ही उसकी ऊपरी आंखें सबकी निगाहों में हंसती हों और निचले होंठ अजीब सी बड़बड़ाहट रखतें हों परन्तु असल में परिवेश में सापेक्षभाव कैंची से काटकर उसके चेहरे पर चस्पा कर दिये हैं जहां न संवेदना है और न जीवनगत परम्परा की सुदूर दृष्टि। तभी तो कहा जाता है कि परिवेश एक यथार्थ दृष्टि का नाम है।

परिवेश मूलतः देशकाल की परिवर्तनशीलता से मानव सम्बन्धों की गतिशीलता को ही रेखांकित करता है। किसी भी दृष्टि या बोध का विस्फोट उसमें सदैव बना रहता है। परिवेश का दबाव ही भावनाओं को पिचकाकर एक दृष्टि या बोध के रूप में संगठित या विकसित करता चलता है इसलिए अतीत कैसे स्वयं में आधुनिकता का मापदण्ड नहीं हो सकता। 'एक चिथड़ा सुख' उपन्यास की बिट्टी अतीत गति ख्यालों में रुग्ण मानसिकता को ढोकर बहुत ही हताश हो चुकी है इसलिए वर्तमान परिवेश में भी भाववृत्ति के नाम पर उसे एक अजीब सा विस्मय ही पकड़ने को मिलता है। वह कभी दूसरों को घूरते हुए भी अपने को नहीं भुला पाती है। यह व्यक्ति के मानसिक मूल्यहीनता के नये संदर्भ को प्रकट करने वाली प्रक्रिया है।

लिखा गया है............'वह हंसने लगी.............अजीब सी हंसी जिसका न उससे, न इलाहाबाद से, न उसके बुखार से ताल्लुक था। फिर वह अचानक उसके पास आकर बैठ गयी, दोनों हाथों से उसके गालों को समेट लिया।'[2] वर्तमान की संवेदनात्मक दृष्टि में अतीत की उपलब्धियों और वर्तमान की मूल्यहीनता की स्थिति में अतीत और वर्तमान एक-दूसरे के समर्थ ही नहीं बल्कि पूरक भी हैं। जिस प्रकार परिवेश सापेक्ष वर्तमान परम्परा परछाये अवधि के छाये कुहासे को हटाकर उसमें अपनी स्वचेतना से प्राण प्रतिष्ठा करता है उसी प्रकार अतीत वर्तमान की संवेदनात्मक दृष्टि को वह बिन्दु देता है जहां से उसे अपनी आधुनिकता की यात्रा शुरू करनी है।

आधुनिक दृष्टि के मायनों में आज के परिवेश के अनुरूप ही है। 'परिन्दे' में संकलित कहानी 'डायरी का खेल' में यथार्थ परिवेश को बहुत ही पारदर्शी में गूंथा गया है। बिट्टो के सहज व्यवहार की सार्थकता पर कहानीकार को परिवेश के अंकुर ही उगते दीख पड़ते हैं। जब शाम को बिट्टो छत पर टहलने नहीं आयी तब उसे देखने उसका अपना प्रतिवेशी पहुंचता है।

कहता है चाची कहां है?

तुम्हारी भोजाई के संग मेरे लिए लड़का देखने गई हैं।

बड़ी निर्लज्ज है बिट्टो...........मैं झेंप सा गया। तो फिर तुम्हारा विवाह होगा............................

हां, फिर मेरा विवाह होगा, और तुम यहीं बैठे सब कुछ देखोगे।''[3]

परिवेश आज वैज्ञानिक स्वस्थ चेतना बन चुका है जिसके कारण हम यथार्थ पर अधिक भरोसा करने लगे। आधुनिकता एक संवेदना है जो समसामयिक आदमी के दुख दर्द को जुड़ने में उपजती है। वह सोच की एक ऐसी प्रक्रिया कही जा सकती है जो आदमी को उसकी विवशताओं से उबारने के उपाय सोचती है। वह स्वाधीनता पर नये-नये बंदिशों को दूर करने का संकल्प लेती

1- वे दिन, पृष्ठ 14
2- एक चिथड़ा सुख, पृष्ठ 22
3- परिन्दे, पृष्ठ 19

है। यह भी कह सकते हैं कि परिवेशगत आधुनिकता आदमी को न तो अकेले रहने देती है और न सबसे मिलजुल कर। निर्मल के उपन्यास 'लाल टीन की छत' में इस दृष्टि के बहुत सारी जीवनगत आयाम काया के इर्द-गिर्द भंवर की तरह चक्कर काट रहे हैं।

जैसे...........'बड़ी उम्र में सुख को पहचाना जा सकता है.........छोटी उम्र का दुख जाता है.........जिस उम्र में काया थी, वहां पीड़ा को लांघकर सुख का घेरा शुरू हो जाता था, या खुद एक तरह का सुख पीड़ा में बदल जाता था।..........यह जानना असम्भव था।'[1]

काया की मनःस्थिति परिवेश की मूल्यहीनता से कभी-कभी ऐसी दुखती रग बन जाती थी जिससे उसके जीवन के सारे रास्ते सिकुड़ जाते थे और लगता था कि परिवेश की सारी मिट्टी सरक कर उसके पैरों के नीचे आ गयी है जिससे वह पांव रखते ही दलदल में फंसती जाती है। यह सब आज के परिवेशगत सोच का परिणाम है। काया को वे रातें और वे दिन याद आने लगते हैं जब उसके बाबू जी बड़ी आतुरता से उसे निजात वृद्ध कर लेते हैं। आज तो उसके जीवन के सामने एक निरीह पगडंडी सी रह गयी है जिसे चाहो तो निरीह सुख कह सकते हैं लेकिन उतना सब कुछ नहीं।

परिवेश की मूल्यहीनता पर विचार करते हुए हमें जीवन पद्धति के केंद्र पर दृष्टि गड़ानी पड़ती है। व्यक्ति आज अतीत मूलक ऋण के बोझ को उतार फेंक देना चाहता है इसीलिए वह वर्तमान के लिए परिवेश के हर क्षण को प्रासंगिक होने देता है। अतीत की उपलब्धियों के आधार पर कभी-कभी हम वर्तमान परिवेश एक खूंटी पर टांग देते हैं और इतने अधिक उदात्तवादी बन जाते हैं कि वर्तमान के जायके में जायका न मानकर कुछ उलटे सीधे सूत्र उस खूंटी से बंधे अतीत से जोड़कर गले का फंदा बना लिया करते हैं और फि जब आदमी अतीत में आकंठ डूबकर झूमता है तो नये आत्महनन का दरवाजा ही खुला दिखायी देता है। आधुनिकता का जटिल और गतिशील यदि कोई घटक तत्व है तो परिवेश भी है, फिर ऐसे परिवेश में फंसा हुआ हर आदमी मानव मूल्यों की प्रासंगिकता पर शंका करने लगता है और सही भी है आज जीवन की गरिमा को प्रस्तावित करने वाले मानवीय अर्थ संदर्भ धीरे-धीरे चुकने लगे तथा जनमानस में निरर्थकता का उदय होने लगा है। निर्मल ने इस प्रक्रिया के रूप में कुठां, खीझ, आक्रोश की अभिव्यक्ति अपनी कहानियों में खासतौर से प्रस्तुत की है। 'बीच बहस में' की कहानी 'वीक एण्ड' में पात्रगत मनःस्थिति का जितना अधिक विश्लेषण किया गया है, उतना ही उसमें मूल्यहीनता की सीमा पर बहुत बार सोचा गया है। जैसे.........कभी............कभी ऐसा होता है, कि आदमी जीता हुआ भी करीब....करीब मरने की सीमा तक पहुंच जाता है..........मरता नहीं है, लेकिन मरते हुए प्राणी की तरह सारी जिन्दगी घूम जाती है।''[2]

अपने पिता के साथ हंसती हुयी वह स्त्री पात्र जिसके चेहरे पर परिवेश की पूरी छाया है वह परिवेशगत चिन्तन पर अपने सोच का इजहार करते हुए कहती है मुझे एक चीज पता चली.....................दुख ही ऐसी चीज है जो अलग-अलग बंटकर छोटा नहीं होता बड़ा भी नहीं होता सिर्फ चमकीला और साफ हो जाता है। इन शब्दों में परिवेशगत खाली अन्तरालों के नये संदर्भ को टटोला गया है। निरर्थकता भी आज के आधुनिकता के घटकों में एक नियति बन गयी

1- लाल टीन की छत, पृष्ठ 116

2- बीच बहस में, पृष्ठ 50

है। यही कारण है कि व्यक्ति के आधुनिक या आधुनिक होने का सम्बन्ध इस बात से है कि व्यक्ति निरर्थकता को किस मनःस्थिति से ग्रहण करता है तो वह निश्चित रूप से उसकी जीवन ऊर्जा को सोखने वाली होगी। वह व्यक्ति का कार्य क्षमता पर ही नहीं बल्कि उसकी मानसिकता पर भी ऋणात्मक प्रभाव डालेगी किन्तु यदि उसकी निरर्थकता बोध उसे जीवन के प्रति संवेदनशील बनाता है तो उसे उसकी आधुनिक मानसिकता का प्रतीक ही कहा जायेगा। यह वह बिन्दु है जहां जीने मरने का भ्रम भी आदमियों को होता रहता है। 'खूनी दहलीज' कहानी में शम्मी भाई के मूल्य चेतना के उन स्रोतों पर विश्वास करती है, जिसका सम्बन्ध परिवेश से जुड़ा हुआ है। इसी कहानी का पात्र जैली शम्मी भाई के सह सम्बन्धों में अपने पराये के अन्तर को भी विस्मृत कर जाता है। कहानीकार कहता है कि शम्मी भाई जब अपने हास्टल की बातें बताते हैं, तो वह और जैली विस्मय और कौतूहल से टुकर-टुकर उनके चेहरे, उनके हिलते हुए होठों को निहारती है। जान-पहचान इतनी पुरानी है कि अपने-पराये का अन्तर कभी उनके बीच आया हो तो याद नहीं पड़ता।[1]

निरर्थकता की सकारात्मक अनुभूति इस प्रकार की कहानियों में अधिकांश मिलती है। परिवेशगत मूल्य चेतना आज अर्थहीन भले लगे लेकिन यह सही है कि मूल्यों का सही प्रयोग आज के अनुरूप ही हो रहा है, फिर चाहे उसे भले हम नैतिक कहें या अनैतिक।

परिवेशगत निर्वैयक्तिक दृष्टि का भी कथाकार ने जगह-जगह मूल्यवादी प्रतिमानों पर विचार किया है। यूरोप की अर्थहीनता उन वृहत्तर मूल्यों की तलाश में ऋण पाती है, जो भोग की अंधी दौड़ में उसके हाथ से निकल गये थे।

यूरोप में कार्य बहुलता के कारण जीवन में अर्थहीनता का समावेश हुआ है जिनके कारण उनके परिवेश में संवेदनशील भावों की कमी आ गयी। यथार्थ का ग्रहण मूलतः परिवेशगत होता है अतः उससे सम्प्रक्त किये बिना सृजनात्मक अनुभूति के आधार फलक पर परिवेश का कितना योग है यह बातें 'कौवा और काला पानी' के मध्य संकलित कहानियों में जगह-जगह है। 'जिन्दगी यहां और वहां' कहानी का पात्र इस ओर फैटी ने ने परिवेशगत यथार्थ का सीधा अनुभव किया है। इरा क्या बात है? वह बीच सड़क पर ठिठक गयी........वह चली गयी..............सिर पर बंधा एक स्कार्फ स्लेटी रंग का कुर्ता, माथे पर काली बिन्दी---------वह अपने भीतर की धड़कनों को समेट लेती है, जैसे कोई तैराक कूदने से पहले अपनी देह को बटोर लेता है-----वह क्षण है, उसने सोचा यह मौका है, मैं अभी नहीं कूदी तो जिन्दगी भर किनारे पर खड़ी रहूंगी,----'फैटी'[2] इन शब्दों की अर्थवेत्ता परिवेश सापेक्ष सड़क की ठिठकन से जुड़ी हुयी है। व्यक्ति अपने हतप्रभ मन से भी परिवेश के सहारे निर्णय ले बैठता है। उसके मन की परतों में दायें-बायें कुछ चमकती आशायें जुड़ी होती हैं जो उसकी जिन्दगी का असली हिस्सा बन जाती हैं। एक ही झटके में वह तार-तार सभी अरमानों को कर देता है। फिर दूसरे ही क्षण उस किये हुए पर प्रायश्चित भी करता है। यह एक अजीब सी बात है कि परिवेशगत यथार्थता व्यक्ति को भावहीन बना दिया करते हैं। इसे स्वचेतना का ऊंघता हुआ स्वरूप भी कहा जा सकता है। आधुनिकता के निकटवर्ती सम्बन्ध समसामयिक परिवेश से ही जुड़े हुए हैं। जब व्यक्ति और परिवेश के अन्तर्विरोध के फलस्वरूप हमें कुछ विद्रोही स्वर सुनायी पड़ते हैं तब वह विद्रोह मूल्यवादी चेतनाओं के सापेक्ष गिरता उभरता

1- मेरी प्रिय कहानियां, पृष्ठ 13

2- कौवे और काला पानी, पृष्ठ 66

प्रतीत होता है। हम परिवेश को अभी विन्यस्त भी नहीं कर पाते और आधुनिकता के स्तरों का पग-पग पर अनुभव करने लगते हैं। डा. विद्यानिवास मिश्र ने कहा भी है------------'आधुनिक संवेदना व्यर्थता की चुभन देती रहती है। परम्परा व्यर्थता को महत्तर अर्थ की भूमिका बनाती रहती है। सधती मुझसे दोनों नहीं, न परम्परा न आधुनिकता, विभक्त आत्मा ही बना रहता है। पर दोनों के बीच जीने के लिए आकुलता शालती रहती है।'[1] परिवेशगत ऐसी शालती यथार्थवादी आधुनिकता के पंख जगह-जगह निर्मल की कहानियों में फड़फड़ाये हैं। इस फड़फड़ाहट में परिवेश का कितना बड़ा प्रयोगधर्म है जिसे 'अमालिया' कहानी में स्पष्ट किया गया है।

................'हम आसान वाक्यों के अलावा कभी-कभी इशारों से भी बातचीत कर लेते थे, लेकिन कुछ देर बात हम ऊब जाते, क्योंकि शब्द और इशारों के बीच फैले शून्य को भरने के लिए जो अपनापन जरूरी होता है, वह हम में नहीं था।'[2] शून्यता को पाटने का मूल आधार परिवेश ही है। व्यक्ति के बीच क्रियाशीलता परिवेश से गुंथी हुयी होती है। इस कहानी में एक जगह तो यहां तक कहा गया है कि एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति से तब तक बात नहीं करता है जब तक तीसरा व्यक्ति उनके बीच न हो। इस प्रकार तीसरा व्यक्ति देशकाल वातावरण का अगुअन होता है। वह दोनों के मध्य परिवेश सापेक्ष प्रासंगिकता का इजहार करता चलता है, इसीलिए प्रश्न, संदेह, मंथन, विश्लेषण आदि सब कुछ परिवेशगामी होते हैं, जिनसे हम चाहकर भी दूर नहीं भाग सकते। जिस अनुपात में साहित्य अपने परिवेश से जुड़ा रहता है उसी अनुपात में उसकी आधुनिकता भी असंदिग्ध होती है। जीवन साहित्य और आधुनिकता का यह त्रिकोणात्मक सम्बन्ध परिवेश से ही बंधा हुआ है। कथाकार निर्मल वर्मा ने यूरोपीय परिवेशगत स्वचेतनाओं को कहानियों का कथ्य बनाया है। प्रतिगामी वस्तुपरक चेतना के मंथन से परिवेश का जीवंत संवाद इन कहानियों में स्थान-स्थान पर है। देशकाल के दायित्व के साथ-साथ उस क्षण की गहरी तीव्रानुभूति की ग्राह्यता जो परिस्थितियों से गुजरती है; उपजती है, का समावेश कहानीकार ने मानसिकता की उत्तेजक स्थिति में किया है। छोटे बड़े जीवनगत आयाम हर जगह और हरेक के साथ परिवेश से ही सटे हुए हैं।

प्रतीकात्मक परिवेश का यह अनूठा उदाहरण विचारणीय है..........'चारों ओर दूर-दूर तक भूरी-सूखी मिट्टी के ऊंचे-नीचे टीलों और दूहों के बीच झाड़ियां थीं, छोटी-छोटी चट्टानों के बीच सूखी घास उग आयी थी, सड़ते हुए पीले पत्ते से एक अजीब, नशीली सी, बोझिल, कसैली गंध आ रही था, मैली तहों पर बिखरी-बिखरी सी हवा थी।'[3] रूनी और शम्मी भाई के लिये सारा परिवेश आंखों पर छितराया हुआ है। बेर की सूखी मटियाली झाड़ियां चलते जीवन के ठिठकने और धुंधलके के कुहासे में गढ़ने के परिचायक हैं। हिलती-डुलती खामोश छायायें उनका भूला हुआ स्वप्न हैं, ऊबड़खाबड़ जमीन जीवनगत उतार-चढ़ावों की स्थितियां लपेटे हुए हैं। वे पात्र फिसलते-फिसलते अपने ही कोमल कठोर अनुभवों में ढहते चले जाते हैं। उनके इर्द-गिर्द भावनाओं की गहरी संवेदनाएं चुक गयी हैं। वस्तुतः परिवेश में सापेक्ष जीवन की सार्थकता जहां एक ओर जुड़ी होती है वहीं दूसरी ओर उभरे हुए भावनाओं के ऐसे दूहे होते हैं जिन्हें बहुत देर तक अंतरंग का अविभाज्य मान लिया जाता है। मूल्यहीनता की यंत्रणा में आत्म साक्षात्कार की

1- धर्मयुग, नवम्बर 1977

2- पिछली गर्मियों में, पृष्ठ 71

3- जलती झाड़ी, पृष्ठ 92

सर्जना अवश्य होती है। निरर्थकता का बोध एक यंत्रणा ही है, ठीक उसी प्रकार जैसे आधुनिकता का ग्रहण एक वेदना है। वह इस बात का प्रतीक नहीं कि व्यक्ति के पास कोई कार्य नहीं है और वह निठल्ला होकर जीवन की मूल्यंहीनता को झेल रहा है।

मूल्यहीनता का बोध का मूल कारण यही है कि व्यक्ति परिवेश के दबाव, घटनाओं के जाल तथा अस्तित्व की सुरक्षा में उलझते हुए जब अपने जीवन में किसी वृहत्तर अर्थ की तलाश करता है तो उसे निराश होना पड़ता है। वह पाता है कि व्यस्तता की अंधी दौड़ में भी उसके जीवन में कोई ऐसा मूल्य शेष नहीं रह गया जिसके लिए वह अपने प्राणों से प्रतिष्ठा कर सके। व्यक्ति आज स्वाधीन मूल्यों में भलीभांति गुंथ गया है। उसके जीवन की धुरी आत्मकेंद्रित मूल्य चेतना पर टिकी हुयी है कि वह आज उत्तेजित दिग्भ्रांतियों में खुद को फंसा हुआ महसूसता है। यह कचोटन उसे विस्मृत जरूर कर देती है परन्तु वह अपनी छाया को ही दूसरा साथी मानकर मूल्यहीनता का बोध का मूल कारण यही है कि व्यक्ति परिवेश के दबाव, घटनाओं के जाल तथा अस्तित्व की सुरक्षा में उलझते हुए जब अपने जीवन में किसी वृहत्तर अर्थ की तलाश करता है तो उसे निराश होना पड़ता है। वह पाता है कि व्यस्तता की अंधी दौड़ में भी उसके जीवन में कोई ऐसा मूल्य शेष नहीं रह गया है जिसके लिए वह अपने प्राणों से प्रतिष्ठा कर सके। व्यक्ति आज स्वाधीन मूल्यों में भलीभांति गुंथ गया है। उसके जीवन की धुरी आत्मकेन्द्रित मूल्य चेतना पर टिकी हुयी है कि वह आज उत्तेजित दिग्भ्रांतियों में खुद को फंसा हुआ महसूसता है। यह कचोटन उसे विस्मृत जरूर कर देती है परन्तु वह अपनी छाया को ही दूसरा साथी मानकर उत्तरोत्तर परिवेश से हाथ मिलाकर चलता है। इस प्रकार की चेतना परिवेश में गुंथी हुयी दृष्टिगत होती है। काल सापेक्ष जितना भी आलोक होता है, वह सब उसके मन पर, चेहरे पर एकबारगी उतर आता है, 'उनके कमरे' कहानी में लड़के के हल्के से सुर्ख चेहरे को देखकर कहा गया है कि...........'वह उन लोगों में से साथ जो ठीक समय पर बातें नहीं कर पाते।'[1]

आधुनिकता के घटक तत्वों में स्वचेतना परक परिवेश के दबावों का यह निर्मम साक्षात्कार है। व्यक्ति सब कुछ जानता हुआ भी वक्त के तकाजे की गिरफ्त में आकर धीरे-धीरे सब कुछ अलग-अलग करता चलता है। परिणामस्वरूप मूल्यहीनता की नये संदर्भ में तलाश शुरू हो जाती है जो पीढ़ी दर पीढ़ी एक दूसरे को संक्रमित करती है। वर्तमान युग में व्यक्ति का अपने परिवेश में इस प्रकार का सीधा संघर्ष है। आज मनुष्य परिवेश के दबाव से अकेला पड़ गया है, फिर वह तो परिस्थितियों के सामने समर्पण करे या फिर निर्मल साक्षात्कार करता हुआ सब कुछ झेलता रहे।

1- पिछली गर्मियों में, पृष्ठ 62

(ख) पारिवारिक और सामाजिक मूल्यों में बदलाव:-

पारिवारिक मानव समाज की प्राचीनतम एवं महत्वपूर्ण संस्था है परिवार सामाजिक जीवन की प्रारम्भिक इकाई है। परिवार के क्रमिक विकास के लिए सामाजिक सम्बन्धों का विकास होता है, परिवार के साथ समाज में अत्यंत सुन्दर सामाजिक विश्वासों, रीति-रिवाजों, विचारों, संस्थाओं का विकास हुआ आपसी हितों की रक्षा के लिए परिवार परस्पर अनुपूरक हैं, भारतीय परिवार की महत्ता पर यह दृष्टि बहुत कुछ कामयाब है परन्तु यूरोपीय समाज संरचना में संयुक्त परिवार जैसी कोई बुनियाद रूपरेखा नहीं है। वहां मौलिक रूप से व्यक्तिशः बिखराव है, वहां सामाजिक सम्बन्धों के मोहपाश से वे सभी विमुक्त हैं। वहां के स्त्री-पुरुष सम्बन्ध भी सामाजिक कर्म न बनकर अपने-आवश्यकताओं की पूर्ति का साधन बन गया है। पारिवारिक सम्बन्धों में यह परिवर्तन बहुत कुछ निजी अनिवार्यता का बोध करता है। आज इस प्रकार की यथार्तवादी प्रवृत्ति का बहुत कुछ प्रभाव भारतीय जनमानस पर भी दृष्टिगत होता है। मि. के. ए. एनं. शास्त्री ने भारतीय समाज सापेक्ष बदलाव पर प्रकाश डालते हुए इस प्रवृत्ति की ओर संकेत किया- "The joint family system remained unimparied till the end of nineteenth century when the ideds of individualism began of affect IndiaSociety in general."[1]

स्वातंत्र्योत्तर परिवार में विघटन वाह्य कम है आंतरिक अधिक है। दृश्य रूप में कम है और अनुभूति सत्य अधिक है। यह विघटन घटना मूलक एवं सपाट न होकर सूक्ष्य एवं जटिल है। वस्तुतः यह आज की संरचना का परिणाम है। फलतः मान्यताओं, मूल्यों एवं भावनाओं में बिखराव आया है जो अनेक नयी समस्याओं को जन्म दे रहा है। भारत में हम विघटन का मुख्य कारण जनतांत्रिक शासन प्रणाली और पूंजीवादी अर्थव्यवस्था के मुव्यक्ति का अपने परिवेश में इस प्रकार का सीधा संघर्ष है। आज मनुष्य परिवेश के दबाव से अकेला पड़ गया है परन्तु मनुष्य अपने आधुनिक युग को समझते हुए फिर वह तो परिस्थितियों के सामने समर्पण करे या फिर निर्भय साक्षात्कार करता हुआ सब परिस्थितियों को झेलता रहे मूल्य से है, इसलिए व्यक्तिवादी प्रवृत्ति का विकास हुआ है। कथाकार निर्मल वर्मा ने पारिवारिक जीवन के बदलते देशीय और यूरोपीय संस्कृति के परिक्षेपों को विश्लेषित किया है। उनके उपन्यास 'वे दिन' में स्त्री-पुरुष के यथार्थ सम्बन्धों को नये आयाम प्रदान किये गये हैं------'स्त्री ने पुरुष से कहा कि उसे वीसा नहीं मिल सकता, पुरुष अपेक्षा भरी दृष्टि से उसकी ओर देखते हुए कहता है कि तुम चाहो, तो मिल सकता है। उसने आंखें ऊपर उठायी-एक अंजान सा विस्मय उनमें भरा था। मेरे चाहने से? तुम सोचते हो, वह वीसा के लिए मुझसे विवाह करेगी? तुम साथ रहते हो........मैंने कहा हम सिर्फ साथ रहते हैं- उसने कहा।'"[2] इस कथन में दो बातें उभर कर आयी हैं............एक तो यह पति-पत्नी का सम्बन्ध बदलती आर्थिक परिस्थितियों से जुड़ा हुआ है या यों कहें कि पति-पत्नी का सम्बन्ध बाहर आने-जाने की सुविधा की दृष्टि निर्मित किया गया है। दूसरी बात यह है कि स्त्री-

1- India- A Historical Survey, page-63

2- वे दिन, पृष्ठ 74-75

पुरुष सहवर्ती सम्बन्ध को पारस्परिक जरूरतों के कारण से है। यूरोप की स्त्री..............किसी भी पुरुष के साथ रह सकती है और साथ रहना वैवाहिक जरूरत नहीं समझी जाती। इसी उपन्यास में कथाकार ने रायना पात्र के माध्यम से बहुत तीखी किन्तु यथार्थतः की ओर संकेत कराया है, आप विदेशी हैं? हां मैंने मुस्कराकर उसकी ओर देखा अपनी स्त्री भी? मैंने कहा वह बहुत सुन्दर है-----उसने देखकर इशारा किया। मैंने कहा कि वह मेरी स्त्री नहीं है उससे कोई अन्तर नहीं पड़ता........वह बहुत सुन्दर है...... उसने कहा।'[1] यह निरर्थक कोशिश व्यक्ति के बीच जन्मी मनोवृत्ति का एक रूप है? आज की झुलसते क्षणों में उपयोग ही खास मुद्दा बना हुआ है। उपन्यासकार यूरोपीय स्त्री पुरुष के सह सम्बन्ध पर जितना अधिक सोच सका है, 'वे दिन' के कथानक में उसने उड़ेल दिया है। वस्तुतः संवेदनाओं और भावनाओं का स्थान गहरी अचूक बौद्धिकता ने ग्रहण कर लिया है। निर्मल वर्मा की कहानियों के यथार्थ को स्पष्ट करने में परिवार के सम्बन्ध गत विचार बहुत सहायक हैं। 'तीसरा गवाह' की नीरजा, रोहतगी साहब से बहुत प्रेम करती है और वह कोर्ट में जाकर दाम्पत्य जीवन को स्वीकार भी कर लेना चाहते थे लेकिन यथार्थ की गहरी संवेदिता का उसे तब अहसास होता है जब वह 10 मिनट के माहौल को देखकर अपना निर्णय बदल लेती है। रोहतगी साहब बहुत सुलझे किस्म के इंसान हैं, वे प्रेम विवाह की जिन्दादिली को भी कुछ वर्षों तक स्वीकारते हैं। उनका इस कहानी में मत रहता है कि जिसने प्रेम विवाह किया हो, हो सकता है कि चन्द दिनों के बाद ही वे एक दूसरे को छोड़कर किसी अज्ञात दिशा में चले जायें। इस तथ्य की ओर इशारा करते हुए वे कहते हैं..............कि बहुत मुमकिन है कि शादी के बाद उसने गलती महसूस की है। आखिर सच्चे प्रेम की गहराई का तो शादी के बाद ही पता चलता है। इसमें इतनी आश्चर्यजनक बात क्या है? ऐसी वारदात तो रोज देखने सुनने में आती हैं।[2] प्रेम और विवाह के सम्बन्ध में घिसी-पिटी मान्यतायें किसी भी वैज्ञानिक चेतना को अंगीकार नहीं करती। मध्यवर्गीय समाज में आज या यथार्थ पहलू बहुत कुछ उभरकर समस्या बना हुआ है। 'बीच बहस में' कहानी का पिता बीमार है और वे अपने रिश्तों को भुलाकर वाद-प्रतिवाद के अखाड़े में खड़े हो जाते हैं और यहां तक कि उनकी पत्नी भी भूल चुकी है कि वर्षों पहले का बीमार मरीज उसका पति रह चुका है। 'छुट्टियों के बाद' कहानी में जिन्दगी का कुछ दूसरा ही आयाम हुआ है। 'मार्था' पात्र के विस्मयपरक जीवन की यह कहानी यूरोपीय संस्कृति का अनूठा उदाहरण है। इस कहानी की नायिका छुट्टियों को व्यतीत करने के लिए एक प्रेमी की खोज करती है और वह पेरिस में इस प्रकार अपने प्रेमी से लिपटती है। कि जैसे वह अपने मंगेतर से लिपट रही हो।[3] स्त्री पुरुष का यह आकर्षण जीवन के धुंधलके में एक प्रकाश है और इसी कहानी में फ्रांसीसियों को प्यार करते देखना अपने में एक अनुभव है ''पेरिस में मैं जिस मित्र के यहां ठहरा था, वह अपनी मंगेतर के साथ सोने से पहले मौत्सीट का रिकार्ड रेट वाहन की बोतल और सलुआ का कविता संग्रह रखना नहीं भूलता था। मानो वह अपने कमरे में प्यार करने नहीं, बाहर वहीं धूप में समुद्र किनारे पिकनिक मनाने जा रहा हो।''[4]

इसी संग्रह की दूसरी कहानी ''वीक एण्ड'' की नायिका स्पष्ट करती है कि उसे दुनिया में यदि किसी पर भरोसा है तो कुछ अपने शरीर पर। इसीलिये वह देर रात के भोगे हुये यथार्थ को देहात्म

1- वे दिन, पृष्ठ 148

2- परिन्दे, पृष्ठ 41

3- बीच बहस में, पृष्ठ 32

4- वही, पृष्ठ 25-26

बोध से जोड़े रहती है। कहानी के प्रारंभ में ही उसके रोमांच भरे समूचे देह की चेतावनी को कहानीकार ने प्रकट किया है........"अपने बिस्तर पर रात गुजारी हो..... जहां पिछली रात खत्म हुये थे...... अपने उतारे हुये कपड़े उसकी नंगी बाहें......सब कुछ पिछली रात से जुड़े हुये हैं, अपने बोझ के संग। वह उन्हें देखती रही।"[1] स्त्री पुरुष का यह सह सम्बन्ध जीवन की हल्की ठिठकन को उगलता है और आज के आधुनिकता बोध में वह सब खुली आंखों से देखा जाता है। आज यह कितना आसान है कि यूरोपीय सम्बन्धों में छोड़ी हुयी पत्नी और फैलती हुयी दुनिया सब अविचारणीय है। उसके जीवनगत खाली जगह को भरनें के लिये हवा की तरह हर सूने कमरे को कोई न कोई बसेरा करता है। इसलिए उन्हें भोग और प्रतीक्षा के बीच कोई अन्तराल दृष्टिगत नहीं होता है। इन शहरों के लोग इस यथार्थपरक सम्बन्ध की मार करने वालों को निगाहों से जान लेते हैं, न तो उन्हें सूंघने की जरूरत पड़ती है न कहने की। वहां का व्यक्ति शास्वत मांग करता है। उसे आंख मूंदकर अपने चेहरे की उत्सुकता को जताने और बताने का हक है। आज की कहानी पारिवारिक सम्बन्धों की बुनियादी रेखा को उरेहने में बहुत अधिक सफल है। स्त्री पुरुष के प्रेम सम्बन्धों की शून्यता 'डायरी का खेल' कहानी में देख सकते हैं बब्बू की शून्यता असफल प्रेम से उद्भुत है.......वह सोचा करता है कि आज भी जब कभी शाम के धुंधलके में मैं अपने में अकेला ऊबा सा खिड़की के बाहर मकानों की छतों पर उतरती धूप को देखता हूं, तो एक क्षण के लिये ऐसा भ्रम हो जाता है कि समय के अन्तराल के परे कुछ ऐसा शेष रह गया है, जो बीता नहीं है जो काल की डोर से नहीं बंध पाया है, जो वर्षों से टूटी पतंग सा शून्य में डगमगाता सा रह गया है........न कहीं गिरता है, न कहीं पकड़ में आता है।"[2]

बब्बू को बिट्टो की तरल स्नग्ध खिलखिलाहट शब्दातीत रहस्य बन चुकी है। उसके लिये शाम से ही उस देहरी की ओर पैर नहीं बढ़ पाते जहां अजीब सा अज्ञात विस्मय उसे उधर जाने से रोक रहा है और वह सोचनें लगता है कि जाने से पहले बिट्टो को कुछ ऐसा ही कह जाता जिससे कि मुझे अपनी कहानी की 'फिनिशिंग टच' देने की सुविधा होती।

इन सत्य घटनाओं और स्मृतियों का जोड़ परिवारगत समाजगत अनुभवों में बहुत देर तक सालता रहता है। कहानीकार वर्मा ने परिवारगत ऐसे विचित्र आयाम चुने हैं जिन्हें नये अर्थ और संदर्भ दिये जा सकते हैं। यूरोपीय समुदाय में आज भी ऐसे प्रेमियों को देखा जाता है जो बाप बन चुके हैं, लेकिन शादी नहीं की। "पिता और प्रेमी" कहानी में इस प्रकार के सम्बन्ध का वर्णन पथगामी होकर कहानीकार ने किया है.......'लोगों की आंखें कभी उस पर उठती थीं कभी बच्चे पर।

कितनी उम्र है?

भीड़ में खड़ी एक अधेड़ उम्र स्त्री ने बच्चे के सिर को सहलाते हुये पूछ। अगले महीने दस महीने का होगा.......उसने कहा। स्त्री उसकी ओर देखकर मुस्कराने लगी फिर जरा उसे खुश करने के लिये कहा, बिल्कुल बाप की शक्ल पर गया है।'[3]

उस अनपहचानी औरत ने अनजाने ही बाप बेटी के सम्बन्धों को छील दिया है जिससे उस पिता का भी बच्चे की मां को अहसास हो गया है जो सब कुछ उसका है लेकिन इतना होने के

1- बीच बहस में, पृष्ठ 36
2- परिन्दे, पृष्ठ 15
3- पिछली गर्मियों में, पृष्ठ 31-32

बावजूद हर समयं वह महज दर्शक ही रह गया है। सामाजिक दायरे की ओर इंगित करने वाली अन्य कहानियां निर्मल वर्मा ने प्रस्तुत की हैं जिनमें यूरोपीय भेद-भाव की झलक तो है ही साथ में अनिवार्य जीवन की वह विडम्बना है जो केवल समाज को ही खोखला नहीं करती है, बल्कि राष्ट्र को भी नई समस्या के सामने उन्मुख करती है।

'बीच बहस' संकलित कहानी 'दो घर' में एक घर के बच्चे दूसरे घर के बच्चों के साथ खेल नहीं सकते हैं क्योंकि उनका पिता भारतीय है मां अंग्रेज है। रंग जरा सांवला होने के कारण पड़ोसी के बच्चे उन्हें जिप्सी कहकर चिढ़ाते हैं। मां टीचर से शिकायत करती है लेकिन कोई फायदा नहीं होता है। कहा गया है......."शिकायत कैसी?.......मैने पूछा।

दूसरे बच्चे इन्हें चिढ़ाते हैं। कहते हैं जिप्सी है....... यहां रंग जरा भी काला हो, तो उन्हें सब जिप्सी दिखलायी देते हैं। कोई इनसे बोलता नहीं, कोई इनके साथ खेलता भी नहीं।"[1]

रंग भेद का यह नमूना अमानवीय स्थिति का परिचायक है। वर्मा जी ने इस सामाजिक विसमता को सिलसिलेवार नई कहानियों में प्रकट किया है। रंग भेद की नीति के कारण यूरोपीय समाज समाज न रहकर परिन्दा बन गया है। इसी तथ्य को "लन्दन की एक रात" कहानी में भली-भांति प्रकट किया गया "लन्दन की एक रात" जार्ज नीग्रो होने के कारण सर्वत्र उपेक्षा झेल रहा है जब अंग्रेज एक-एक नीग्रो को चुनकर लिंच कर रहे थे, वह एक व्हाइट पर्सनालिटी के साथ अपने को जोड़ने के लिये उत्सुक निगाहों से बेचैन हो उठता है। तब अंग्रेजों के चेहरे पर पड़ी क्रोधपरक दृष्टि ने उन्हें भीतर इतनी दूर फेंक दिया था जैसे कि उससे किसी भी कोण का सम्बन्ध न हो। डा. नामबर सिंह ने इस कहानी को इसी कारण फासिस्टवादी कहानी सिद्ध किया है।[2] यह बात केवल लन्दन में ही नहीं बल्कि वैस्टइण्डीज, दक्षिण अफ्रीका आदि देशों में भी लागू है रंगभेद की नीति अमानवीय तो है ही साथ ही सामाजिकता के लिये आज बहुत बड़ा अभिशाप लिये हुये है। गोरे लोगों के सामने काले लोगों के मन का सूनापन उनके खोखलेपन की गवाही देकर उनके हीनता के भाव को उड़ेलता रहता है और उन्हें अहसास होता है कि उनकी अपेक्षा से वे लोग अपने आपने में कुछ भी नहीं है स्वतंत्र राष्ट्र की चेतनावादी नीति में भी यह तथ्य आज ज्वलन्त समस्या बना हुआ है।

पारिवारिक एवं सामाजिक स्वातन्त्र वर्ण को निर्मल वर्मा ने सर्वाधिक महत्व दिया है। वैसे हर व्यक्ति परिवार और राष्ट्र की सीमाओं में आबद्ध है फिर भी "दो घर" कहानी का प्रावासी सर्वत्र स्वतन्त्र है। वह भारतीय है कलकत्ता में पत्नी और 8 वर्ष का लड़का है और विदेश में अविवाहित पत्नी और दो बच्चे हैं। वह ना भारत लौट आना चाहता है क्योंकि उसे डर लगता है और विदेश में रह नहीं पाता क्योंकि उसकी उपेक्षा होती है। इस प्रकार के सामाजिक पारिवारिक संघर्ष थोड़े बहुत निर्मल वर्मा के हर कथा पात्र में मिल जाते हैं। 'परिन्दे' और 'दहलीज' में इन्हीं समस्याओं की लातिका अपने को दुनिया में समायोजित नहीं कर पाती है। वह पूरे विश्व में अपने साथ कोई संगति नहीं उठा पाती क्योंकि उसका प्रेमी मर चुका है। इसीलिए वह छुट्टियां भी स्नोफाल के बीच उस पहाड़ी कान्वेन्ट में अकेले बिताया करती है जहां दरारों से भी बर्फ का पानी टपकता है। पानी से बचने के लिये वह कोने में सिमटी रहती है लेकिन समाज के बीच प्रकाश में रहना उसे स्वीकार

1- बीच बहस में, पृष्ठ 71

2- नई कहानियां- अप्रैल 1965

नहीं। गीली लकड़ियों से कमरे में वह धुआं करती है, अकेलेपन से छुटकारा पाने के लिये डा. साहब या चपरासी को देर तक रोके रहती है। लेकिन रुंधे गले से वह यही कहती है.......''डाक्टर.......सब कुछ होने के बावजूद वह क्या चीज है, जो हमें चलाये चलती है, हम रुकते हैं तो भी अपने रेले में वह हमें घसीट ले जाती है.......कह नहीं पा रही, जैसे अंधेरे में कुछ खो गया है, जो मिल नहीं पा रहा है, शायद कभी नहीं मिल पायेगा।''[1] इस प्रकार के कथावृत चित्र हिन्दुस्तानी संस्कृति में बहुत मिलेंगे। 'दहलीज' कहानी की पात्र रूनी भी बेमिसाल उदाहरण है। रूनी शम्मी को चाहती है, किन्तु विसंगति यह है कि वह शम्मी को कभी भी छू तक नहीं पाती। वे दोनों अलग-अलग जीते हैं। वह शनिवार की प्रतीक्षा सप्ताह भर करती है। उसका दिल रबड़ के छल्ले की मानिन्द खींचता है किन्तु उन दोनों की दुनिया बहुत अलग है। कहानीकार ने एक हल्की सी मुलाकात में इन धड़कनों के अन्दाज को प्रकट किया है.........''रूनी का दिल धौंकनी की तरह धड़कने लगा। शायद शम्मी भाई वही बात कहने वाले हैं, जिसे वह अकेले में रात को सोने से पहले कई बार मन ही मन सोच चुकी है।

.......मानो शम्मी भाई की आवाज ने उसकी नंगी पसलियों को हौले-से उमेठ दिया हो। उसे लगा, चाय की केतली की टीकोजी पर जो लाल-नीली मछलियां काढ़ी गयी हैं, वे अभी उछलकर हवा में तैरने लगेगी और शम्मी भाई सब-कुछ समझ जायेंगे------उनसे कुछ भी न छिपा रहेगा।''[2] ऐसा क्यूं लगता है?

क्या सामाजिक दायरे में बसी हुयी अनुभूति बासी पड़ गयी है।

एक अपरिचित डर की खट्टी-खट्टी सी खुशबू उसे अपने में धीरे-धीरे घेर रही है। रूनी के शरीर के एक-एक अंग की गांठ खुलती जा रही है, मन रुक जाता है, और लगता है कि लान से बाहर निकलकर वह धरती के अन्तिम छोर तक आ गयी है और उसके परे केवल दिल की धड़कनें हैं जिसे सुनकर उसका सिर चकराने लगता है। इस प्रकार की विसंगतियां कहानीकार ने जगह-जगह पर अपनी कहानियों में अभिव्यक्त की है।

सामाजिक एवं पारिवारिक प्रतिमानों का बदलाव यौन संदर्भ विशेष अर्थ में यूरोपीय सभ्यता का पहचान रूप बन गया है। 'अन्तर' कहानी में यह विसंगति यौन सम्बन्धों की देन है। इस कहानी की नायिका के अन्दर गृहस्थ एवं प्रेम की ललक है। परन्तु जिन्दगी उनके हाथों से बहुत जल्दी फिसलती जा रही है और ऐसा लगता है, उसे कि यह उसके लिये कसैला रस हो गया है। नायिका को इच्छा के विरुद्ध गर्भपात कराना पड़ता है। वह फिर भी एक कमजोर सी मुस्कराहट होठों पर समेटे हुये है। एक छोटा सा गर्म आंसू उसकी आंखों की कोरों में बहता हुआ उसके बालों में खो गया।[3]

इसी तथ्य का दूसरा उदाहरण 'उनके कमरे' की कहानी में देखा जा सकता है........ ''लड़की की आंखों में गहरा सा विस्मय छलक आया था और दबा सा डर भी जो केवल उन लोगों में होता है, जिनके आगे सारी उम्र पड़ी होती है। वह कुछ उसी किस्म का होता है, जब वह किसी बहुत नाजुक और कीमती चीज को हाथों में पकड़ते हैं। उसे छूने का इतना सुख नहीं जितना छूट जाने का डर।''[4]

1- परिन्दे, पृष्ठ 158
2- जलती झाड़ी, पृष्ठ 91
3- जलती झाड़ी, पृष्ठ 144
4- पिछली गर्मियों में, पृष्ठ 65

लड़की सोचने लगती है कि बचपन में उसके माता-पिता ने उसे छोड़ दिया और जवानी में उसके मित्र लड़के जिसने सब कुछ अविश्वसनीय बना दिया है। इसलिए वह मन ही मन गुनगुनाती है कि सुख की कोई बात पहले से नहीं सोचनी चाहिये क्योंकि वह सोचने के साथ ही मर जाती है और और बाद में यदि जीवित भी रहता है तो पहले की तरह जैसा तो रह ही नहीं पाता। वस्तुतः यह जिन्दगी का जीता-जागता स्वरूप कुछ है भी विचित्र।

'सितम्बर की एक शाम', 'पिक्चर पोस्टकार्ड', 'कुत्ते की मौत', 'माया का मर्म' आदि ऐसी ही बाह्य धरातल हैं जिनमें सामाजिकता, अविश्वसनीय सी लगने लगती है। निर्मल ने 'डेढ़ इंच ऊपर' कहानी में इस तथ्य को स्वतन्त्र वर्ण के रूप में स्वीकार भी किया है। हर आदमी को अपनी जिन्दगी और शराब चुनने की आजादी होनी चाहिये........दोनों को केवल एक बार चुना जाता है, और बाद में सिर्फ हम दोहराते रहते हैं।''[1] + + + + + ...कभी-कभी आप इस संशय से छुटकारा पाने के लिये दूसरी या तीसरी स्त्री से प्रेम करने लगते हैं। आप यह भूल जाते हैं, कि दूसरी बाजी की अपनी सम्भावनायें हैं। पहले बाजी की तरह अन्तहीन और रहस्यपूर्ण........इसीलिए मैं कहता हूं कि आप जिन्दगी में चाहे जितनी औरतों के सम्पर्क में आयें असल में अपना सम्पर्क सिर्फ एक औरत से ही होता है।''[2]

कथाकार का यह फैसला सही है, या गलत यह तो नहीं कहा जा सकता, लेकिन लोग डर के मारे डेढ़ इंच जमीन पर ही पांव जमाये रहते हैं, और अपनी चेतना को माचिस की तीली की तरह अपने आप ही कभी जला लेते हैं, और कभी बुझा देते हैं।

आज परिवार में स्त्री-पुरुष सम्बन्ध या परिवार से बाहर स्त्री-पुरुष के सम्बन्ध बहुत ही जल्दी बदलते जा रहे हैं। स्त्री-पुरुष के परस्पर निजता से व्यर्थ बोध बढ़ता जा रहा है। कभी कभार स्त्री-पुरुष के मध्य तीसरा पात्र और कूद पड़ता है जिससे सम्बन्धों में दरारें पड़ जाती हैं, नैतिक-अनैतिक विचार दृष्टि तो बड़ी फीकी पड़ गयी है, इसीलिए सामाजिक प्रश्न अपने आप में ही मटमैले होते जा रहे हैं।

माता-पिता और संतानों की पीढ़ियों का अन्तराल अनेक प्रकार के संघर्षों, तनावों तथा विघटन का कारण बनता, यह सारी स्थितियां कुछ विशेष बिन्दुओं जैसे विवाह पिता या माता का प्रभुत्व, धार्मिक विश्वासों और आधुनिक वैज्ञानिक दृष्टिकोण की भिन्नता आर्थिक दबाव व्यक्तिगत स्वार्थ, यौन सम्बन्ध और आजीविका आदि के इर्द-गिर्द बनी हुयी है।

महानगरीय का अकेलापन और अजनबीपन और भी अधिक कष्टप्रद हो जाता है इन सामाजिक एवं पारिवारिक सन्दर्भों में आज का व्यक्ति निजता को छोड़कर स्वार्थपरता से एक दूसरे से जुड़ा हुआ है, सहानुभूतिपरक स्वार्थपरता से एक विदा ले ली है और वैचारिक स्तर पर बौद्धिकता ने पैर जमा लिये। इस तरह की उहापुहात्मक जिन्दगी का अधिकांश आचरण निर्मल के कथा संसार में पग-पग देखने को मिलेगा। मूल्यों के बदलते प्रतिमान आज हमें तो लगता है कि वे चुके ही नहीं वरन बुझ चुके हैं।

1- पिछली गर्मियों में, पृष्ठ 34

2- वही, पृष्ठ 36

(ग) सम्बन्ध हीनता तथा सम्बन्ध के नये आयामः-

समाज के विभिन्न कारणों ने जिन्हें मशीनीकरण, औद्योगिकीकरण तथा विदेशी संस्कृतिकरण का नाम दिया जा सकता है। बहुत ज्यादा बदलाव पारिवारिक सम्बन्धों में ही किया जा सकता है।

समाज में होने वाला यह परिवर्तन रोका नहीं जा सकता और इसके परिणामस्वरूप हमें अपने जीवन मूल्यों में भी परिवर्तन करना पड़ता है। सीताराम शर्मा ने इस तथ्य को स्वीकारते हुये लिखा है सामाजिक परिवर्तन आधुनिक संसार के हृदय में निवास करता है। इन परिवर्तनों के परिणामस्वरूप सामाजिक मूल्यों में भी उतनी ही तेजी से विघटन आता है, कि बरहाल जो भी हो इन परिवर्तनों को रोकना हमारे लिये सम्भव नहीं। सच तो यह है, कि समाज के विकास में भिन्नता और समन्वय प्रक्रियाओं का महत्वपूर्ण संतुलन हुआ है, क्योंकि पहली प्रक्रिया सामाजिक विकास की प्रक्रिया है जो विभेदीकरण का कारण होती है, और दूसरी विभिन्नता में समन्वय स्थापित करती है ताकि संघर्ष की स्थिति पैदा न हो, इसीलिए समाज को विभिन्नता और समन्वय का गत्यात्मक संतुलन कहते हैं।''[1]

आज हम देखते हैं कि हमारे समाज के हर क्षेत्र में परिवर्तन की प्रक्रिया निरंतर गतिशील है और इस परिवर्तन के परिणामस्वरूप हमारे सामाजिक जीवन में पर्याप्त परिवर्तन का स्वरूप लक्षित हो रहा है। आज कथा- साहित्य के संदर्भ में स्वीकृत सामाजिक सम्बन्धों से प्रेरित बदलते जीवन मूल्यों के प्रति आज का कथाकार बहुत सजगं, सचेष्ट है। उसके कथा साहित्य में इन परिवर्तित जीवन मूल्यों को इसी कारण अभिव्यक्त किया जा रहा है। आज की वैज्ञानिक प्रगति ने बौद्धिक उन्मेश के फलस्वरूप व्यक्ति को अन्तर्राष्ट्रीय धरातल पर खड़ा करके सब कुछ बदलते सम्बन्धों में सोचने के लिये मजबूर कर दिया है। कथाकार निर्मल वर्मा बदलते सम्बन्धों के प्रतिमानों पर सहज मानवीय स्वभाव का वह पृच्छन्न रूप जिसमें कई परतें हैं, उकेरा है। ''लाल टीन की छत'' उपन्यास की मिस जोसूआ, मंगतू, काया आदि ऐसे ही पात्र हैं जिन्हें समाज के सम्बन्धों के बदलते झरोखों में से टटोला गया है। उपन्यासकार कहता है, -----''मुझे मिस जोसुआ की चादरें याद हो आती हैं, क्योंकि उनके बीच कोई रिश्ता न था। मुझे लगता है कि मेरी स्मृति एक दूसरी स्मृति से ढकी रह गयी है और जब मैं एक को छूती हूं तो दूसरी अपने आप उठने लगती है। वे चादरें बर्फ ही की तरह सफेद थीं-- और कुंवारी-- वह बेचारी अकेली पड़ी होगी और तब मुझे काफी विश्मय होता था कि लोगों ने जोसूआ का नाम लेना छोड़ दिया था....... सब उन्हें धीमे स्वर में, लगभग फुसफुसाते हुये ''वह'' कहकर बुलाते थे जिससे वह धीरे-धीरे एक ऐसी जगह पहुंच गयी थी, जहां नाम के बदले सिर्फ उनका शरीर रह गया था।''[2]

लेखक ने काली अंधेरी रात से घिरे हुये मिस जोसूआ के सम्बन्धों की बदलते संज्ञा रूपों में पहचान प्रकट की है। वह मिस जोसूआ जैसी अंग्रेज औरत के बारे में तरह तरह के विचार करता है। मिस जोसूआ के अजीब चेहरे को पढ़कर समय के तकाजे की निगाहें ऊपर नीचे करते हुये

1- स्वातंत्र्योत्तर कथा- साहित्यः समाज में संक्रमण, 38

2- लाल टीन की छत, पृष्ठ 186-187

सर्वमान्य समझा जाता है। यह जिन्दगी बदलते जीवन के सम्बन्ध सूत्रों की कहानी है क्षणभर के सुखपरक जीवन को ठोस कदम मानते हुये जब व्यक्ति अपने दिन और रात को थम जाने का आदेश देने लगता है। तब सबसे ज्यादा चिन्ता उसे इसी बात की होती है कि यह सम्बन्ध कितना और अधिक टिकाऊ रहेगा। .... कहा नहीं जा सकता। निर्मल के सम्बन्धों की बुनावट और बदलते रंग-बिरंगे धागों में ओढ़ा हुआ वही परिधान खूब पहचानते हैं। उन्होंने इसी उपन्यास में कया पात्र की उस अनदेखी स्थिति को भी स्वरूप दिया है जो शाम के नशे की तरह वर्तमान धरातल पर उपस्थित है। काया, लालटीन की छत कभी भी दिल और दिमाग से भुला नहीं पाती, फिर चाहे जितने ही सम्बन्धों की दुराहट उसे झेलनी पड़ी हो। ''एक चिथड़ा सुख'' उपन्यास में निरूपित पात्र बिट्टी नित्ती भाई का सम्बन्ध, अलगाव और हौसला परस्त जीवन का लगाव बड़ी ही विचित्रता से प्रगट किया गया है। बिट्टी नित्ती भाई को चाहती है लेकिन उसकी चाहना धुयें की लकीर जैसी है। कुछ उनके शब्द और कुछ फिकरें उसके दिमाग के किसी कोने में फंसे हैं और एक हल्की सी धुन्ध दूर से आकर कहीं धोखे से आहट दे देती है। तो वह बिना परवाह किये पीछे-पीछे दौड़ने लगती है। सम्बन्धों की बेबुनियादी दुनिया में फिर ऐसा क्या है। जिसके कारण वह न तो उसे पकड़ ही पाती है और न छोड़ पाती है।

उपन्यासकार लिखता है----- बिट्टी! नित्ती भाई ने अपना हाथ धीरे से बिट्टी के हाथ पर रख दिया जानती हो जब कभी मैं तुम्हें रिहर्सल करते हुये देखता हूं तो तुम बिल्कुल बदल जाती हो जिसे मैं जानता हूं। + + + बिट्टी ने बहुत कोमल निगाहों से नित्ती को देखा और अपने को दबाते हुये कहा हां ऐसा होता है स्टेज पर कभी कभी लगता है मैं वह नहीं हूं। जो अपने को समझते आयी थी। ------नित्ती भाई मैं समझ नहीं सकती----बाद में मुझे कुछ भी याद नहीं रहता। क्या ऐसा असली जिन्दगी में नहीं हो सकता?[1] सम्भवतः यह मन का बदलाव व्यक्ति के भीतर रेंगते हुये आत्मवादी एक चमकीले कीड़े के कारण ही है जो वक्त सापेक्ष सम्बन्धों के मुखौटे ओढ़ लिया करते हैं जैसे थियेटर में पर्दा गिर जाता है और देखा हुआ दृश्य कितना ही भयानक क्यों न हो परदा गिरने से और अगले एक्ट के शुरू होने तक एक रिलीफ सा मिल जाता है या यूं कहें कि पीड़ा को हाथ पांव फैलाने का एक सिराहना सा मिल जाता है। लेकिन यह आराम असली जिन्दगी में जीने के दौरान नहीं मिल सकता, क्योंकि उसमें हम सचमुच जी रहे होते हैं।

व्यक्ति यद्यपि सम्बन्धों के बदलाव में पीड़ा के दलदल से उबरने का प्रयास करता है फिर भी वह आज की सामाजिक व्यवस्था के बीच तिलमिला उठता है। इसी उपन्यास में बिट्टी का यह कथन बदलते सम्बन्धों के आयामों की कहानी को दोहराता है---''इन दो सालों में मैंने कितने पार्ट खेले हैं---मैं दूसरों की जिन्दगी जीती हूं, लेकिन खुद वही हूं जो पहले थी----पहले से भी बदतर।''[2] -----बिट्टी के भीतर एक मरती गिरती पागल सी इच्छा सम्बन्धों के बदलते आयाम टटोल रही है और उसे एहसास होता है कि नित्ती भाई को याद कर हांफती हुयी सांसों के बीच चेतना की एक लकीर कौंध जाती है। वह अतीत स्मृतियों की चिन्दियां उठा उठा कर एक चिथड़ा कागज बना रही है शायद वह उसे साफ तौर पर पढ़ सके। उपन्यास का कथ्य सम्बन्धों की उस कुहासा भरी दुनिया में सिमट जाता है वहां न बिट्टी के चेहरे पर तेज रह गया है और न चमक।

1- एक चिथड़ा सुख, पृष्ठ 93-94

2- वही, पृष्ठ 117

सम्बन्धों की व्यापकता के कई आयाम हैं, लेकिन सम्बन्धों की संकीर्णता के कुछ घिसते पिटते ही आयाम हैं जिन्हें हर सम्बन्ध के टूटने और बिखरने में उसी अंदाज से समझा जा सकता है। 'वे दिन' उपन्यास मुखौटा परख जिन्दगी का एक गहरा और दार्शनिक पहलू उपन्यासकार ने दो तीन पंक्तियों में उतार दिया है.....''एक ही समय में तुम दोनों नहीं हो सकते। यह सम्भव लगता है कि तुम एक में से गुजर कर दूसरे में चले जाते हो और दोनों भीतर जीवित रहते हैं।''[1] बदलते मानवीय संवेदनशील सम्बन्धों में यह तथ्य मनोवैज्ञानिक सत्य बन गया है। व्यक्ति चाहे जितना अक्ल का ठेकेदार बने आखिरकार उसे अपने मुखौटे से हटकर अपनी असलियत पर आना ही पड़ता है। सचमुच आज का जीवन बड़ी ही दुरुह है और उतना ही जितना की निर्मल जी ने अपने उपन्यास के कथाकारों में से जटिलता से संग्रहित किया है।

कहानीकार निर्मल वर्मा ने वर्मा की कहानियों में जहां एक ओर नये जीवन मूल्यों की स्थापना है वहीं दूसरी ओर टूटते सम्बन्ध और बदलते सम्बन्धों पर सुलगते हुये सवाल धधक रहे हैं। आज कहानी जगत में शाश्वत मूल्यों पर भारतीय मूल्यों की चर्चा अधिक सी होने लगी है। यही आज की कहानी की सार्थकता है कि वह अपने समय के बाह्य तथा आन्तरिक समाज तथा मानसिक संघर्ष की अभिव्यक्ति है इनमें एक ओर परम्परागत मूल्यों के प्रति क्षुब्ध आक्रोश का स्वर सुनायी देता है और दूसरी ओर कुछ नवीन मूल्यों की सृजना का संकेत भी मिलता है इस दृष्टि से कथाकार वर्मा सम्बन्धों के आयामों को अलग ही तरह से नये अर्थ दिये हैं। 'छुट्टियों के बाद' कहानी की मार्था अपने प्रेमी और मंगेतर से जिस प्रकार मिलती है कहानीकार ने उसे बहुत ही बढ़िया तरीके से बदलते और टूटते सम्बन्धों के आयामों को अलग ही तरह से नये अर्थ दिये हैं। ....''स्टेशन पर खड़ा वह फ्रांसीसी पिकनिक तफरीह से अलग था, वह जल्दी मार्था से कुछ कह रहा था साथ-साथ भाग भी रहा था + + + सात दिन का पेरिस और उनकी छुट्टियों वाला पेरिसियन दोनों ही आंखों से ओझल हो गये थे।''[2] मार्था ने पेरिस और अन्य युवक से अपने सम्बन्धों का हेर फेर किया है। वह छुट्टियां बिताने के लिये एक नये सम्बन्ध की तलाश करती है। यह कुछ अजीब सा ही है कि वह वक्त गुजरते समय आदमी अपने सम्बन्धों को निगल लिया करता है। इस कहानी में एक दूसरे को नजर अन्दाज करने की कोशिश काफी बेमानी सी लग रही है। धुंधले अन्धेरे में मार्था सिर्फ कटी फटी छायायें सिमटी रह गयी है। सम्बन्धों की बासी गंध केवल बोझ बनकर रह गयी है, लगता है कि जो परिचय कदम-कदम पर रेंग रहा था वह अब जमीन से उठ चला है। अब भले ही मार्था सम्बन्धों के निरर्थक होते हुये भी अपने मन में एक अजीब किस्म की तसल्ली देती रहे फिर भी उसके स्वर में एक हल्का सा अवसाद उखड़ जाता है जो किसी बहुत पुराने अतीत से जुड़ा हुआ है। 'वीक एण्ड' की नायिका ढेर सारी मानसिक यातना के पश्चात ही इस स्थिति पर पहुची है कि वह इसी परेशानी के कारण अपने प्रेमी के सोने का रेगिस्तान भोगा करती है। प्रेमी के पास वह एक छोड़ी हुयी पत्नी और बन्धी हुयी बच्ची है उस आदमी को जिसे मैं चाहती हूं, जिसे मैं बेहद चाहती हूं जिसे मैं-----वह बीच में ही रुक गयी। इस बार शब्द नंगे थे, अकेले में ठिठुर रहे थे जैसे उन्हें ओढ़ने वाला जादू कहीं खो सा गया था और तसल्ली कहीं न थी।''[3]

1- वे दिन, पृष्ठ 126

2- बीच बहस में, पृष्ठ 26

3- वही, पृष्ठ 40

दरअसल इस नायिका के मन का कोना-कोना प्रेम में रंगा हुआ था किन्तु सम्बन्धों की झुरमुट उसे अपना कहलाने के लिये बेबस है। यद्यपि वह हर दिन के साथ एक नया साहस लेकर अपने प्रिय के लिये नया अध्याय शुरू करती है और अपने प्रिय के मुताबिक कपड़े पहनती है बिन्दी लगाती है लिपिस्टिक का रंग चुनती है, क्योंकि वह सोचती है यह हमारा है जैसे वह हमारे में शामिल है। किन्तु यह हमारा बहुत दिनों तक टिक नहीं पाता है अपना पराया चटकने लगता है स्त्री-पुरुष का सम्बन्ध मात्र केवल सगूढ़ सी उफनाती देह के प्रश्रय में जी रहा है। इसलिए इस कहानी का नायक सदैव आशंकित रहता है जैसे उसकी पहली पत्नी ने उसे खो दिया है वैसा यह भी न करे। इस अर्न्तद्वन्द्ध की यह पहचान सुबह दोपहर शाम हर बार चमकीली रेत का ढेर बनकर उभर आती है और दोनों का ही दिल धक-धक करने लगता है जिससे उनकी उम्मीदें बहुत दिनों तक टिकाऊ नहीं हो पाती है।

विदेशों में प्रेमी प्रेमिका के सम्बन्ध समान दृष्टि से नहीं देखे जाते। वहां सम्बन्धों के धरातल परिस्थितियों से जुड़े हुये हैं। नायक-नायिका यथार्थ पर ही विश्वास रखते हैं और उसमें ही जीना चाहते हैं।

कहानीकार ने वर्षों विदेशों में रहने के कारण वहां की सम्बन्धगत महत्ता पर लेखनी चलायी है यह सिद्ध किया है कि जहां एक ओर पिता जैसे कथानक हैं वहीं दूसरी ओर अर्न्तकहानी जैसे कथानक हैं। 'पिता और प्रेमी' की नायिका अपने प्रेमी से उत्पन्न बच्चे के कारण मकान बदलती है। दुनिया की निगाह में वह सब आन्तरिक रखना चाहती है कहानीकार ने इस प्रकार की कथा बिन्दुओं को बहुत ही घनी आवाज दी है।

प्रेमी इत्तेफाकन से अपनी प्रेमिका से सड़क पर मिल जाता है वह गोद में लिये बच्चे को देखता हुआ अपने प्रेम सम्बन्धों के अनुरूप ही कुशलता पूछता है किन्तु उस प्रेमी का चेहरा वह नहीं था जैसा कुछ दिन पहले था और इधर प्रेमिका भी वह नहीं थी जैसी कि उसने मनमस्तिष्क में जो पहचान बना रखी थी। कहानीकार कहता है-------- "बाकी महज देह थी जिसे वह पहचानता था किन्तु कपड़े में लिपटी हुयी शायद वह वैसी देह नहीं थी जो कभी एक खास छुअन के इशारे पर जग जाती थी।

एक लम्हे के लिये उसे लालच हुआ कि हैन्डिल पर दबी उसकी अंगुलियों को दबाकर देखे, क्या पुराना जादू अब भी लौटकर आता है।"[1]

नायक मानो उसे संदेह की दृष्टि से देखने लगा है अब वह सम्बन्धों के बदलाव से या सम्बन्धों की टूटन से एक छोटी सी भी उम्मीद नहीं कर पाता।

एक क्षण के लिये उसे लगता है कि वह स्वयं भीड़ में खो गया है। उसने उसे भागती भीड़ में ही एक हल्की सी पहचान का अंश स्वीकार किया है उसकी अबोध दृष्टि अपने आप में असमंजसमय हो जाती है। नायिका उससे अभी भी उससे बेहद प्यार करती है उसका इस प्रकार से मिलना भी एक मूक प्रार्थना है। जो पुराने किसी समय में पवित्र रहे शब्दों को दोहराने के बराबर है।

इधर 'अन्तर' की नायिका भारतीय पद्यति से बहुत कुछ जुड़ी हुयी है। 'अन्तर की नायिका इस विषय में अत्यन्त सचेत है कि गर्भपात कराना एक अनैतिक पाप है। इसलिए वह दूसरे शहर

1- पिछली गर्मियों में, पृष्ठ 27

में गर्भपात कराती है तथा नायक को भी अपने पास आने से मना करती है। दरअसल कहानीकार कहना चाहता है कि विदेश में भी इस तरह के कार्य को सामाजिक अपराध महसूस किया जाता है इसलिए इस कहानी की नायिका अनैतिकता के बोध से घबराई हुयी है। गर्भपात की प्रक्रिया से उसे इतना मलाल नहीं है जितना कि सामाजिक अलगाव की पद्धति से। बौद्धिक झुकाव आज के व्यक्ति की सहज प्रवृत्ति है। विदेशों में स्वछन्द प्रेम इस दृष्टि से संवेदना का स्थान ले चुके हैं। फिर भी ऐसी रुखी बौद्धिकता में भी भावात्मकता धरातल कुछ ना कुछ तो टिका हुआ है ही।

'अंधेरे में' कहानी का स्वछन्द प्रेम भावात्मक धरातल का ही है। स्त्री-पुरुष के सह सम्बन्धों का भावात्मक जगत इस कहानी में बहुत बारीकी से देखा गया है। वीरेन बाबू के द्वारा इजहार की गयी कल्पनायें एक सामान्य नारी के प्रति विशिष्ट बन पड़ी है सम्बन्धों के प्रेम में भावनाओं की टिमटिमाती रोशनी चारों ओर इर्द-गिर्द घूम रही है।

वीरेंद्र बाबू की व्यक्तिवादी दृष्टि का पारदर्शी रूप कहानीकार ने यहां इस प्रकार उरेहा है--- "वीरेन चाचा मां के पैरों के निकट फर्श पर बैठ गये मेरी आंखें मां के चेहरे पर टिकी रहीं मानो मैं कुछ खोज रहा हूं मां की आंखों में मुंह, माथा हर चीज अलग-अलग देखो तो वैसी ही थी किन्तु आपस में मिलकर जो भाव बनता था वह उसके चेहरे से बिल्कुल अलग था।"[1]

कहानीकार कहना चाहता है कि जो अन्तर है वह किसी लम्बी दूरी को पास ले आने का है लेकिन अपने को दूर ही रखने में सम्बन्धों का मुखौटा ओढ़ा जाता है। सम्बन्धों की बुनावट अपने आप में ही स्त्री पुरुष के मध्य सिमट जाती है। यद्यपि वीरेन चाचा उस बच्ची की मां से कोई बात नहीं करते हैं फिर भी उसे बहुत आश्चर्य सा होता रहता है और लगता है कि इनके बीच कुहासे में छिपी सम्बन्धों की शिष्टता भरी निगाह जुड़ी हुयी है। इस प्रकार के सम्बन्धों में भावना प्रधान हो जाती है फिर भावना के ही बल पर अत्यन्त स्नेहमयी शिष्टतायें ओढ़ ली जाती हैं। स्वच्छन्द सम्बन्धों का जुड़ाव और बिखराव निर्मल की अनेक कहानियों में यत्र तत्र खूब मिलता है। लवर्स कहानी नग्नता का प्रतीक लिये हुये है उसमें आरम्भ से अन्त तक शारीरिक सम्बन्धों की बुनावट है। दुकानदार और ग्राहक के बीच इस दैहिक चेतना का जितना कुछ मौन वातावरण तय किया गया है वह हर जगह वर्णनीय है। कहानीकार इस जगह पर भावनाओं से व्यक्ति को आदर्शपरक नहीं स्वीकारता। लड़का और लड़की के मिलने का स्वच्छन्द वातावरण बिना किसी रोक-टोक के सहज और नैसर्गिक हो गया है ....दरवाजे पर खड़ा लड़का हमें सलाम करता है। वह दरवाजा खोलकर भीतर चली जाती है। मैं क्षणभर के लिये बार ठिठक जाता हूं।

लड़का मुझे देखकर मुस्कराता है। वह हम दोनों को पहचानने लगता है उसने हम दोनों कितनी बार यहां एक संग आते देखा है।"[2]

स्त्री पुरुष का इस प्रकार का सहसम्बन्ध अब न तो अंधेरे में है और न धुंधलके में वह तो सबके सामने खुला सा है, भीड़ में है।

उनके बीच की खुली छिपी सब बातें सारे लोग जानते हैं। हम भीड़ में उसकी बांह खींचकर झिंझोड़ सकते हैं। वे बड़े ही ईमानदारी के भाव से सड़क पर ही सब कह देना चाहते हैं जो रात को सोने से पहले और सोने के बाद वह कह देना चाहते थे। इसी स्वच्छन्द प्रेम और शारीरिक सम्बन्धों के टकराव की दुनिया 'जलती झाड़ी' कहानी में देखी जा सकती है। 'जलती झाड़ी'

1- परिन्दे, पृष्ठ 73   2- जलती झाड़ी, पृष्ठ 11

कहानी का घटनास्थल वह टापू है जहां अन्धेरा होने पर अक्सर प्रेमियों के जोड़े आया करते हैं। कहानी में शारीरिक सम्बन्धों के नग्न चित्र दिये गये हैं देखे----- "उन दोनों की गहरी हांफती" टूटती हुयी सांसे मुझ तक पहुंच जाती थीं----- एक धधकती सी गरमाहट झाड़ी के बाहर निकलती थी, बीच की हवा छीलती, भेदती, मन्त्रमुग्ध सांप की तरह बलखाती हुयी मुझे लपेट लेती थी।

---------मानो उसकी गर्म, बोझिल सांसों का भार न संभाल पा रही हो।"[1] स्वच्छन्द प्रेम का सम्बन्ध गत निर्वाह यहां कहानीकार ने अति यथार्थवादी नग्न धरातल पर किया है और उसे अनायास ही एहसास होता है कि वह तो इस टापू का जोड़ों के लिये वरदान है। सोच और बौद्धिकता के बीच जिन्दगी की जवाबदेही का लम्हा झुलसता रहता है, जिससे हम बंध से जाते हैं सम्बन्ध का बिखराव कहलाता है। लेकिन यह सच है कि समूची जिन्दगी का बारी-बारी यह सोता जागता घिसटता रूप है।

वैसे बौद्धिकता की दुहाई देकर हम भले ही आदमी पर आदमी को निगल जाये लेकिन सच यही है कि जिन्दगी का यही सब निचोड़ नहीं है जिसमें संवेदना को स्थान न दिया गया हो। 'खोज' कहानी में सम्बन्धों की यथार्थवादी भूमि कुरेदी गयी है। किसी दूसरे आदमी के संग एक ही बिस्तर पर सोने की कल्पना दोनों बहिनों को रागात्मक बना देती है। यह कल्पनाशीलता सम्बन्धों के बड़े ही सूक्ष्म तार गूंथती है जिससे दूर की चमक भी आकर आंखों में इतराने लगती है। कहानीकार ने दोनों बहनों के संवाद में यह सब कहलवा दिया है ------'तुम? छोटी बहन की आंखों में पागलों की सी चमक उमड़ आयी। तुम हमेशा इस घर से डरती थी। विवाह तुम्हारे लिये छुटकारा था। लेकिन मैं--------मेरे लिये।"[2]

छोटी और बड़ी बहनें अलग-अलग मंसूबों में अपनी जिन्दगी का फैसला करती है। इस रोमान्टिक दुनिया से अलग हटाकर 'धूप का एक टुकड़ा' कहानी भी सम्बन्धों के जुड़ाव और बिखराव की कहानी है।

इस कहानी की नायिका बड़े ही दार्शनिक मुद्रा में सम्बन्ध का यथार्थ स्वरुप समझाने का प्रयास करती है------- "मुझे कभी-कभी यह सोचकर बड़ा अचरज होता है कि जो चीजें हमें अपनी जिन्दगी को पकड़ने में मदद देती है, वे चीजें हमारी पकड़े के बाहर है। हम न उनके बारे में सोच सकते हैं, और न किसी दूसरे को ही बता सकते हैं।"[3]

आज के उगते और भरते सहज वातावरण में सम्बन्धों की चर्चा भी बेमानी हो गयी है।

'उनके कमरे' कहानी में प्रेमी और प्रेमिका का जीनो और सिनेमाघरों में देहात्मक बोध का आनन्द लेते हैं क्योंकि शारीरिख भूख इतनी तीव्र है कि वे बिना किसी की चिंता किये ही चुपके-चुपके मिटा लेना चाहते हैं।

कहानी के शुरू में ही लड़का और लड़की के तीव्रगामी जीवन पर प्रकाश डाला गया है कभी कभी वे तेज चलने लगते थे मानो कोई उनका पीछा कर रहा हो......... लड़की हांफने लगती है और उसका हाथ भींच लेती है।

थकान से टांगें भारी पड़ जाती हैं और वे एक दूसरे को क्षण भर निहार कर फिर चलने लगते।[4]

इसी क्रम में दूसरी कहानी 'अमलिया' में प्रेम एक औपचारिक वस्तु है देह सम्बन्ध प्रमुख

1- जलती झाड़ी, पृष्ठ 83

2- पिछली गर्मियों में, पृष्ठ 51

3- कौवे और काला पानी, पृष्ठ 11

4- पिछली गर्मियों में, पृष्ठ 57

इस कहानी की नायिका जिन विदेशी यात्रियों से मिलती है वह उनसे दुबारा मिलने पर पहचान भी नहीं पाती।

अरब, अमालिया को रूमाल उपहार के रूप में देता है और अमालिया उसी को ब्राजीलियन की चिन्ता किये बिना ही कुछ क्षणों के लिये उससे लिपट जाता है किन्तु अमालिया ब्रातीलियन के सामने तैयार नहीं होती। इसी क्रम में तो नहीं लेकिन अन्य संकलनों में ऐसी कहानियां हैं जिनमें दैहिक चेतंना को सर्वोपरि ठहराया गया है।

''दो घर'' के भारतीय ने बिना शादी के ही विदेश में पूरा घर बसा लिया है।

'चीड़ों पर चांदनी' कहानी में अवैध बच्चों की बढ़ती संख्या पर आश्चर्य प्रकट किया गया है वस्तुतः सम्बन्धों के यथार्थवादी अनुभूत सत्य को निर्मल ने सारी कथा यात्रा में बड़े ही खुलकर नये अर्थ और नये सन्दर्भ प्रदान किये हैं।

(घ) यथार्थ के प्रति बदला हुआ दृष्टिकोण:-

समकालीन कथा साहित्य के सन्दर्भ में यथार्थ के सीधे टकराने की बात अक्सर की जाती है।

वस्तुतः पहली बात तो यह है कि समकालीन यथार्थ एक ठोस और ऐतिहासिक प्रक्रिया है। अभूर्त और सामान्यीकृत प्रक्रिया नहीं।

वास्तविक स्थितियों और सन्दर्भों के अंकन और परिप्रेक्ष्य के बिना यथार्थ स्थितियों की पहचान संभव नहीं टकराहट की बात तो दूर रही।

समकालीन कथा साहित्य में यथार्थ के उस पक्ष को उभारा गया है जो सामाजिक और मानवीय स्थिति और नियति के भयावय सन्दर्भों और अस्तित्व की बुनियादी समस्याओं से जुड़ा हुआ है। आज हिन्दी कथा साहित्य को यथार्थवादी नया मुहावरा मिला हुआ है।

वास्तविक स्थितियों के सन्दर्भ में यथार्थ जगत की पहचान बढ़ती है जिससे सम्बन्धों के धरातल पर यथार्थ का बोध स्वभावतः होता चलता है यही सही है कि आज का कथाकार मानवीय सम्बन्धों के जालो को अलग ढंग से बुनता चला गया है, जिससे ऐसे सम्बन्धों की कहानियां यथार्थ की ऊपरी सतहों से जुड़ी होंने के कारण यथार्थ का गहरा अहसास नहीं करा पाती।

यथार्थ की गहराई मन मस्तिष्क के भीतरी से भी सही मायने में जुड़ी हुयी है।

इसलिए आज के आदमी की भीतरी पीढ़ा और मूलभूत आन्तरिक संकट ऊपर उभरकर दृष्टिगत हो रहे हैं समकालीन जीवन का जो हिस्सा यथार्थ के नाम पर तथा साहित्य में प्रतिफलित हुआ है अधिकतर महानगर की संकटपूर्ण स्थितियों से बना है कथाकार निर्मल वर्मा ने भी महानगरीय सम्बन्धों को लेकर ही यथार्थ के प्रति बदलते दृष्टिकोण की बुनियाद रखी है।

महानगरीय यथार्थ का एहसास कराने के लिये यह जरूरी है कि नगर जीवन की विविध प्रक्रियाओं के गहरी समझ और पहचान हो।

कथाकार निर्मल वर्मा इसी दृष्टि से जीवनगत बदलते यथार्थ के भयाक्रान्त स्थितियों का बोध कराने में सफल रहे हैं।

'वे दिन' उपन्यास में मनःस्थिति का तनावपूर्ण भयावह स्वरुप पूरे तथ्य के साथ ठहर गया है तनाव में सहज हो पाने के दृष्टि यहां रचना के भीतर से उभरी है और उसकी सही पहचान कराती है कथा के पात्र हमेशा उलझे-उलझे कुछ ज्यादा ही अपने मन को अस्थिर बनाते हुये वर्तमान में जीते हैं। ऊंची-ऊंची दीवारों के मध्य बोना सा घिसटता चलता फिरता आदमी आज के यथार्थ बोध से कितना कुछ फीका हो गया है वह सब उपन्यासकार ने परिवेश सापेक्ष चित्रण में प्रस्तुत किया है।

'नीचे समूचा शहर था दिसम्बर के नीरव आलोक में सिमटा हुआ।

धूप में चमकती हुयी ऊंची नीची छतें गिरजों की सुई नुमा मीनारें--- और एक स्तब्ध सा कोलाहल, जो एक ऊंचाई पर पहुंचकर तटस्थ-------सा हो जाता है--- हम चुप खड़े रहे।

लगा जैसे एक शब्द भी उस मायावी जादू को तोड़ देगा जो हवा, धूप और गिरजों की मीनारों ने अपने आस-पास बुन लिया है। एक निर्वात सा सम्मोहन।'[1]

1- वे दिन, पृष्ठ 93

आज का यह जीता जागता परिवेशगत यथार्थ मानवीय नियति का भयावह साक्षात्कार कराता है, चेतना शून्य होकर वहीं किसी ओर बढ़ता ही चला जा रहा है।

मनःस्थिति को सही तरीके से साध पाने की बात कुछ दूर ही हो गयी है।

व्यक्ति इतना अधिक तनावग्रस्त है कि उसके मन के भीतर उभरती चेतना की परतें भी होठों तक तक आकर लुप्त प्राय हो जाती है।

लगता है कि हवा शब्दों को बाहर ले जा रही है।

महानगरीय संत्रास आज परिवेशगत स्थितियों के प्रति इतना गम्भीर हो गया है कि व्यक्ति को सही संदर्भों के साथ टिके रहना भी दुरूह होता जा रहा है। लेखक इस उपन्यास के विविध पन्नों के माध्यम से यही कहना चाहता है। कि हम बराबर ऊपर से कैसे भी दिखायी दें लेकिन भीतर से पूरी तरह टूट चुके हैं और जितनी भी धड़कनें शेष हैं वे सब ढलान उतरती हुयी किसी पड़ाव की तलाश में स्वतः ही ढुलकती जा रही है।

सम सामयिक यथार्थ का एक अपरिहार्य अंग है सोच और संवेदना।

आज के दबाव भरे संसार में आदमी की परेशानी उतनी कुछ बढ़ गयी है कि वह रोजमर्रा की जरूरतों को जुटाते हुये ही मर खप जाता है।

उसके मन की यथास्थित बदलते तेवर में पूरे तन को चुनौती दे रही है पर संवेदना के वह जटिल बोध को लेकर ही घिसट रहा है और उसे लगता है कि व्यवस्था का बिरोध करना तो दूर हम किसी के लिये कुछ भी नहीं कह सकते हैं।

यद्यपि कुछ अनिश्चित ढंग से वह अपने भीतर किसी चेतना भरी छुअन को संवेदना में स्थान देता रहता है किन्तु उसके मन की कातरता बड़ी अजीब है जिसे वह बेमानी से साथ ही महसूसता जा रहा है।

''वे दिन'' उपन्यास में सोच और संवेदना का वह स्तर जिले यथार्थ से कतराने का बहाना कहा जा सकता है स्पष्ट किया गया है।

जड़ता की भी हद हो गयी है जिससे आत्मीय सम्बन्धों के प्रति भी भावात्मक रुख की कोई गुंजाइश नहीं रह गयी है। लेखक स्त्री पुरुष के संवेदनात्मक उलझे हुये जीवन को नये अर्थ देता हुआ लिखता है- ''बाहें नंगी थीं हल्के पीले से रोयें बिजली में चमक जाते थे।

पहली बार उन्हें देखकर मुझे अपने भीतर एक बेमानी सी बेचैनी महसूस हुयी। अजीब सा भी लगा कि हम दूसरी बार मिल रहे हैं, लेकिन बातचीत में 'नयेपन' का भ्रम जरा भी नहीं लग रहा।

न पास होने का कौतूहल न दूर होने का ठंडापन।''[1]

उपन्यासकार विस्मय से उनके संवेदनात्मक हौसलों को यथार्थ रंग देता है। उनकी परस्पर क्षण भर के लिये निगाहें चेहरे पर टिक जाती हैं, और मन चाहे ढंग से एक दूसरे को देखते रहते हैं लेकिन भीतरी संसार में इतना अधिक बल पड़ जाता है कि वे कुछ कहना भी चाहे तो भी आवाक रह जाते हैं।

यह सम्बन्धगत यथार्थ आज तनाव में बह रहा है। तटस्थ और निर्मम दृष्टि से इस यथार्थ को संवेदना से काटकर यदि अलग देखा जाये तो आदमी की भीतरी पीड़ा ही प्रस्फुटित होगी।

1- वे दिन, पृष्ठ 57-58

उलझे हुये पेचीदा सम्बन्ध व्याप्त तनाव की भूमिका बनाते जा रहे हैं।

आज के मनुष्य के हालात और अनुभव को सामाजिक स्थिति के वास्तविक सन्दर्भ में रखकर देखने से ही यथार्थ के सही धरातल की पहचान हो सकती है।

निर्मल जी सिर्फ यथार्थ ही नहीं जीते बल्कि सूक्ष्म संवेदनाओं की उन करवटों को भी अवचेतन की दुनिया में टांककर जिन्दगी की बुनावट को सुदीर्घ और मजबूत बनाते हैं।

'एक चिथड़ा सुख' उपन्यास का कथानक यथार्थ के बदलते स्वरूप का वह आंशिक सत्य है जिसके इर्द-गिर्द सब कुछ यूं ही बहजा जा रहा है।

बिट्‌टी और नित्ती भाई की खुली आंखें जब परिवेश में एक पल ठिठक जाती है तब संवेदात्मक यथार्थ ही हल्की सी धुंध में तैरने लगता है।

कथाकार का कथन सत्य है ------- ''नित्ती भाई कुर्सी से उतर आये बिट्‌टी के साथ फर्श पर बैठ गये ----- वह शायद कुछ कहना चाहते थे, किन्तु उन्हें कुछ समझ नहीं आ रहा था, कैसे अपनी पीड़ा के दलदल से ऊबकर उस दायरे में जा सके, जहां बिट्‌टी थी।''[1]

संधान्त यहां कथानक का प्रारम्भिक बिन्दु है।

यथार्थ बनाम त्रासदी व्यक्ति के साथ जुड़ी हुयी है।

अचानक ही अंतरंग संसार जटिल और उलझी हुयी मनःस्थिति को उजागर करता चलता है।

इस प्रकार की कहानी का दौर उस मानसिकता का परिचायक है जिसमें गत्यात्मक जहर बुझे दर्द को हिस्सा बनाया गया है।

कह सकते हैं कि मानसिकता का बोध जगाने में उपन्यासकार पूरी तरह यहां सफल रहा है।

इसी कोटि का तथ्य ''लाल टीन की छत'' उपन्यास में काया और अन्य पात्रों के साथ जुड़ा हुआ है

देखिये वह अपने बिस्तर पर बैठी है कुछ देर तक दीवारों को अपनी पुतलियों पर घूमते हुये देखती रही।

फिर सहसा आंखें ठहर गयीं।

पीड़ा भी ठहर गयी।

--------काया ने अपने भीतर देखा था।

-----वह अब भी किसी कुदाली की तरह एक बहुत ही पुराने ढेर, पिरमिड को खरोंच रही थी, जो भीतर वर्षों में जमा होता रहता है- और फिर अचानक एक झटके, एक चीख, एक दुखपन, का धक्का खाकर दुबारा से बहने लगता है।

काया उस शाम बिस्तर पर बैठी हुयी उस बहाव को देखती रही, जो भीतर से बाहर न जाकर भीतर-भीतर ही अपनी जगह बदल लेता है। कितने सूखे ढहे हैं, ---------जो पिघलने की प्रतीक्षा में खड़े होते हैं।[2]

रचनाकार निर्मल वर्मा ने परिवेश के यथार्थ को घटनाओं और स्थितियों के माध्यम से व्यक्त किया है, तथा कहानियों के संरचनात्मक विधान में ऐसे संकेत दिये हैं जिनमें भावात्मक तनाव तीव्र छटपटाहट के साथ उतरता चला गया है।

दरअसल रचनाकार को परिवेश के अन्तर्मन के यथार्थवादी होकर गुजरना पड़ता है।

1- एक चिथड़ा सुख, पृष्ठ 95 2- लाल टीन की छत, पृष्ठ 152

किसी भी स्थिति को अमृतमन से जोड़कर देखने की कथा पद्धति परिवेश के बदलते यथार्थ को समेटती रही है।

कहानी की रचना प्रक्रिया से परिचित लोग जानते हैं कि परिवेश गत स्थितियों और कहानीकारों के आत्मीय अनुभव और प्रसंगों और संदर्भों के बीच संतुलन जरूरी है। तभी कथात्मनक अनुभव को तत्कालिता और निजबद्धता से मुक्ति मिल सकती है।

इस पद्धति से रचनाकार निर्मल ने अपनी कहानी में यथार्थ के बदलते परिवेश में तराशते कथ्य को उपजीव्य माना है।

उसमें वही उलझी हुयी मनःस्थिति है और बोझिल मानसिक उधेड़बुन की तीव्रता।

कहानीकार निर्मल वर्मा यथार्थ के बदलते आयामों पर सत्रास्तगत व्यर्थताबोध का हर जगह जिक्र करते चले हैं।

तनावग्रस्त पारिवारिक सम्बन्धों यही यथार्थ वेदना बनाम पीड़ा बन गया है।

'डायरी का खेल' कहानी का पात्र बिट्टी इतना अधिक वेदना से धनिभूत है कि उसे सारा परिवेश ही वेदना का पर्याय ही जान पड़ता है।

बिट्टी सचमुच मर्मान्तक धनीभूत पीड़ा को निर्लिप्त भाव से पीती चलती है बब्बू के हिलते होंठ आवाक होकर उस पीड़ा का विस्फोटन नहीं कर पाते। कहानीकार ने लिखा है------ ''डायरी का पन्ना'' जिस पर उस शाम बिट्टी ने टेड़े---मेड़े अक्षरों में लिखा था, अब पीला और पुराना पड़ गया है ---------उन अक्षरों में उसे खोजने की चेष्टा कितनी व्यर्थ है जो अब नहीं रहा।

--------- याद करने पर बिट्टी से जुड़ी कुछ बातें, कुछ घटनायें याद आती हैं।

-------कुछ दिन, कुछ घड़ियां, कुछ बिखरे से क्षण, जो मैने और बिट्टी ने एक संग जिये थे किन्तु बिट्टी का सत्य क्या इन बातों, घटनाओं, स्मृतियों का ही जोड़ मात्र है''[1]

बिट्टी की वेदना यथार्थ के बदलते आयामों के सन्दर्भ में आज भी सजीव है। आंसू जो बिल्कुल ठण्डे वंचना रहित होते हैं, जिनके बहाने से रोना नहीं होता है, दुख से छुटकारा नहीं मिलता वे हृदय की एक मर्मान्तक पीड़ा को निचोड़ते हुये बूंद-बूंद गिरते रहते हैं।

'डायरी का खेल की चाची की वेदना कुछ इस प्रकार की ही है। विवाह होने से पहले ही बिट्टी का सम्बन्ध टूट जाता है और चारों और गुमसुम सा अंधेरा झाड़ू बुहार कर सारे प्रकाश को अलग कर देता है। पीड़ा की दहलीज पर खड़े होकर कैसे बचा जाये इस तथ्य को आज की दुनिया बच निकलने के लिये सही निर्णय नहीं ले पाती।

इसीलिए जिन्दगी का सारा खेल अनजाने ही धुंधला, कुहासा और घोर अंधेरे में खुद ब खुद डूबता चला जाता है और अलगाव और सम्बन्धों की प्रतिबद्धता में आज इतना अधिक यथार्थवादी अन्तराल है जिसे सोचकर सोचक को एक पगली स्मृति ही महसूसती है।

परिन्दे की पात्र ललिका भी कुछ ऐसा ही उदाहरण है वह वर्तमान धागों में अतीत के पर बुनाने का प्रयास करती है पर कुछ नहीं पाती।

उसका कमरा भी छुट्टियों में खाली है और दिल भी। जैसे-तैसे अपने समय को काट रही है।

'वीक एण्ड' कहानी में कहानीकार ने उसे बच्चे की वेदना का चित्रण किया है। जिसका पिता प्रेमिका के साथ मिलने के लिये आता है।

1- परिन्दे, पृष्ठ 30

बच्चे का वह सूक्ष्म तार जैसा मन बार-बार इस यथार्थवादी सम्बन्धों को छूता चला जाता है। सम्बन्धों का अंधेरापन बहुत दूर तक बेमानी रूप को ढक नहीं पाता।

प्रेमी प्रेमिका भले ही आपसी ग्रंध प्यार समझकर भूखे होठों और इंद्रियों से समटते चले जायें किन्तु और सापेक्षपात्र इन बातों को वैसे भी नहीं स्वीकारते इसलिए सम्बन्धों की दुरहिट और यथार्थ का बदला हुआ रूखा हर जगह भरता रहता है

कहानीकार ने कहा है......"आदमी ने कहा तुम अब तो नहीं रही?

वह बच्ची को छोड़कर उसके पास आता है......जैसे अभी-अभी उसका ख्यालच आया हो।

मैं अचम्भे से उसे देखती हूं फिर उसे खींचती उसकी दुनिया से अपनी पीड़ा तक और वह घिसटता आता है नीचे जहां मैं हूं और बच्ची हक बक आंखों से देखती है.......नीचे झांककर हमें देखती है।"[1]

सम्बन्धों के यथार्थगत बदलावों का यह उदाहरण इस तथ्य की पुष्टि करता है कि सम्बन्ध उस मकड़ी के जाल की तरह है जो हवा से हिल जाते हैं और कभी कभार टूट भी जाते हैं वो घर को प्रौढ़ प्रवासी पात्र अपने अलग ही ढंग की वेदना से व्यथित है।

वह भले ही नयी पुरानी गृहस्थी सुखमय संसार को अवश होकर झेलता जाये लेकिन उसके मन का अपराध बोध उसे देर तक एक सम्बन्ध यथार्थ पर खड़ा रहने के लिये स्वीकृति नहीं देगा।

उसकी अपनी पीड़ा कुछ अलग ही किस्म की है

........"उसे रात अंधेरी छत पर यह शब्द बेगाना- सा लगा,

जिसका नाम सुना था, देखा कभी नहीं।"[2]

लगता है वह प्रवासी अत्रप्त भूखी जिज्ञासा के कारण सुख के व्याहमोह में जकड़ गया है और उसके पीछे-पीछे चलने लगा है।

इतना ही नहीं उसकी चाल ढाल से लगता है उसकी आंखों में 'वो घर' की अजीब व्यथा है और एक क्षण ऐसा आता है कि उसके चारों ओर भय की गंध महसूसती है जिससे वह जानवरों की तरह इर्द गिर्द सिर उठाकर उस गंध से छुटकारा पाना चाहता है। कहानीकार निर्मल ने पहाड़ कहानी में यथार्थ जीवी पति पत्नी के सम्बन्ध निर्वाह को बहुत ही बारीकी से निरूपित किया है। पति-पत्नी एक पहाड़ी पर होटल में ठहरते हैं। वे कुछ अतीत के पृष्ठ अपने साथ जोड़े हुये हैं। इस जुड़ाव में वे देर तक रहना चाहते हैं, मोनो किसी बहुत पुरानी चीज को पहचान पाने की चेष्टा कर रहे थे। उनके साथ अपना बच्चा भी है। बच्चा बैंच पर सिर टिकाये सो गया है। पति सशंकित स्वर में कहता है---------"मुझे लगता है" हमें इसे यहां नहीं लाना चाहिये था। -----उसने बच्चे की ओर देखा और फिर सहसा उसकी आंखें अंधेरे के उस सिंदूर धब्बे पर उठ गयीं, जहां कुछ देर पहले पहाड़ थे।

और अब कुछ नहीं--------

जहां बरसों पहले उन दोनों ने कुछ बहुत सुखद रातें गुजारी थीं। अचानक उसका मन उल्लसित सा हो आया।"[3]

इसी क्रम में 'जलती झाड़ी', 'दहलीज' और 'अन्तर' ऐसी कहानियां हैं जिनमें चिन्तन यथार्थ

1- बीच बहस में, पृष्ठ 41

2- बीच बहस में, पृष्ठ 83

3- जलती झाड़ी, पृष्ठ 65

को नग्न भाव से उधेड़ा है और उकेरा गया है।

एक 'शुरुआत' कहानी में क्षेत्रगत यथार्थ का भी वर्णन है। लेखक महसूसता है कि यह यूरोप आने की ललक को रोक नहीं पाया और इसी कारण अपने घर से हजारों मील दूर चला आया है।

स्टीमर पर यात्रा करता हुआ वह सहयात्री से प्राग और इण्डिया के बीच की दूरी तथा अन्य अनुभूत- गत सत्यों को कहने लगता है।

जब ऐसी अनुभूत तथ्यता को वह स्वीकारता है तब उसके मन पर एक ही साथ बिधी हुयी तमाम स्मृतियां उभर आती हैं------आई मीन-------इण्डिया क्षण भर के लिये वह एक शब्द मेरी आत्मा में बिध सा गया है।

समुद्र की अंबाध, असीम गहनता की मानिंद रहस्यमय यह शब्द जैसे अचानक भूली-भटकी स्मृति सा मेरे पास चला आया है.........इस शाम स्टीमर पर।''[1]

देशगत भावात्मक लगाव का यह नजरिया बहुत ही विलक्षण है कोई कितनी बही दूर क्यूं न चला जाये फिर भी जिंदगी भर अपने से जुड़ने वाले शब्द रंग भरे आयामों में रंजित बने रहते हैं। कहानीकार पात्रगत मनःस्थिति का यथार्थ के बदलते प्रतिमानों में पूरी कहानी के मध्य करता चलता है।

सम्बन्धों के यथार्थ जगत में निर्मल ने यौनगत सम्बन्धों की चर्चा बहुत की है। इनकी ढेर सारी कहानियां प्रेमी और प्रेमिका के रागात्मक क्रियाकलाप से जुड़ी है। जिस प्रकार 'परिंदे' की लतिका जाने अनजाने ह्यूबर्ट की प्रतीक्षा किया करती है, उसी प्रकार 'लवर्स' की निन्दी भूल जाने वाले प्रेमी को तलाशती रहती है। निर्मल वर्मा के ये सारे रूमानी पात्र प्रावृत्तिगत यौन सम्बन्ध को और अधिक उभारने के लिये मजबूर हो गये हैं। 'माया दर्पण' की तरह चुपचाप आंखें मूंदकर सारी बातें बुआ को सुना करती हैं, उसी प्रकार 'धागे' की रुनी अपने विगत पति के बारे में अब भी परोक्ष में सब जान लेना चाहती है।

बहराल चाहे यौनगत सम्बन्ध हो या बंधे हुये सामाजिक सम्बन्ध इतना अवश्य है। कि कहानीकार ने इन सारे यथार्थ सम्बन्धों को प्रेम भाव में ही आकंठ डुबोया है।

''सुबह की सैर'' कहानी का पात्र निहालचंद्र इतनी बड़ी उम्र में भी भूखी खाली निगाहों से स्त्री को ताकते हैं। वह स्त्री उनके सामने एक बहुत छोटी लड़की है।

शायद बचपन की हर चीज छोटी होते हुये बड़ी होती है और बुढ़ापे की हर चीज बड़ी होते हुये भी छोटी है। निहाल चंद्र और उस लड़की के बीच हुये संवाद को यथार्थ किन्तु भावनात्मक सम्बन्ध पर लेखन ने टिप्पणी देते हुये लिखा है--------अचानक निहाल चंद्र चौंक गये। जैसे लड़की ने पीछे मुड़कर उनके कानों में फुसफुसाया हो, और-----प्रेम नहीं तो क्या?

क्या तुम किसी से प्रेम कर सके निहाली?

कर्नल निहाल चंद्र?

एक धक्का सा खाकर वे होश में आये।

किसकी आवाज थी या सिर्फ छल और धोखा था। भीतर की अटपटी पुकार जो बुढ़ापे के जंगल में उठती है।[2] निहाल चंद्र लावारिस सी तपती आवाज ने इधर-उधर दृष्टि फाड़कर होठों से

1- जलती झाड़ी, पृष्ठ 47 2- कौवे और काला पानी, पृष्ठ 79

कुछ बुदबुदाते रहते हैं, न प्रेम है और न लगाव है, न मोह है, न पीड़ा, न पत्नी का चेहरा याद आता है न बेटे की याद।

ऐसी स्थिति में सिर्फ निहाल चंद्र ही रह गये थे। कहानीकार व्यक्ति के मनोवैज्ञानिक सत्य को यहां पूरी तरह से उभारना चाहता है। वस्तुतः सम्बन्ध के जितने भी सिरे हैं। वे सब मूलतः स्त्री पुरुष के ऐन्द्रिक आयामों से ही जुड़े हैं, भले ही वर्मा ने निहाल चंद्र जैसे पात्र को मजाक के कठघरे में खड़ा कर दिया हो।

'अमालिया' कहानी में भी देह सम्बन्ध प्रमुख है।

''वीक एण्ड'' की नायिका हर सप्ताह देह सुख के लिये ही प्रेमी से मिला करती है।

''खो'' में दोनों बहनें दैहिक सुख की कल्पना कर रागात्मक हो जाती हैं। लेकिन निर्मल की कुछ एक ऐसी भावात्मक कहानियां हैं, जैसे ''पिक्चर पोस्ट कार्ड'' जिसमें कहानी का परेश मात्र बहुत ही भावुक पात्र है, और नायिका नीलू बहुत ही बौद्धिक।

इसीलिए इन दोनों के यथार्थगत सम्बन्ध को मोह भंग और ऊब के कहानीकार ने चित्रित किया है।

नीलू परेश को बाहर भेज देना चाहती है और परेश नीलू से एक क्षम के लिये भी अलग नहीं होना चाहता इसलिए उनके बीच रागात्मक अनुभव बहुत देर तक नहीं पनप पाता।

कहानीकार ने व्यक्ति की इस सहज प्रवृत्ति का यथार्थ भी विश्लेषित किया है------- जैसे ''मुझे लगता है, जैसे यह बहुत दूरी की निगाह है, जो मुझे बहुत पास से देख रही है।

मैं सोचता हूं कि मैं यह बात नीलू से कहूं किन्तु मैं चुप रहता हूं।''[1]

इन दोनों की गहरी दोस्ती भी नीलू के बौद्धिक झुकाव के कारण फीकी पड़ी जाती है।

प्रेम और सहानुभूति के होते हुये भी सम्बन्धों के अलग-अलग आयाम परिलक्षित हो रहे हैं।

कथाकार यथार्थ के प्रति बदला हुआ दृष्टिकोण अनुभव प्रसंगों और विभिन्न संदर्भों से कथायात्राज में मूर्तमान करता चला है।

मानवीय रिश्ते आज अनेक अर्थ स्तरों पर बहुविधि, बहुमुखी होते जा रहे हैं। इनकी कहानियों में ऐसे ही मानसिक उधेड़बुन के अन्तर्मुखी पात्र जगह-जगह चर्चित है।

सारा कथा साहित्य पराये और अजनबी सम्बन्धों के चुभने जाने का बोध कराते चलते हैं।

मानवीय प्रवृत्ति का यह और रागात्मक दृष्टि से खतरा उत्पन्न करता है कभी कहीं एक पक्ष अधिक चटकीला और अति रंजित हो जाता है और दूसरा पक्ष उदासीन और बौद्धिक। ऐसी स्थिति में यथार्थगत सम्बन्ध भी अपना बोध खो देते हैं और उनमें सोख बदलाव आ जाता है। संवेदनात्मक स्थिति तो आज बिल्कुल ही बौद्धिकता के घेरे में फंसकर चुभती चली जा रही है।

इसलिए कथाकार ने उन कोणों को तथा यात्रा में प्रशस्त किया है जिनका बदलते प्रतिमानों से सम्बन्ध है।

(ड़) यथार्थ के प्रति लेखकीय तटस्थता:-

आज का कथा साहित्य और साहित्यकार यथार्थ के विभिन्न रूपों को उभारता हुआ किसी

1- परिन्दे, पृष्ठ 97

एक रूप तक सीमित या रूढ़ नहीं हुआ है।

इसलिए कहा जाता है कि यथार्थ न कोई पैटर्न है न प्रेम और न फार्मूला।

वह एक ऐसी संशलिष्ट प्रक्रिया है जिसमें विसंगतियां हैं जो उभरती हुयी संघर्ष चेतना को अपने में अन्तर्भूत करती चलती है।

आज का कथाकार भी हूबहू मुद्रा स्थिति को देखकर ढहते हुये आदमी को कथा कह रहा है।

समसामयिक यथार्थ का यह चरण मानवीय करुणा और साहनुभूति के लिये निरर्थक हो गया है। मानवीय स्थिति से जुड़ी यथार्थ की कटुता बुरी तरह आज कथा साहित्य में परिलक्षित हो रही है। परिवेश गत गम्भीरता की पारदर्शक जीवन्तता अब रहस्य नहीं रह गयी है।

स्पष्ट है कि कल्पना, भय या सुख का कोरा चित्रण आज कथा साहित्य में बिल्कुल ही नहीं है व्यक्ति की भीतरी और बाहरी तनावपूर्ण जिन्दगी अनेक सन्दर्भों में कुछ नया देती जा रही है। सम्बन्धों के बदलते प्रतिमान भावात्मक संवेदना से दूर होते जा रहे हैं आदमी की निरीहता, भय और घुटन का आज के कथा साहित्य में विधान हो रहा है।

इस प्रकार के साहित्य में लेखकों ने आज के आदमी की बेबसी, लाचारी, यातना और अनिश्चय का बोध अनेक प्रतीकों व बिम्बों के प्रश्रय में प्रकट किया है लेकिन लेखक वर्ग इन सबसे बीच निर्लिप्त भाव से वास्तविंक संसार खोजता जा रहा है।

यह अक्सर देखने में आया है कि जिस किसी भी लेखक ने कथा विधान में कल्पित संसार रचा है वह यथार्थ से कोसों दूर और आज की प्रासंगिकता में अर्थहीन बन गया है।

कथाकार निर्मल वर्मा का कथा साहित्य यथार्थवादी पक्ष का जीता जागता उदाहरण है। उन्होंने कथाओं में अनुभूति का नया संस्पर्शमय और नया कथा मुहावरा दिया है जिसमें ब्योरे हैं, संवाद है, वाद-विवाद है, लम्बी बहसों के टुकड़े हैं और इन सब को रूपान्तरित करने वाली पद्धति है उदाहरण के तौर पर इनके इन तीनों उपन्यासों में अनुभव का सामाजिक, सामयिक अर्थ विस्तार है। उनके सारे पात्र अधिकतर अस्तित्व या आचरण के संकट तक ही अपनी बेचैनी को ले जा पाते हैं। उनके भीतर एक पागलखाना है, विद्रोही विचारों का भण्डार है। उन्होंने कभी भी समझौता वादी की पोशाक नहीं पहनी है। इस प्रकार उनका आधुनिक पात्र एक नये संकट के सामने यथार्थ जीवी होकर खड़ा तो हो जाता है। इस संकट की अनेक विरोधाभास पूर्ण परतों को निर्मल ने अपने इस उपन्यास के पात्रों में उघाड़ा है। "वे दिन" उपन्यास क्रिशमस उत्सव धर्मिता में लेखकीय निवैयक्तिक दृष्टि का पता तब चलता है, जब वह उत्सव में सम्मिलित होकर उछाले गये तत्कालीन माहौल को शब्दों में बांधता है-------- "क्लब गाती हुयी लड़की की आवाज उससे गुजरकर सारे स्क्वायर में फैल जाती है-------- एक विचित्र सा पीला आलोक गीली सड़कों पर ठहर जाता है और उनके ऊपर किसी शराबी की देह देर तक डगमगाती रहती है।

कहां जा रहे हो।

उसने मेरा हाथ पकड़ लिया।

---------हम यहां ज्यादा देर नहीं रहेंगे-------मैने कहा।

तुम थक गयी हो?

यह कौन सी जगह है, यहां एक थियेटर है।"[1]

1- वे दिन, पृष्ठ 132

उपन्यासकार उस माहौल में विंयर की गंद और ओवरकोटों की छायायें दूर फासले से देखता जा रहा है। वह बिल्कुल सहज आंखों से यह सब देखकर असमंजस में पड़ जाता है। परिवेश की उत्तेजना भरी यह गंध एक-दूसरे को खींचती चली जाती है।

लगता था सबको यह झेलना एक जैसा ही सुख है, एक दूसरे न परस्पर बोलते हैं और न बाहरी व्यक्तित्व का दुराव ही रखते हैं। तटस्थता के ऐसे परिवेश को सभी भोगते जा रहे हैं इस प्रकार के अनेक उदाहरणों से उपन्यासकार का आधुनिकता बोधीय यथार्थ जगह-जगह प्रस्फुटित होता गया है।

स्त्री पुरुष के यथार्थवादी सम्बन्ध को भी लेखक ने बहुत ही सामान्य ढंग से यौनगत संदर्भ में अनुशीलित किया है देखिये------ ''ये स्टूडेन्ट हैं---------यह हर साल क्रिशमस के छुट्टियों में रात को इसी तरह घूमते हैं।

------लड़के-लड़कियों ने उसे चारों ओर से घेर रखा था।

अंधेरे में सिगरेटों की बिन्दियां चमक जाती थीं।''[1]

लेखक ने इस तरह की थिरकनों के बीच धुन्धमय रोशनी का इजहार किया है।

लेखक ने विदेश में जन्मी उन्मादिता के किनारे खड़े होकर आनंद लेता चलता है विदेशी स्त्री पुरुष के कथ्य में यह सारी बातें बहुत ही सहज हैं जिन्हें कथाकार ने ''लाल टीन की छत'' उपन्यास के भीतर सतरंगी रूपों में देखा है। काया की मनःस्थिति और मन के ढेर सारे सुख जब पिघलते चले जा रहे हों, तब उनमें एक अजीब सी सनसनाहट बैठती चली जाती है। काया ने उस औरत को जो उन्मादी आंखों से अपने आशा भरे रास्ते तय कर रही थी, देखा तो उसकी सांस चढ़ने लगी जैसे वह औरत के हातों तले भर रही हो, तिनका-तिनका होकर बिखर रही हो।

लेखक ने एक यथार्थवादी आयाम इस प्रकार प्रस्तुत किया है------वह अपनी पीली कमीज के बटन खोलने लगी फिर उससे उठाया------नीचे भी गरम बनियान थी उसे भी ऊपर कर दिया तब उसकी नंगी पीठ दिखायी दी-------सफेद और साफ।''[2]

वह औरत कहती जाती है कि वह आदमी तो अब नहीं रहा लेकिन निरूपण इन प्रसंगों में करते हुये यही जाहिर किया है कि वह कि आंखों में घिरी हुयी उदासी को यथार्थ के बुनियादी धरातल पर सब कह देना चाहते हैं, लेकिन उनकी दृष्टि निर्वैक्तिक तटस्थ ही है। ''एक चिथड़ा सुख'' उपन्यास में जीवन गत उलझे हुये पेचीदे सूत्रों को कथाकार ने जगह-जगह दर्शाया है। बिट्टी और नित्ती भाई के बीच एक रूमानी प्रवृत्ति का प्रेम है।

नित्ती भाई सूनी आंखों से उसे देखते रहते हैं और बिट्टी एक लम्बे क्षण तक खिड़की की ओट में फटी-फटी आंखों से नित्ती भाई को देखती रहती है। इस परिणय सूत्र के मध्य लेखकीय तटस्थता वहां निर्विकल्प रूप में प्रकट होती है जहां बिट्टी पुराने दिनों की सुरंग में खो जाती है। कथाकार कहता है--------सिर्फ बिट्टी के आंसू किसी पुराने रोने के वासी अवशेष थे, जो इस क्षण बाहर निकल आये थे, बह रहे थे वह उन्हें बहने दे रही थी।''[3]

बिट्टी की इन मनःस्थिति का अन्दाज करता हुआ लेखक कहता है कि ऐसे बोल रही थी, जैसे सोते हुये बोल रही हो। उसका दिल और दिमाग एक भूत की तरह अतीत से चिपका हुआ था।

1- वही, पृष्ठ 141   2- लाल टीन की छत, पृष्ठ 173

3- एक चिथड़ा सुख, पृष्ठ 95

ठहरा हुआ अतीत वर्तमान में पिघल रहा था। एक प्रेम में चढ़ा हुआ रोशनी का धब्बा उसके चेहरे पर उतर आता था। इन परिवेशगत सारी स्थितियों का अनुशीलन करने पर यही स्पष्ट होती है कि यथार्थ के विभिन्न दायरे व्यक्ति के भीतरी सन्नाटे के साथ छिपे हुये मूक सम्वादों में लेखक ने अभिव्यक्त किये हैं।

बिट्टी का सारा जीवन मानो ठिठुर गया था और धीमे-धीमे भीतरी अस्तर को अलग-थलग करके हटाने का प्रयास कर रही है।

अनदेखी जिन्दगी के दौरान यह गुजरा सफर शायद उसके लिये आखिरी था, इसलिए वह समूची भयावहता को लेकर न जल ही सकती थी और न ही बुझ सकती थी।

कथाकार निर्मल देश--विदेश व्यापी को यथास्थिति को यथार्थ के तटस्थ से संवेदात्मक चित्र देते चलते हैं। वे समकालीन जीवनगत बोध को आधुनिकता से जोड़ते हुये राजनीतिक संदर्भों में प्रतिक्रियात्मक दृष्टि से जटिल बनाते चलते हैं। मानव स्थितियों के सीधे मूल्य यथार्थ के धरातल उन्होंने जगह--जगह अभिव्यक्त किये हैं। आज के मनुष्य की मूल्यरहितता का आभास देने वाली मनःस्थिति उसे एक अमानवीय शिकंजे में कसती जाती है,

जो मनुष्य के दिशाबोध के लिये घातक है। उपन्यासकार वर्मा ने समसामयिक स्थितियों का लेखाजोखा इन्हीं कथ्यात्मक माध्यमों से जगह-जगह प्रकट किया है। ऐसा दावा तो नहीं किया जा सकता लेकिन यह सत्य है कि संक्रान्त चेतना का गहरा संवेदनात्मक बोध इनके उपन्यासों में खुलकर हुआ है।

"बीच बहस में" कहानियों के संकलन में भूमिका में युग यथार्थ का देशी-विदेशी दृष्टिकोण निर्वैयक्तिक दृष्टि से कहानीकार ने स्वयं ही स्वीकार किया है---------" सड़क और सिनेमाघरों की दुनियाओं के बीच जो अन्तराल हमारे देश में है वह अन्यत्र कहीं नहीं। स्कूल से लौटते हुए भूखे-प्यासे बच्चे घंटों बसों की प्रतीक्षा में खड़े रहते हैं। चिलचिलाती धूप में उनके सूखे बदहवास चेहरे एक तरफ सिनेमा की फिल्मों में कार्न फलेक्स खाते चिकने चमचमाते चेहरे दूसरी तरफ।

इन दोनों के बीच तालमेल बैठाना मुझे असम्भव लग रहा है।

कोई चीज अपने में 'अश्लील' नहीं होती, एक खास परिवेश में अवश्य अश्लील हो जाती है।

चेकोस्लोवकिया के बाद किसी रूसी नेता के मुंह से क्रान्ति की बात उतनी ही अश्लील जान पड़ती है, जितनी एक ऐसे भारतीय मंत्री के मुंह से समाजवाद की प्रशंसा, जो इनकम-टैक्स देना भूल गये हों।"[1]

यह अन्तराल हर देश में है।

युग युगार्थ की सच्चाई एक अद्भुत अजीब सी संकल्पना है जिसे आदमियों की भीड़ में हम फड़ताल कर सकते हैं।

यह यथार्थ बोध सम्बन्धों की गहरी संवेदिता, कटुता, रंगभेद की कसक, युद्ध का आतंक, अत्याचार बेकारी की विभीषिका, भूख की नग्न अग्नि लिये हुए है। युद्ध का आतंक एक विध्वंस निर्मल के पात्रों को जब तक आच्छादित करता चलता है। विध्वंस के अवशेष भी युद्ध की यथार्थ स्मृति दिलाते हैं। "माया दर्पण" कहानी में लड़ाई के दिनों जो बैरक बनाये गये थे वे अब उखाड़े जा रहे हैं।

1- बीच बहस में, पृष्ठ 15

रेत और मलबे के टोह ऐसे खड़े हैं मानो कच्ची सड़क के माथे पर गुमड़े निकल आये हों।

आधी टूटी इमारतें सूखे नग्न कंकालों की खड़ी हैं। तरन की दृष्टि में यह सब युगवादी यथार्थ विध्वंस लेखक ने तटस्थता से इस प्रकार निरूति किया है-----------"दूर से निरन्तर सुनायी देता है, पत्थर तोड़ने मशीन का शोर, दैत्य के धुरीटों की तरह धूर्र-धूर्र..............दोपहर की नींद के कच्चे कगारों पर ये आवाजें हल्की लहरों जैसी टकराती हैं।"[1]

विध्वंस के समय में उजड़े हुए परिवेश को उदासीन नगरों में कहानीकार ने भलीभांति चित्रित किया है। "अमालिया" कहानी में लड़ाई के दिनों जो मकान ढह गये थे।

उनका मलबा अभी भी जहां-तहां पड़ा दीख जाता है। यह सब घोर यथार्थ जिसका निर्मल वर्मा जी तटस्थ भाव से निरूपण करते चलते हैं, का वर्णन है।

लिखा है...........दोनों तरफ ऊंचे मकान थे......पुराने और गये.........बीते।

लेकिन अंधेरी गलियों में जो मलबा अभी तक पड़ा है जब चांदनी रात होती तब मलबे के नीचे दबे पिरामिडों में हमें अजीब सी चीजें मिल जाती हैं...........++++++++++++वह एक बहुत पुराना शहर था, और चांदनी रात में हमें लगता जैसे हर दीवार के कोने में, हर पत्थर के नीचे कोई ऐसा रहस्य छिपा है, जो हाथ बढ़ाते ही पकड़ में आ जायेगा।"[2]

दरअसल ब्राजीलियन के उदासीन मकान आज भी मिट्टी के ढेर में फंसे हुए हैं। मकान की नग्न दीवारें हर राही को रोक-रोक कर कहतीं कि उनकी युद्धगत यथार्थ स्थिति कुछ भिन्न ही रही है। लेखक तटस्थ भाव से यही कहता चलता कि बर्लिन की पुरानी इमारतों पर उसकी निगाहें जाती हैं तब कुछ वैसा ही भयावह भारीपन और कुछ वैसी ही सूनी वीरान आंखों सी खिड़कियां, कुछ फासले पर जली हुयी ईंटें और टूटी दीवारों का मलबा दिखायी दे जाता है। लड़ाई को खत्म हुए मुद्दत बीते लेकिन अभी भी उसके मिटे बूझे घाव जहां-तहां उभरे हुए हैं। इस प्रकार के निर्वैक्तिक दृष्टिकोण कहानीकार ने युग यथार्थ के प्रति एक पारदर्शी रवैया अपनाया है।

"डेढ़ इंच ऊपर" कहानी में आततायी पुलिस का भयावह चित्रण प्रस्तुत कर लेखक ने युग यथार्थवादी उन आयामों को चुना है जिन पर आज भी बड़ी बेसब्री से बहस की जाती है।

इस कहानी में पत्नी से पेम्फलेट मिलने के पश्चात पुलिस पति को पकड़ ले जाती है।

उसे उस समय तक पीटा जाता है जब तक वह अपनी चेतना नहीं खो देता तथा वे उस समय तक प्रतीक्षा करते रहते हैं जब तक उसकी चेतना नहीं लौट आती।

यद्यपि इस कहानी में पति निर्दोष है लेकिन पत्नी जमीन अधिकारियों की निगाह में दोषी है, फिर भी दण्डित पति को ही किया जाता है।

कहानीकार कहता है..........'जर्मन अधिकारियों की आंखों में यह सबसे संगीन अपराध था। पुलिस ने यह सब चीलें खुद मेरी पत्नी के कमरे से बरामद की थीं........और आपको यह बात शायद काफी दिलचस्प जान पड़ेगी कि खुद मुझे उनके बारे में कुछ मालूम नहीं था।

उस रात से पहले तक मैं और वह एक कमरे में सोते थे, प्रेम करते थे..........और उसी कमरे में कुछ ऐसी चीजें थीं जो उसका रहस्य थीं, जिसका मेरा कोई साझा नहीं था।'[3]

पति पत्नी के बीच इस बदलते यथार्थ का लेखक ने युगानुरुप ही समाकलित किया है। सात

11- जलती झाड़ी, पृष्ठ 21

2- पिछली गर्मियों में, पृष्ठ 73

3- वही, पृष्ठ 40

वर्ष की विवाहित जिंदगी के बाद भी पति अपनी पत्नी कीं चीजें कुछ ऐसे टटोल रहा था जैसे उसका पति न होकर भेदिया पुलिस का कोई पेशेवर नौकर हो। पति-पत्नी के मध्य ऐसे सुलगते प्रश्न बड़े ही मार्मिक ढंग से कथाकार ने निरूपित किया है। दरअसल आज यह कल्पना भी नहीं की जा सकती है कि इस युग के बदलते परिप्रेक्ष्य में दैनिक जिंदगी के साथ-साथ पति-पत्नी एक दूसरी जिन्दगी भी जी लेते हैं।

पति इस कहानी में बार-बार यही महसूसता है कि उसकी पत्नी कुछ ऐसी जिन्दगी जी रही थी जो उसे अलग और उससे कुछ वास्ता ही नहीं रखती थी।

अगर पुलिस न पकड़ती तो पति जिंदगी भर यही समझता रहता कि उसकी पत्नी वही है जिसे जानता है।

कहानीकार स्त्री के चरित्र विशेष पर भारतीय विचारकों की दृष्टि से टिप्पणी करता है कि प्रेम किसी तरह का दुराव-छिपाव नहीं होता, वह आइने की तरह साफ होता है।

लेकिन आज का प्रेम कुछ भिन्न है।

अब प्रेम करने का अर्थ अपने को खोलना नहीं है, बल्कि सब कुछ समेट लेना है जो समेटा जा सके।

इस तरह के निवैतिक यथार्थ पहलू कहानीकार ने पूरी कहानी में जगह-जगह प्रकट किये हैं। "लंदन की एक रात", "सितम्बर की एक शाम", "पिक्चर पोस्टकार्ड", "कुत्ते की मौत" आदि ऐसी ही कहानियां हैं जिनमें कहानीकार ने बेकारी से घिरे व्यक्ति की कथा-व्यथा को निरूपित किया है।

"सितम्बर की एक शाम" के नायक की उम्र 26 वर्ष है वह बेकार है, मानो अरसा हुए दुनियां पीछे छूट गयी है। उसकी मनोदशा का चित्रण दर्शनीय है।..............सितम्बर 1955 की शाम............आयु 26 वर्ष...........एक युवक तितली को घास पर उड़ता हुआ देख रहा है। + +++++++++++++++++ +++++++++++ बारिश में भीगता हुआ, वह सड़कें पार करने लगा। बहुत से आदमियों की भीड़ में वह भी एक था। उसका चेहरा दूसरे आदमियों के चेहरे से अलग था................वह सब वही कर रहा था, जैसा साधारण तथा सब लोग करते हैं। + + + + + + + + + + + + + + + +और अचानक वह हंसने लगा।

इतनी बड़ी भीड़ में एक हंसता हुआ चेहरा। क्या कोई इतिहास में लिखेगा कि..............सितम्बर 1955 की शाम को सड़क पर चलती हुयी भीड़ में एक चेहरा हंसा था।[1]

26 वर्ष पुराना वह चेहरा गंदले पानी की तरह गदला गया था।

उसके सामने अपने आप पर सिवा हंसने के कुछ रह भी नहीं गया था। इसी तरह पिक्चर पोस्टकार्ड कहानी की सीडी और परेस एम. ए. करने के पश्चात बेकार है। कहानी का आरम्भ भी समाचारपत्र में रिक्त स्थान वाले पेन्सिल से निशान बना रहे सीडी से होता है...............''चाय पीते हुए मेरी निगाह अखबार पर ठहर गयी।''

सीडी मैग्जीन का दूसरा पन्ना देख रहा होगा, क्योंकि सामने वही पन्ना खुला पड़ा था। तीन-चार जगहों के हाशियों पर उसकी पेन्सिलों के निशान पड़े थे।''[2]

1- परिन्दे, पृष्ठ 112-113

2- वही, पृष्ठ 92

पते नोट करते-करते उसकी नोटबुक भर चली थी वह इस बार भी एप्लाई करेंगे नहीं तो ओवरऐज हो जायेंगे। परेश कुछ लिखता-पढ़ता भी है। उसने एक कहानी लिखी लेकिन दुर्भाग्य से प्रकाशक ने उसे भी वापिस कर दिया।

वे पत्र-पत्रिकाओं में राशिफल पढ़ते हैं और रोजाना अपने भाग्य की आजमाइश करते रहते हैं।

''कुत्ते की मौत'' कहानी का नन्हे दस वर्ष पहले बी. ए. करके बेकार है।''[1]

''लंदन की एक रात'' का पत्र विली कहता है कि उसका दोस्त जर्मन गया है। वहां नौकरियों की कमी नहीं है।

कथाकार ने युग यथार्थ के और भी अलग आयाम टटोले हैं।

वेश्याओं की दरिद्रता का यदि यथार्थवादी नग्न स्वरूप देखना है तो ''पराये शहर'' कहानी में देखा जा सकता है।

''इतनी बड़ी आकांक्षा'' की जिप्सी लड़की को निरंतर उसी दरिद्रता को भोग रही है।

कथाकार निर्मल वर्मा आदमियत के यथार्थ जीवन प्रसंगों को सार्थक पंक्तियों में अभिव्यक्ति देते चलते हैं।

असंगत जीवन बिता रहे पात्रों के विशेष संदर्भों में लिखी गयी कहानियां कुछ विचित्र ही हो गयी हैं। इस संभावना से इंकार नहीं किया जा सकता कि यथार्थ चेतना के धरातल पर निर्वैयक्तिक दृष्टि से लेखक ने तूलिका से रंग भरे हैं और यह रंग न अतिरंजित हैं और न अति सरलीकृत।

हू-ब-हू जटिल और गहरे स्तरों में बैठे ये रंग भयावह यथार्थ की अभिव्यक्ति करते हैं।

वास्तविक स्थितियों और संदर्भों के अंकन में इसी कारण कथाकार हर कथ्य में सफल रहा है।

(च) राष्ट्रीय-अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिमान्नोमुखी विचारणा:-

समूचे संसार के जनजीवन में आज विश्व के भौगोलिक इकाई ने सुविधापूर्ण जिंदगी को नये आयाम प्रदान किये हैं।

राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण ने एक ओर जहां सद्भावपूर्ण विचारणा का प्रशस्तीकरण किया है वहीं दूसरी ओर स्वच्छंदवादी अवधारणा का खुलकर प्रस्फुटन किया है।

लेखक पर इन दोनों ही धाराओं का बराबर प्रभाव है। विश्व राजनीति में सुधारों की आवश्यकता को जहां महत्व दिया गया है वहीं लेखन के स्वतंत्र आयामों पर यथासंभव बल दिया गया है।

भारत की स्वतंत्रता आज भी गहरी समस्याओं में लिपटी हुयी है।

ऐसे ही भारत इतर देशों की आजादी की भ्रामक पदचिह्नों पर अनुसारित है।

रुचियों और महत्वाकांक्षाओं के अनुरूप देश-विदेश की व्यवस्था का स्वरूप बदलता जा रहा है। राष्ट्रव्यापी और अंतर्राष्ट्रीयव्यापी चरित्रों ने व्यक्ति विशेष के साथ वैचारिक संकट पैदा कर दिये

1- जलती झाड़ी, पृष्ठ 55

हैं। उनके आदर्श एक ओढ़ी हुयी चीज मात्र रह गये हैं। ऐसी स्थिति में हमारे समग्र कथा साहित्य की कथ्यगत संवेदना बदलती जा रही है।

राष्ट्रव्यापी आलोचन और उससे जनित आकांक्षाओं पर डा. लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय ने बहुत ही कटु शब्दों में बहुत कुछ कह दिया है।..................''पहले विदेशी लोग नोच खसोट करते थे अब कथाकथित देशभक्त, नेता, राजनीतिक पार्टियों को लाखों का चंदा देने वाले पूंजीपति लोग नोच खसोट और लूट-पाट करने लगे जिससे क्लर्क से लेकर इंजीनियर, ओवरसियर, सहकारिता चलाने वाले आदि दूसरे अधिकार प्राप्त लोग भी शामिल हो गये। बेरोजगारी, वैस्मय, निर्धनता तथा दयनीयता दिन प्रतिदिन बढ़ती गयी, इसके फलस्वरूप नयी पीढ़ी में कुंठा, वर्जना, घुटन, पीड़ा, निराशा तथा एक विचित्र की आशंका का जन्म होना स्वाभाविक ही नहीं विषम परिस्थितियों में अनिवार्यता भी थी। वह एक नयी संक्रान्ति जिससे सब स्तब्ध थे और दिशा हारा की तरह भटक रहे थे। उन्हें कोई राह सुझायी नहीं पड़ रही थी। स्वातंत्र्योत्तर काल के अधिकांश हमारे तरुण रचनाकार इसी नयी संक्रांति की देन हैं।[1] डा. वार्ष्णेय का यह कथन स्वतंत्रता के बाद उन नेताओं के नाम के संदर्भ को जोड़ता है जिन्होंने गांधीवाद को एक अस्त्र के रूप में प्रयोग किया है। यशपाल जैसे समग्र लेखक भी राष्ट्रीय अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिमानों के प्रति सार्वजनिक रूप से यही स्वीकार किया है चारों ओर भूख, रिश्वत और सिफारिश का राज कायम हो गया है।''[2]

कथाकार कमलेश्वर भी किसी प्रकार के अनुभवों को वर्णित करते हैं ......बड़ा भयानक दृश्य है.....आपाधापी, लूट खसोट और विकराल अराजकता का तथ्य इतिहास में पहली बार शायद इतना विकराल दृश्य उपस्थित हुआ है .....इस दारुण विघटन की स्थिति में हमारी नई संस्कृति जन्म ले रही है।''[3]

यह नई संस्कृति मूल्यों को राष्ट्रीय, अन्तर्राष्ट्रीय बना रही है।

राजनैतिक क्षेत्र में यह चारित्रिक संकट किसी न किसी प्रकार उभरता ही चला जा रहा है। विश्व में आज ऐसी राजनैतिक परिस्थितियां बन गयी हैं जो पिछले दो दशकों से सामाजिक जीवन को प्रभावित कर रही हैं।

निर्मल ने आज के जीवन में राजनैतिक सत्ता की कानून व्यवस्था की सुविधाओं और विसमताओं को देखा होगा तभी कथा साहित्य में अभिव्यक्त किया। राजनैतिक अस्त-व्यस्तता ने उखड़े हुये वर्ग को भयाकान्त तो किया है, साथ ही उसकी परम्परा, उसका सामाजिक ढांचा, सम्बन्धों की आस्था और परिवार की नींव को भी हिलाकर रख दिया है। विश्व में आज ऐसी प्रतिमानोन्मुखी अवधारणायें जुड़ रही हैं। जो केवल राजनीति या किसी वर्ग विशेष से जुड़ी नहीं रही बल्कि इससे लाखों, करोड़ों की जिन्दगी, और उनका वर्तमान और भविष्य, उनकी सभ्यता और संस्कृति, उनका आचरण और व्यवहार भी जुड़ हुआ है समूचे विश्व में इन विषाक्त परिस्थितियों में मानवीय दृष्टि में व्यवहारतः परिवर्तन कर दिया है। यह कम महत्वपूर्ण नहीं है कि इस फैले हुये धुयें से परम्परा के प्रकाश में भी मानवीय करुणा जीवित है, जो उखाड़ी हुयी दूब की जड़ों की तरह आज भी फिर सें उगने में समर्थ हो जाती है।

निर्मल वर्मा का उपन्यास साहित्य इन कथित प्रतिमानों से बहुत कुछ कथायगृत प्रभाव को

1- परिप्रेक्ष्य और प्रतिक्रियायें, पृष्ठ 117
2- गांधीवाद की शव परीक्षा, पृष्ठ 23
3- नयी कहानी की भूमिका, पृष्ठ 120

आत्मसात करता चलता है।

भारतीय धरातल पर काया की मनःस्थिति का सन्नाटे में पारित हुआ द्रव्य स्वर खोजते हुये कथाकार ने ''लाल टीन की छत'' उपन्यास में कहा है ......एक-एक पत्थर पर पांव रखते और सोचते, यह पत्थर मेरठ है, जहां लामा रहती है।

यह दिल्ली है, जहां बाबू गये हैं।

और आंगन के आखिरी छोर पर जो पत्थर था उसने सोचा यह समर हिल है जहां चाचा का घर है।''[1]

लगता है देर तक उनका पांव सारी देह से अलग होकर पत्थर पर पड़ा रहा। काया चली जायेगी इसका भय पत्थर के पीछे दुका हुआ है। कौन जानता है कि कामा के लाल नीचे बाव को कसकर इस परिवेश ने बांध दिया है, वह कातर सी उत्कंठा लेकर राष्ट्र के भौगोलिक प्रतिमान बटोरती चली जा रही है इसकी समझ में नहीं आता है कि यह यंत्रवत जीवन उत्सुकता ही रखता है और न कोई पहचान वैसे उसे लगता है कि इन सबकी परिधि से वह अलग होती जा रही है और अंधेरे में फिसलती चली जा रही है उसके भीतर मन की तकलीफ बाहर के परिवेश में उभर रही है। वह मिस जोसुआ को स्मरण कर पुनः अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिमानों पर यूं विचार करने लगती है.....''मुझे वे पुराने दिन याद हो आते हैं जब मुझे और छोटे को यह सोचना भी असंभव लगता कि......... वह सब कुछ करती होगी जो हम हिन्दुस्तानियों को करना पड़ता होगा।''[2]

अपने में केन्द्रित और असुरक्षित व्यक्ति भावों की दुनिया में हल्की सी गरमाहट में महसूसता रहता है मिस जोसुआ और काया के बीच उभरे संवादों को लेखक ने प्रस्तावित कर राष्ट्रीय अन्तर्राष्ट्रीय धुंधली सीमाओं को अतिक्रमित कर दिया है। काया के भीतर से झांकता हुआ आकाश मिस जोसआ के जागरिक संसार को बिल्कुल भले तरीके से अंदाज करता चलता है।

जब कभी बदमाती से गंध काया के मन........मस्तिष्क में राष्ट्रीय प्रतिमानों को लेकर सिमट जाती थी तो अचानक उसके पांव ठिठक जाते थे। लेकिन सिलसिलेवार वह अपनी जिन्दगी के आयामों को चुनती हुई अन्तर्राष्ट्रीय आयामों पर मिस जोसुआ का वर्णन करने लगती है।

यद्यपि वह उन दिनों भटकती रहती थी और उसे एक दूसरे को पहचानना भी अजनबी सा लगता था।

उपन्यासकार ने ''वे दिन'' उपन्यास में अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिमानों को बहुत ही हल्का रंग देकर निरूपित किया है जैसे ......''यह यहां का नियम है।......... अगर कोई चेक लड़की किसी विदेशी की पत्नी से, तब उसके साथ बाहर जा सकती है नहीं तो काफी दिक्कत पड़ती है।''[3]

\+ + + + + + + + +

''मैंने कहा, ये जर्मन लड़के कितनी जल्दी डेस्पेरेट हो जाते हैं।

तुम मेरे साथ चलोगे। वह बहुत अकेला होगा।''[4]

\+ + + + + + + + +

''अगर आप आ सकें तो मैं अपनी पत्नी से आप को मिला सकूंगा वह दूर इण्डियन को जादूगर या महाराजा समझती है।''[5]

1- लाल टीन की छत, पृष्ठ 90
2- वही, पृष्ठ 188
3- वे दिन, पृष्ठ 53
4- वही, पृष्ठ 26-27
5- वही, पृष्ठ 171

इन उपर्युक्त तीनों उदाहरणों में निर्मल वर्मा ने चैकोस्लोवाकिया के प्रावास में जीवनगत अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिमानों को उरेहा है।

दरअसल आज हम बहुत जल्दी एक दूसरे के देशों से वहां की संस्कृति से जुड़ते चले जा रहे हैं।

हमारा यह सब जुड़ाव भले हीं परायापन रखता रहे लेकिन इसमें भी कुछ न कुछ सीखने समझने की आवश्यकता महसूसी जाती है। टूरिस्ट की घुमक्कड़ प्रवृत्ति पर इसी प्रकार के अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिमान उभरते हैं। व्यक्तिशः हर यायावर बिल्कुल अपने जैसा ही अपने भीतर के कमजोर अग्रहों से घिरा रहकर एक झीनी सी धुंध में सिमटा रहता है।

यद्यपि उसके मन में असीम उल्लास होता है फिर भी उसके मन की ग्रंथ में दबी राष्ट्रीय अन्तर्राष्ट्रीय मूल्यों की रेखा उभर ही आती है। बड़े मजे की बात है कि लेखक ने प्रवास के दौरान बोदका बियर के विविध रंगी जायके की बात परिवेश को लेकर स्थलों पर उभारी है रायना के साथ जुड़ा हुआ पात्र अपने मन का रहस्य बोदका को पीकर कह ही देता है......"बोदका पीकर मुझे अपनी देह हल्की सी लग रही है। मुझे एक क्षण के लिये अजीब सा लगा।

......जातने हो, इन दिनों वहां कुछ शराब घरों के आगे पेड़ों की टहनियां लगी रहती हैं।

..........क्रिसमस के पड़े सिर्फ निशानी हैं..........शराब घरों के आगे वे लगाये जाते हैं। वहां सीजन की नयी शराब पिलायी जाती है,..........वियर का डेढ़ गिलास पीने के बाद रायना इतने खुले, सहज भाव से बोलने लगेगी। मैने नहीं सोचा था।"[1]

लेखक इन पंक्तियों में रायना के व्यवहार में बंधा-बंधा अपनापन बार-बार खोलकर देख लेना चाहता है। विदेश में खाने पीने के बाद एक आचार संहिता के अनुरूप उनकी दूरी सिमट जाती है और वह महसूसने लगते हैं कि निस्तब्ध जिन्दगी का हर दरवाजा खोलकर क्यूं न हर आयाम पर उंगली रखकर टटोला जाये।

लेखक इसी तथ्य को आगे बढ़ाता कहता चलता है कि विदेश में यदि तुम लम्बा अरसा रहो तो अक्सर होता है कि पुरानी खुशी लौट आती है जिसके बार में तुमने बरसों नहीं सोचा था। वहां का हर क्षण मानवीय सहज सम्बन्धों का बुनियादी क्षण है जिसे मित्र भाव से भोगा और व्यक्त किया जा सकता है। कहानीकार ने प्रवासी जीवन में एक बहुत लम्बे अरसे तक अजनबीपन और अकेलापन भोगकर यह सिद्ध किया है कि महानगरीय यान्त्रिकता और उससे जुड़ी मन के भीतर के निस्तब्धता वहां के व्यक्ति की नियति में अंधेरा बनकर रह गयी है। कहानीकार इसी स्थिति को "अपने देश वापसी" कहानी में जगह-जगह चित्रित करता है। नार्वे शहर के इतिहास का अतीतजीवी प्रतिमान स्पष्ट करता हुआ लेखक कहता है कि......."मुझे बरसों पुरानी एक दोपहर याद आती है।

नार्वे में एक मध्यकालीन शहर है-------वर्गेन। मुझे हल्का सा आश्चर्य हुआ। जब हमारे गाइड ने बताया कि शहर का सबसे बड़ा आकर्षण वे मकान हैं, जहां सौ..दो.....सौ साल पहले शहर के धनी व्यापारी रहते थे।...........सब चीजें हू-ब-हू वैसी ही हैं, जैसी कभी थीं।

.............उनके लम्बे कमरों में मुझे बार-बार लगता रहा, मानो इब्सन के अभिशप्त पात्रों

1- वे दिन पृष्ठ 98

की नियति भी इन अंधेरे कमरों की भूल-भुलैया में भटकती होगी।''[1]

प्रवासी लेखक इन सब सोचे हुये तथ्यों पर बहुत देर तक यही चिंतन करता रहता है कि उसकी स्मृति में वे-- सब प्रतीक उबलते रहते हैं जिनका हर आयाम खुद से वंचित एक चुनौती है न तो वे आवाजें पकड़ी जा सकती हैं और न उन्हें वैसे ही सोचा जा सकता है।

स्मृतियों की अटूट धारा उनके बीच कब की सूख चुकी है।

वे इस्तहारों ने फिर भी तथ्य पर गहराई से सोचा है कि विदेशों में सचमुच जीवन जिया जाता है, और यह जिया हुआ जीवन सड़कों पर घरों में होटलों में या अन्य संस्थानों में यत्र-तत्र बिखरा हुआ है। ''वीक एण्ड'' कहानी का पात्र बार-बार इसी बात को दोहराता है........कितना आसान है।

........तुम कहीं भी जा सकती हो।

मेरे लिये सब कुछ खुला है

मेरे कोई बन्धन नहीं..........लेकिन मैं जाऊंगी कहीं नहीं मैं यहां हूं, पार्क के एक कोने में, खुली रोशनी के नीचे, उनकी आवाजें सुनती हुयी।

यह मेरा वीक एण्ड है।''[2]

फैलती हुयी दुनिया में इस नायिका ने अपने प्रिय को अपने आप में समेटना सीखा है इसीलिए वह आश्वस्त होकर जिधर भी चाहती है उधर बसेरा कर लेती है यह अन्तर्राष्ट्रीय मूल प्रवासी जीवन में लेखक के चमकीला रेत सा किरकिरा भले है किन्तु वह इन अनुभूतियों को लगातार भोगता रहा इसीलिए सिलसिलेवार उसने प्रवास काल में पात्रों के माध्यम से नये सिरे से रिश्ते जोड़े।

''अमालिया'' कहानी का प्रवासी पात्र हर सुबह मिनिस्ट्री के दफ्तर में आकर दूसरे शहर में जाने के लिये अनुमति की प्रतीक्षा करता है क्योंकि एक जाने पहचाने दफ्तर में प्रतीक्षा करना अजनबी शहरों की गलियों में घूमने की उपेक्षा उसे कहीं सुखद लगता है। ''अमालिया'' का यह पात्र वैचारिक स्तर पर अन्तर्राष्ठीय प्रतिमानों से जुड़ा हुआ है वह कहता है........''हर सुबह मिनिस्ट्री के दफ्तर में जाकर हम प्रतीक्षा करते थे उन्होंने हमसे कहा था कि ज्यों ही हमारे कागज तैयार हो जायेंगे हमें दूसरे शहर में भेज दिया जायेगा।

हमें यह नहीं बताया गया था कि दूसरे शहर कहां है और कौन से हैं। लेकिन हमें इसकी चिन्ता नहीं थी क्योंकि हमें मालूम था कि वे उतने ही अजनबी और कम से कम हमारे लिये उतने ही नये होंगे, जितना यह शहर था, जहां हम रह रहे थे।''[3]

1- बीच बहस में, पृष्ठ 13

2- वही, पृष्ठ 42

3- पिछली गर्मियों में, पृष्ठ 70

उपन्यासकार निर्मल वर्मा ने कथ्यगत नये मूल्यों को निर्लिप्त भाव से अपने कथा संसार में प्रयोग परक बनाया है। आज के खौलते जीवन में कड़वे रस की गन्ध को, उसके असवाद को हर रचनाशील कथाकार आत्मसात करता चला है। वर्मा ने बिट्टी, काया, नित्ती भाई, मंगतू, बुआ, चाचा, वीरेन आदि पात्रों के माध्यम से उन ग्रन्थियों को खोलकर देखा है जिनमें बसी हुयी उद्भावनायें बहुत बौनी और सिमट गयी हैं। एक तरह का बोनापन जीवित कुंठा के घेरे में आकर हर पात्र के भीतर प्रवेश पा गया है। कथाकार जीवन के शिथिल और कसे हुये उन सन्दर्भों को टटोलता है जिनमें व्यक्तिशः रूमानियत है, घृणा है, त्याग है और मृत्यु की छटपटाहट भी है। इसीलिए इन रेखाओं में फंसे पात्र कभी ऊंघते उनींदे होकर बंधी हुयी मुट्ठी खोल देते हैं, लगता है उनका सर्वस्व लुट गया है तो कभी वो आंकाक्षाओं को गूंथकर एक ऐसा धुंध का गोला बनाते हैं जिसमें तीव्रता, गति है और चमक भी है। इसीलिए ऐसा लगता है कि उपन्यासकार ने कुछेक पात्रों को ऊबड़-खाबड़ टीलों से उतार कर सूखी समतल जमीन पर खड़ा कर दिया है, और कुछ पात्रों को ठोस जमीन से उठाकर पहाड़ी के समानान्तर लटका दिया है जो बीहड़ सन्नाटे में हाथ बांधे हुये छटपटा रहे हैं।

"दो घर का नायक नौ वर्ष से विदेश में है।

कलकत्ता से आने के कुछ महीने पश्चात ही वह बीमार हो गया है। वह तीमारदीरी में संलग्न एक नर्स से इसी दौरान मुहब्बत कर लेता है, और उससे दो बच्चे हो जाते हैं। वह अपनी अतीत की जिन्दगी के प्रति बहुत रूखा हो गया है। इसीलिए वह अपनी खिसयाहट को छुपाने के लिये नये रास्ते की तलाश कर लेता है।

उसके अंर्तद्वन्द्व को कहानीकार ने मनोवैज्ञानिक शब्दावली में कुछ नये क्षितिजों का आंकलन किया है।

"आपके बच्चे..................अचानक कुछ याद आया हल्की सी पीड़ा उठ।

.................एक लावारिस-सी हंसी उसके चेहरे पर आई।

...............मुझे हैरानी हुयी कि वे अब तक मेरा हाथ पकड़े थीं।"[1]

यह पात्र कुछ इस प्रकार का अन्तर्राष्ट्रीय हो गया है कि वह न तो वहां रह सकता है न वापिस कलकत्ता आ सकता है।

वह नहीं जानता कि उसका सही घर कौन सा है। वह उतना ही दुखी है, जितना की 'जलती झाड़ी' का पात्र यह सोचकर दुखी है कि यदि कहीं उसकी मृत्यु हो गयी तो उसका स्थूल रूप ही पहचाना जा सकता है।

इस प्रकार के मानसिक धरातल की स्वाभाविक प्रवृत्ति पर कहानीकार बहुत कुछ आगे लिखता रहा है। यूरोपीय उन्मुक्त वातावरण कितना कुछ विचित्र है इसका भी अन्दाजा इस कहानी के अन्त में लग जाता है।----- "सारी रात शहर शराबघरों में सो जाता, तो वे मुझे घसीटकर बाहर सड़क पर फेंक देते और फिर कुछ देर बाद दूसरे शराबी मुझे अपने संग किसी अन्य शराबखानों में ले जाते और मैं इस तरह बारी-बारी सोता, जागता, घिसटता हुआ समूचे शहर की अंधेरी गलियों में घूमता रहा।"[2]

1- बीच बहस में, पृष्ठ 55-56

2- जलती झाड़ी, पृष्ठ 86

यह अजनबीपन इतना भंयकर अभिशाप है कि व्यक्ति कुछ का कुछ हो गया है।

विदेशों में तो पूरा परिवार का परिवार एक दूसरे के प्रति अजनबी है। व्यक्ति परिवार में रह ही नहीं पाता है।

पिछली 'पिछली गर्मियों में ' कहानी का पात्र निन्दी और केशी बहुत कुछ अजनबी और अकेले हैं।

यहां 'निन्दी' तीन वर्ष पश्चात वियना से लौटता है।

उसके अन्दर भाई केशी से मिलने के इच्छा नहीं।

उसकी मां कहती है कि वह कुछ दिनों के लिये वहां हो आये, लेकिन वह वहां नहीं जाना चाहता।

उसका मूल कारण यही है कि बरसों पहले एक जो चीज उसके मन में बैठी थी वह इतने पीछे और दूर सरक गयी है कि उसे देख पाना सम्भव नहीं।

केशी से मिलने की इच्छा न होना इस बात का साक्ष्य है कि परिवार की दीवारें टूट चुकी हैं। यह अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिमान बन गया है कि हिन्दुस्तान का व्यक्ति भी एक दूसरे से ज्यादा जुड़ना नहीं चाहता। 'माया दर्पण' की तरन जानती है कि वह अकेली रहेगी और अकेलापन हमेशा जिन्दगी से जुड़ा रहेगा।

बड़े घराने की बात होकर उसका बाप विवाह नहीं कर पाता। बाप बेटी के मध्य इतना अन्तराल हो गया है, कि दोनों अलग-अलग चुपचाप बैठे रहते हैं।

इतना ही नहीं वरन यह भी निश्चय नहीं कर पाती है कि आखिर उसे करना भी क्याहै।

कहानीकार ने लिखा है............''आते............जाते कभी सामने पड़ जाती थी'' तो देखते भी नहीं देख भी लेते तो इस तरह से मानो उसे पहचान पाने में दुविधा हो रही हो। उनकी कोशिश यही रहती कि जहां वह बैठी हो वहां न जाना हो।

अकस्मात मुठभेड़ हो भी जाये तो दूसरी तरफ देखने लगें या रास्ता बचाकर निकल जाये।''[1]

तरन समझती है कि घर में तनाव क्यों रहता है। वह रूखी सी रिक्तता अपने मन में भर लेती है और सोचती है कि बाबू जी को उससे ज्यादा ही विरक्ति है तो उससे छुटकारा ही क्यों नहीं पा लेते।

यह आज के व्यक्ति का प्रवत्तिमत अलगावपन का दौर समूचे विश्व में दिन प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। इसी प्रकार 'अंधेरे में' और 'अंतर' कहानियों में बच्चे बोझ बनते आज देखे जा रहे हैं।

सन्तान वहां बोझिल हो जाती है जहां दायित्व का निर्वाह भली-भांति नहीं हो पाता। सम्बन्धों के इन बदलावों की दुनिया में बहुत छोटे बड़े अभिनव आयाम लेखक ने संस्पर्श किये हैं। ''जिन्दगी यहां वहां'' कहानी में व्यक्ति से व्यक्ति के फासले का महानगरीय संत्रास आज समूचे विश्व में देख जा सकता है।

हिन्दुस्तान की इस संक्रांतिपरक संस्कृति में दिल्ली शहर का चित्रण विचारणीय है..........बारिश के दिनों में बूथ के शीशे पर बुंदिकियां छिटक जाती..................धुंधले से बादल छतों पर घूमते रहते.............दिल्ली एक टिमटिमाता सा दिया दिखायी देता धुंध पर तिरता हुआ

1- जलती झाड़ी, पृष्ठ 31

.......हलो,............हलो....................मैं हूं ....और तुम ....।''[1]

यह एक जीवनगत बदलते प्रतिमानों में राष्ट्रीय-अन्तर्राष्ट्रीय उद्भ्रान्त स्वरूप निर्मल जी ने अपने कथा संसार में उन्मुक्तता के साथ दिया है।

लेखक देश से विदेश तक के सारे जीवनगत दरवाजे बड़ी ही समझ के साथ खोलकर बंद कर देख चुका है। उसका अपना अहसास जिसे प्रवासीकाल में जिया गया है बड़ा ही विचित्र और विलक्षण है।

उन अनुभूतियों को शब्दों में बांधकर कहानीकार ने एक ही बरते हुये तकाजे को विविधधर्मी बनाया है।

उसके मन की निश्चिंतता इंग्लैण्ड, बेलजियम, चेकोस्लोवाकिया और हिन्दुस्तान जैसे देशों और शहरों में अपने अन्तर में विश्वास का बल पाकर उदगीरित होती रही है। इसीलिए वे प्रतिमान जो आधुनिकत के चौखटे में समायोजित हो जाते हैं।

उनको कहानीकार ने भेदन करते हुये कुछ अन्ततः तलाश की है। मनुष्य का वह पहलू जिस पर एक आदर्शवादी भावनाओं के उदाट शिखर पर सोचा गया था उससे बढ़कर वर्मा ने यथार्थवादी धरातल पर रास आते हुये जीवन को नया क्षितिज प्रदान किया है।

(छ) साहित्य के कथ्य में नये मूल्यों की सम्प्रेषणाः-

स्वातन्त्रयोत्तर कथा साहित्य में आने वाले कथ्यगत परिवर्तन और विकास के आलोचकों सम्वेत स्वरों में एक जैसा ही स्वीकारा है।

राजेन्द्र यादव इस वैचारिक स्तर को सन् 50 के आसपास से ही मानते हैं बहरहाल कथा साहित्य का बदलता कथ्य संवेदन को अधिक छूकर चला है। इनके कथ्य में व्यक्ति छटपटा रहा है। सम्बन्धों की टूटन उसे सम्बन्ध हीन होकर जीने के लिये विवश कर रहा है। यह सम्बन्ध समान धरातल के भी हो सकते हैं और सेक्स धरातल के भी।'

व्यक्ति दोहरे अलगाव को झेल रहा है- अपने से अलगाव और समाज से अलगाव जिसके कारण अकेलापन अजनबीपन इसी की धरोहर बन गया है।

इस प्रकार के त्रास की अवस्था में आज का व्यक्ति इतना अधिक निरीह और बेचारा है कि डा. शिव प्रसाद सिंह के ये शब्द पूर्णसत्य हैं.........''वह पोत जिस पर व्यक्ति सवार होकर यात्रा कर रहा था पहली बार अर्न्तध्यान हो गया है जिससे डूबते व्यक्ति को समुद्र के खारे जल का स्वाद ही मिल पा रहा है।''[2]

आज का व्यक्ति अभिशप्त है बौना है, नैतिकता-अनैतिकता से दूर है। ठंडा और दरिद्र है और आइडेनटिटी रहित है। आदमी की भलमनसाहत लुप्त प्रायः हो गयी है। आज उसे बहुत बढ़िया और जोरदार कहा जाता है। जो छद्मवेशी है अपने को जीता है और दूसरों को ठगता है। ऐसी मनःस्थितियों में जूझते व्यक्ति के कथ्य को आज के कथाकारों ने कुछ आड़े-तिरछे स्वरूप प्रदान किये हैं कथाकार संवेदनाओं को बटोरता हुआ भोगी हुयी त्रासदी को कथापात्र के माध्यम से खुद

1- कौवे और काला पानी, पृष्ठ 46 2- आधुनिक परिवेश और अस्तित्ववाद, पृष्ठ 89

ही भोगने लगता है।

यह प्रगतिशील कथ्य की जीवन्तता आज हर कोने में विचारणीय बन चुकी है। कथ्य आज नयी जमीन तोड़कर नये पौधों को तोड़ता जा रहा है। सन् 50 के बाद जितना कुछ रचनाकार में आत्मसात किया उसे उसने आवाज दी रूप दिया और दैहिक एवं आन्तरिक यथार्थ भी दिया। कथाकार निर्मल इन अमिट प्रभावों को अपने कथा संसार में एक श्रंखलाबद्ध रूप देते चले हैं।

उपन्यास 'एक चिथड़ा सुख' कथागत नये मूल्य सम्प्रेषण की हामी भरता है।

बिट्टी बड़े अजीब ढंग से जीवन की छूटे हुये अंशों को आज के जीवन को जोड़कर एक लम्बी माला तैयार करती जा रही है। उपन्यासकार ने कहा है.............''वह एक सूखी शाम है, सुख जो अचानक चला जाता है, बातों के बीच। बोतल उठाने और गिलास रखने के बीच हंसी के टुकड़ों पर, जब बिट्टी के दोस्त सचमुच एक ....दूसरे को विश्वास की निगाहों से देख रहे थे।

वहां कोई संदेह नहीं, न खतरा न आने वाले दिनों का भय.........और तब सहसा अपने पुराने दिनों की डायरी पढ़ते हुये मुझे लगता है उन दिनों मैं कितना बेवकूफ था।''[1] बिट्टी के मन का कोना लेखक का मन झांककर आया है। वह अतीत की अदृश्य सी चीजें गिलास के घूंटों में समाहित करता चलता है।

बिट्टी की आंखें नित्ती भाई के सहज रूमानियत स्वभाव से जुड़ी हुयी हैं।

वह पुराने अवशेष को एक घूंट के साथ ही निगल लेना चाहती है पर वह कुछ नहीं पाती।

उसके मन का कांपता विश्वास कभी धम्म से नीचे गिर जाता है, और कभी इतना अधिक फैल जाता है, कि उसकी असीम छाया में उसकी सारी दुनिया सूखी नजर आती है।

दरअसल व्यक्ति की कुंठा का वह अन्दरूनी धरातल जिसे किसी ने ही समझा है।

निर्मल उन्हीं में से एक है, जिनकी ठिठकी दृष्टि अतीत जीवी पात्र के गहन अन्धकार को प्रकाश में बदल देती है।

''वे दिन'' उपन्यास समग्र रूप से देशकाल परक व्यक्तियों की सीमायें तोड़कर अन्तर्मन की कचोटती भावनाओं से जुड़ गया है।

मन की परतों के भीतर बैठा हुआ वह क्षण जिसे कभी जिया गया था हमेशा खटकता रहता है।

लिखा है............''वह हमेशा कुछ अनिश्चित ढंग से की............बोर्ड को छूता था, जैसे हम बिजली के मीटर को छूते हैं। चाहे उसमें करेन्ट न हो, फिर भी अन्तिम क्षण तक, छूने से पहले तक, एक सन्देह बना रहता है।''[2]

यह सब अतीतजीवी मानसिकता की वजह से है।

हम अतीत के पृष्ठों पर कुछ गुमसुम सा लिखा हुआ है सदैव पढ़ते रहते हैं।

यह उलझा हुआ सुख और दुख है एक बच्चे के झूले की तरह जब वह ऊपर जाता है दिल घबराने लगता है और नीचे आता है तो दिल बैठने सा लगता है। आज का व्यक्ति समयवादी दो छोरों पर अपने को खड़ाकर अभिशप्त बना हुआ है। स्त्री-पुरुष का सह-सम्बन्ध दो छोरों पर अपने को खड़ा कर अभिशप्त बना हुआ है।

स्त्री पुरुष का सह-सम्बन्ध भी कुछ बेमानी सा है। बस इतना ही है कि वे एक दूसरे के साथ

1- एक चिथड़ा सुख, पृष्ठ 90

2- वे दिन, पृष्ठ 54

हैं। उसके परे कुछ भी सही नहीं हैं।

वे अपने सुविधाओं से एक दूसरे का साथ भोग रहे हैं। उनका रूखा मन अन्तर्मन दूरियां बढ़ाता ही चलता है। रायना पात्र की सोच इन संदर्भों में नये अर्थ लिये हुये है। महज शब्दों पर उसने जिन्दगी को प्रयोगशाला में प्रयोजित करके नहीं देखा।

वह अतीत की धुंध से अंधेरे को अपने भीतर लपेटे हुये कुछ अजीब सी कातरता अनुभव करती रहती है इस उपन्यास के अतिरिक्त 'लाल टीन की छत' में काया पात्र आज की उन तमाम लड़कियों का प्रतिनिधित्व करती है जिनका जीवन सहसा ही रुक गया है। दुखद एवं सुखद झमेलों में फंसी पात्र काया स्थिरता से अपनी जिन्दगी का निर्धारण नहीं कर पाती। उसे हमेशा यही याद आता है कि जो आज है वह बीते हुये कल में गमगीन और वीरानगी ही पैदा करेगा। उसका मन अनायास ही उस अदृश्य क्षितिज की ओर दौड़ पड़ता है, जहां न धरातल है और न जीवन बिन्दु को उतारने का स्थान सिर्फ खुले कस की एक धड़कन है जिसे केवल सोच और संवेदन में जिया जा सकता है।

वह टूटती जिन्दगी में अब नये विश्वासों को बल नहीं दे पाती। केवल यही बिन्दु आज के आलोक में चमकते हैं जिनका आज प्रसंग जीवित है।

काया के मन की स्तब्धता का एक छोटा सा पटापेक्ष दृष्टव्य है.............''एक विचित्र सी आकांक्षा ने उसे पकड़ लिया शायद बाहर की धुंध सी.............या दिन भर की थकान.......खाने के बाद वह सीधी अपने कमरे में आ गयी। उसने सोचा था, बिस्तर पर लेटते ही नींद आ जायेगी। ....वह सोचती फिर आंखें मुंदने लगती..........पपड़ाये सूखे होंठ खुल जाते।''[1] काया के मन की व्यग्रता इतनी अधिक तीव्र थी कि वह जब एक मन की परत हटाती तो भीतर छिपी हुयी एक चाहना सिर उठाती।

गले में फंसी हुयी एक चाहना सिर उठाती है। गले में फंसी हुयी आवाज से वह सिर नहीं उठा पाती थी कि वह सिर की तरफ आये या बेचैनी की तरफ।

वह बेचैनी या आकांक्षा का बवन्डर आज हर व्यक्ति को घेरे हुये है और इससे अधिक भीतर ही भीतर कुरेदने वाली वह स्मृति है जो सहसा सोने के पहले हर आदमी के तकिये के पास खड़ी हो जाती है. तब व्यक्ति न अतीतजीवी रह जाता है और न वर्तमान भोगी घड़ी का पैन्डुलम कभी इधर तो कभी उधर सोचता हुआ अपने जीवनगत समय को मारता चलता है। कुछेक पात्रों के चेहरे मोहरे सब फीके पड़ गये हैं और कुछ पत्थर की लकीर से चमकते हुये खुली हवा के झोंकों में झंकृत हो रहे हैं।

स्त्री पात्र पुरुष पात्र की अपेक्षा अधिक बासी और बोझिल हैं। वह अपने मन की गांठ खोलती हुयी यादों के बहाव में जीवन गत सारे छोरों को फैलाकर बह जाती है और कहा जा सकता है कि वे पात्र पलायन के उस कगार पर खड़े हैं जहां अंधेरा भी है और फिसलन भी। वस्तुतः इन स्त्री पात्रों के भीतर उन्हें चीरने वाली एक स्मृति है जिसके सहारे वे सिहर तो रहे हैं लेकिन उनकी सिहरता आग्रह पूर्ण असीम यातना में लिपटी हुयी है। और उधर पुरुष पात्र कड़वी गंध की तरह हवा में ठहरे हुये हैं, वे कभी एक साथ अंधेरे खड्डे में उतर जाते हैं। तो कभी विश्वास की रोशनी पाकर ऊपर उठते चले जाते हैं। उनके मन में ओज है, वर्चस्व है लेकिन कहीं-कहीं न बुझने वाली

1- लाल टीन की छत, पृष्ठ 136-137

हैं। उसके परे कुछ भी सही नहीं हैं।

वे अपने सुविधाओं से एक दूसरे का साथ भोग रहे हैं। उनका रूखा मन अन्तर्मन दूरियां बढ़ाता ही चलता है। रायना पात्र की सोच इन संदर्भों में नये अर्थ लिये हुये है। महज शब्दों पर उसने जिन्दगी को प्रयोगशाला में प्रयोजित करके नहीं देखा।

वह अतीत की धुंध से अंधेरे को अपने भीतर लपेटे हुये कुछ अजीब सी कातरता अनुभव करती रहती है इस उपन्यास के अतिरिक्त 'लाल टीन की छत' में काया पात्र आज की उन तमाम लड़कियों का प्रतिनिधित्व करती है जिनका जीवन सहसा ही रुक गया है। दुखद एवं सुखद झमेलों में फंसी पात्र काया स्थिरता से अपनी जिन्दगी का निर्धारण नहीं कर पाती। उसे हमेशा यही याद आता है कि जो आज है वह बीते हुये कल में गमगीन और वीरानगी ही पैदा करेगा। उसका मन अनायास ही उस अदृश्य क्षितिज की ओर दौड़ पड़ता है, जहां न धरातल है और न ज़ीवन बिन्दु को उतारने का स्थान सिर्फ खुले कस की एक धड़कन है जिसे केवल सोच और संवेदन में जिया जा सकता है।

वह टूटती जिन्दगी में अब नये विश्वासों को बल नहीं दे पाती। केवल यही बिन्दु आज के आलोक में चमकते हैं जिनका आज प्रसंग जीवित है।

काया के मन की स्तब्धता का एक छोटा सा पटापेक्ष दृष्टव्य है.............''एक विचित्र सी आकांक्षा ने उसे पकड़ लिया शायद बाहर की धुंध सी.............या दिन भर की थकान.......खाने के बाद वह सीधी अपने कमरे में आ गयी। उसने सोचा था, बिस्तर पर लेटते ही नींद आ जायेगी। ....वह सोचती फिर आंखें मुंदने लगती..........पपड़ाये सूखे होंठ खुल जाते।''[1] काया के मन की व्यग्रता इतनी अधिक तीव्र थी कि वह जब एक मन की परत हटाती तो भीतर छिपी हुयी एक चाहना सिर उठाती।

गले में फंसी हुयी एक चाहना सिर उठाती है। गले में फंसी हुयी आवाज से वह सिर नहीं उठा पाती थी कि वह सिर की तरफ आये या बेचैनी की तरफ।

वह बेचैनी या आकांक्षा का बवन्डर आज हर व्यक्ति को घेरे हुये है और इससे अधिक भीतर ही भीतर कुरेदने वाली वह स्मृति है जो सहसा सोने के पहले हर आदमी के तकिये के पास खड़ी हो जाती है. तब व्यक्ति न अतीतजीवी रह जाता है और न वर्तमान भोगी घड़ी का पैन्डुलम कभी इधर तो कभी उधर सोचता हुआ अपने जीवनगत समय को मारता चलता है। कुछेक पात्रों के चेहरे मोहरे सब फीके पड़ गये हैं और कुछ पत्थर की लकीर से चमकते हुये खुली हवा के झोंकों में झंकृत हो रहे हैं।

स्त्री पात्र पुरुष पात्र की अपेक्षा अधिक बासी और बोझिल हैं। वह अपने मन की गांठ खोलती हुयी यादों के बहाव में जीवन गत सारे छोरों को फैलाकर बह जाती है और कहा जा सकता है कि वे पात्र पलायन के उस कगार पर खड़े हैं जहां अंधेरा भी है और फिसलन भी। वस्तुतः इन स्त्री पात्रों के भीतर उन्हें चीरने वाली एक स्मृति है जिसके सहारे वे सिहर तो रहे हैं लेकिन उनकी सिहरता आग्रह पूर्ण असीम यातना में लिपटी हुयी है। और उधर पुरुष पात्र कड़वी गंध की तरह हवा में ठहरे हुये हैं, वे कभी एक साथ अंधेरे खड्डे में उतर जाते हैं। तो कभी विश्वास की रोशनी पाकर ऊपर उठते चले जाते हैं। उनके मन में ओज है, वर्चस्व है लेकिन कहीं-कहीं न बुझने वाली

1- लाल टीन की छत, पृष्ठ 136-137

तीव्र पीड़ा भी है।

उपन्यासकार ने इन स्त्री-पुरुष भिन्न-भिन्न पात्रों में वह जीवन का फिसलता हुआ शिलाखण्ड अनुभूतिगम्य माना है जो लुढ़कता है।

उसमें इतना दम नहीं है, कि समान्तर सपाटता को अवधरित कर सके वजह यह है कि आज का जीवन बड़ा दुरुह और जटिल है।

इसीलिए गति एक रूप हो ही नहीं सकती। व्यक्ति के अपने सोच विचार भिन्न-भिन्न दिशाओं में भिन्न-भिन्न आयामों को लिये हुये हैं। वे मूल्य जिन्हें सनातन कहा जाता था अब वे चरमरा गये हैं।

इसीलिए अब फ्रेम भी नया है और कीमत भी नयी है। बाजार का रुख बदल गया है, इसीलिए ग्राहक भी नये हैं।

कहानीकार निर्मल ने स्वतंत्रयोत्तर भारत के नये मूल्यों की सम्प्रेषणा जहां एक ओर की है वहीं दूसरी ओर विदेश प्रवासकाल में वहां के मूल्यबोध को अपनी स्मृतियों में चिपकाया है।

आज का मनुष्य यह महसूसता है कि वह वर्तमान में मात्र छोटी सी घटना है।

इसीलिए अतीत से जुड़कर वर्तमान में नया रास्ता ख़ोजने का निश्चय करता है। यद्यपि उसके मन मस्तिष्क में शून्यता बोध ने ऐसा पड़ाव कर लिया है, कि उससे सारी वस्तुयें दूर खिसकती जा रही हैं।

व्यक्ति सवेरे उठता है लगातार सात-आठ घंटे काम करता है और फिर थककर सो जाता है। इसी अनुभूति का सम्प्रेषणीय स्वरूप दार्शनिक परिप्रेक्ष्य में आखिर है क्या? उसका सारा कार्य यह सिद्ध करता है, कि वह कुछ बनना चाहता है।

किन्तु परिणाम में कुछ हो जाता है, फिर भविष्य कि रिक्ततता को भरने के लिये उम्मीद लेकर फिर जुट जाता है।

''माया का मर्म'' कहानी में लेखक ने इसी नये संदर्भ और नये अर्थ को दर्शाया है..........दिन के समय लालटेन जलाता हुआ मैं इस उम्र में कतराता हूं..........लगता है घर में कोई मर गया हो। सफेद पुतलियां दीवार में पथराईं सी झांक रहीं हों .... मैं आंखें मूंद लेता हूं ....मेरा सोचना मेरे जैसा ही बेकार है, इसीलिए आज नहीं सोचूंगा।[1]

कहानीकार इस पात्र के माध्यम से जीवन कथ्य को तीन पहलुओं में समेटता है।

पहला पहलू.............वर्तमान में जन्मी संघटनाओं का है जिनमें फंसा व्यक्ति विवश होकर अपने से ही अलग हो जाता है।

दूसरा पहलू.............व्यक्ति के अपने आप के अस्तित्व के नकारने का है जब वह विकट परिस्थितियों में अपने आप को पाता है और अनिर्णित भाव से अपने आपको बेसहारा महसूस करने लगता है तब यही स्थिति होती है

और तीसरा पहलू...............वर्तमान में जन्मे भविष्य का है। जिससे समग्रतः अपने को ढांक लेना चाहता है। इस सोच संवेदना में जीवनगत नये संदर्भों को कहानीकार ने भली-भांति सम्प्रेषित किया है। इस पात्र की स्मृतियां सूखे पत्ते सी झरती जा रही हैं।

वह बेकारी के उदास और लम्बे अरसे से गुजर रहा है, इसलिए उसका व्यक्ति मूल्य स्वयं

1- परिन्दे, पृष्ठ 31.

ही बिखरा हुआ है अधखुला है तथा निराशोन्मुखी है।

"सितम्बर की एक शाम" कहानी में भी बेकारी के कारण जिन्दगी के सारे पशस्त मार्गों में व्यक्ति अवरोध खड़ा कर देता है, इसीलिए एक गहरी अथाह शून्यता के भंवर में अपने आप को आकंठ डूबा पाता है।

बेकारी से उत्पन्न हताशा ने उसे पोर-पोर तोड़ दिया है। उसका यह हताश मन देखा जा सकाता है..........."वह रात एक अरसे बाद भी एक अधमिटी अधूरी स्मृति के कुहासे में घुल जायेगी। रह जायेगा केवल वह उसके आकार हीन, अर्थ खोजते हुये अस्तित्व की परिधि को अनप्राणित करता है एक अस्पष्ट धुंधला सा दर्द जो किसी दुख किसी चाह से उत्पन्न नहीं हुआ, जो उसके जीने की क्रिया के साथ जुड़ा हुआ है, हमेशा उसके संग है। जब से वह सांस ले रहा है।

....................छाया सा भटकता उड़ता उसके संग जीता हुआ।"[1]

"पिक्चर पोस्ट कार्ड" के युवकों ने तो नये सम्प्रेषण में तो यहां तक सोच लिया है कि शायद वे कुछ न कर सकेंगे। 'जलती झाड़ी' कहानी में नये मूल्यों का सम्प्रेषण उपयुक्त कहानियों से कुछ भिन्न भी है।

इस कहानी में खालीपन तो हैं लेकिन एक तपती बुझती जिन्दगी का जोड़ है इसलिए इस कहानी में वैसी न तो उदासीनता है और न नितान्त अकेलेपन की बोझिलता है। इस प्रकार खालीपन और सरसराती जिन्दगी के पहलुओं ने कहानीकार ने दो पंक्तियों में ही रूपायित कर दिया है।................एक दबी उफनती सी चीख फिर सिसकती सी कराहट, फिर वह भी नहीं.................एक खाली हल्की हवा और तब सब कुछ पहले जैसा शांत हो गया।"[2]

इस प्रकार के मूल्यों के सम्प्रेषण में न तो जुगुत्सा है, न कौतुहल, न जिज्ञासा है न उदासीनता। इस असीम मौन परिवेश में कहानीकार नें प्रेमी-प्रेमिकाओं के इच्छा भरे सवालों को प्रयोगपरक प्रस्तुत किया है।

आज की कहानी यथार्थ बोध के साथ व्यक्ति के कटु और तिक्त जीवन को उरेहती चली जाती है निर्मल ने यथार्थ से साक्षात्कार करते हुये कहानी कथ्य के पार्श्व में कई चित्र उभारे हैं। वैसे यथार्थ और नये मूल्यों के सह-सम्बन्ध के बारे में उनका मत बहुत ही सटीक है। वे कहते हैं कि यथार्थ पक्षी की तरह झाड़ी में छिपा रहता है उसे वहां से जीवित निकाल पाना उतना ही दुर्लभ है जितना कि उसके बारे में निश्चित रूप से कुछ कह पाना।"[3]

कहानीकार सिर्फ यही कह देना चाहता है कि यथार्थ की भूमि पर नये मूल्यों के पौधे तो हम जमाते हैं लेकिन हर क्षण यही भय रहता है कि झाड़ी में छिपे पक्षी की तरह ही यदि हम पर दबाव डाला गया तो या तो मर जायेगा या फिर उड़ जायेगा। इसीलिए परिवेश के साथ हमें जिन्दगी को जोड़ना होता है। किसी अनजाने क्षण में जब हम समाज, संस्कृति से विद्रोह करने का दावा करने लगते हैं तब भी बात यही होती है, कि व्यक्ति अपने ही अनुभवों से अपने भीतर की गूंज में इतना बेबस हो जाता है कि वह सोचता कुछ है करता कुछ है। "कौवे और काला पानी" की मास्टर जी की जीविका छाया और सन्नाटे में बंटा हुआ परिवेश भीतर बाहर अलग-अलग धरातलों में बंटा

1- परिन्दे, पृष्ठ 119

2- जलती झाड़ी, पृष्ठ 83

3- नयी कहानी संदर्भ और प्रकृति, पृष्ठ 180

हुआ है। पिछली रात के बाद हमारे बीच एक मूल समझौता सा हो गया था कि हम उनके बारे में चुप ही रहेंगे............हमारे बीच में कुछ वैसे ही अदृश्य हो गये थे।............जैसे न बारिश होती हो और न धूप दिखायी दे सिर्फ बादलों की कनात ऊपर से नीचे तनी रहती है।''[1]

हम अपने समय के महज दर्शक ही नहीं हैं बल्कि परिवेश के भोगता हैं, इसीलिए परिवेश से पल्ला झाड़ सम्बन्ध नहीं रख सकते।

परिणाम यह होता है कि नये मूल्यों का दौर हमारी चेतना पर आरूढ़ हो जाता है। जिससे हम उसके इशारे पर इधर उधर मुंह मारते फिरते हैं।

यद्यपि यह सब नया तन्त्र नये मूल्य आज के व्यक्ति के हिमायती नहीं हैं फिर भी जीने के लिये अजीब से सन्नाटे में ही विश्वास करना होता है।

''छुट्टियों'' के बाद की नायिका इसी विश्वास को लेकर अपनी छुट्टियां व्यतीत करने के लिये प्रेमी की खोज करती है। ''लंदन की एक रात'' का जार्ज नीग्रो अपनी जिजीविषा के लिये सबकी उपेक्षा सहन करता है। मनुष्य के जीवन का प्रस्थान बिन्दु बहुत ही सुहावने ढंग से जीवन सुखद आशाओं को संजोता है लेकिन ज्यों-ज्यों वह बड़ा होता जाता है उसके हाथ बंधते जाते हैं विचारों का ताल मेल फीका पड़ता जाता है और वह भी अपना नहीं रह जाता इस अनोखे और विचित्र जीवन दर्शन को एक अबोध पागल सी लड़की के चेहरे पर कहानीकार ने पढ़ा है............''उसे देखकर सहसा वे सब चीजें याद हो आती थीं जो आदमी बड़ा होकर खो देता है उस लड़की ने कुछ भी नहीं खोया था और इसलिए वह खुद खो गयी और पागल सी लगती थी।''[2]

''उनके कमरे'' कहानी में इस प्रकार का तथ्य बढ़ते हुये व्यक्ति के खिसयाहट भरे आक्रोश को व्यक्त करता है।

ज्यों-ज्यों वैचारिक स्तर पर व्यक्ति धनी होकर नये मूल्यों के प्रति आकृष्ट होता है त्यों-त्यों परिवेश उसकी बांह पकड़कर उसको अपनी ओर खींच लेता है।

फिर तो उसके माथे पर एक उदासीन मुस्कराहट की सिलवट होती है।

वर्मा की कहानियों के शीर्षक और कथ्य परिवेश के जीवित आधार लेकर विद्रोही स्वर चेतना फूंकते चलते हैं।

उनमें खामोश आवाजें हैं, पतझड़ के पपड़ाये पत्ते हैं, भयावह इमारतें हैं, सांय-सांय करते दरवाजे हैं, खटखटाती हवायें हैं, पथराये भावहीन सम्बन्ध हैं, व्यक्ति को निगलने वाला युद्ध है, बीमारी से उत्पन्न निराशायें हैं और कांपती चीखों के बीच का सन्नाटा है। कहानीकार ने मनुष्य के बाह्य और भीतरी विसंगति पूर्ण जीवन का जायजा लेते हुये हर स्थल पर नये सम्प्रेषण की बात की है आज का व्यक्ति स्वेच्छा से जीना नहीं चाहता। लेकिन परिवेशतः से उसे जीना पड़ता है। एक जानवर की सांस की तरह घनी गहरी खुरदरी सांस लेकर।

वह दुविधाग्रस्त बिल्कुल नहीं है लेकिन हर बार परिवेश ने उसे दुविधा में डाल दिया है।''

'इतनी बड़ी आकांक्षा' कहानी में स्त्री पुरुष के इस भाव सम्बन्ध को पहचाना जा सकता है.........जब स्त्री और पुरुष इतने निश्चित भाव से आपस में चुप हो, तो अनुमान लगाना कठिन नहीं है कि वे पति-पत्नी नहीं हैं।

1- कौवे और काला पानी, पृष्ठ 147-148

2- पिछली गर्मियों में, पृष्ठ 64

उनकी ऊब को सूंघना भी मुश्किल नहीं है।[1]

आज के बदलते दूर से दिलचस्प जीवन मूल्यों में सरकती हुयी जिन्दगी कितनी निरर्थक और हताश जान पड़ती है लेकिन अनायास ही इस प्रकार की जिन्दगी को देखने की गुंजाइश नहीं है।

व्यक्ति फासले बुनियादी ढांचों को चरमराते जा रहे हैं फिर उनके फ्रेम में फंसी जिन्दगी बीच में फंसी जिन्दगी की भांति झूल रही है।

कथाकार इन विचार कोणों में भी नये मूल्यों के प्रति आस्थावान है उसका निरूपण है कि जिन्दगी को जिजीविषा साध्य होकर जीना है न कि मायावी कल्पना में।

(ज)- कालधर्मी कथ्य विधान :-

सन् 60 के आसपास जितना भी कथा साहित्य प्रणीत किया गया वह सब कालधर्मी जुड़नशीलता को ओढ़े हुये है।

आज का व्यक्ति अनायास ही जिन्दगी का अर्थ बदलता हुआ देख रहा है। इसलिए वे विश्वास जिन पर मूल्यवत्ता ठहरी हुयी थी हिल गये हैं, वे मार्ग जो विस्तृत और स्वस्थ थे आज वे भी संकरे हो गये हैं दूरियां सिमटी तो हैं लेकिन यह सिमटन व्यक्तिवादी होती जा रही है अपने में ही केन्द्रित होकर अपने से ही टकरा कर आज का व्यक्ति बार-बार सिहर उठता है और उसे लगता है कि वह काल सापेक्ष नीख भौड़े में खड़ा हुआ है। स्वतंत्र भारत में जितना उन्मुक्त वातावरण प्रयोग स्तर पर दिखायी दे रहा है उससे कहीं ज्यादा उन्मुक्त शब्दों ने भारत इधर विश्व को ढक लिया है। जीवनगत मोड़ों पर विचार करता हुआ "वे दिन" उपन्यास का पात्र कहता है.............मुझे तब लगा था जैसे हम एक ऊंचाई को छूकर नीचे उतर रहे हैं...............वह अब नहीं थी, लेकिन उसकी चकराहट बाकी थी।"[2]

लेखक ने प्राग के सहज परिवेश को प्रतीकात्मक शैली से यहां अभिनव अभिव्यक्ति दी है व्यक्ति चारों ओर से घिरे वातावरण में समूची देह के साथ फड़फड़ा रहा है।

यह कैसे कोई घटना नहीं है जिसे उंगली रखकर बताया जा सके लेकिन जीवन के मर्म की हल्की सी झांकी है। जैसे कि कोई समुद्र में लहर उठे और लुप्त हो जाये। लेकिन बराबर यह क्रम चलता रहे। व्यक्ति जब प्रवासी होता है तब प्रवासकाल में उसे कृतिम चीजों के घेरे में रहना होता है फिर भले ही उसमें असीम खुलापन हो। इस छोटे से लेकिन मार्मिक संघटनात्मक रवैये ने लेखक को एक नशीली सी झुरझुरी से भर दिया है और वह छुअन जिसे देह से अलग कर नहीं समझा जा सकता। इस काल सापेक्ष वातावरण में फैली हुयी उनकी छायायें वहां की निगाहों में ठिठक जाती है इसीलिए जीवन का प्रवासकाल बिन्दु बहता अवश्य है लेकिन सहसा निर्मल ने अन्य दोनों काल धर्मी या तो परिवेशगत जुड़नशीलता का परिचय अधिक गहरायी से दिया है। उपयुक्त ही है। प्रवासकाल का सारा वातावरण कुहासा, धूप की तहों में लिपटा और गहन अंधेरे में छिपा हुआ है। वहां की रात अजीब खामोश आवाजें हैं जिससे एक बाहरी व्यक्ति को और अधिक सोचने-विचारने को विवश होना पड़ता है।

इन उपन्यासों के पात्र पहाड़ों से घिरी उस सिमटी की तरह है जिसका बार का फाटक बन्द है।

1- पिछली गर्मियों में, पृष्ठ 101 2- वे दिन, पृष्ठ 109

इन पात्रों के आपसी सम्बन्ध स्टेशन के बेटिंग रूम में बैठे मनुष्यों की तरह जो बीच के लम्हे को अच्छी तरह गुजरा देने के लिये बात करते हैं। आज के वातावरण में इसी प्रकार के कालधर्मी सम्बन्ध जुड़े हुये हैं।

"लाल टीन की छत" की काया काला सापेक्ष अंधेरे में घिरे पहाड़ों को चुपचाप उसी प्रकार देखती है कि जैसे कि एक पुरुष के संस्पर्श को एक महिला,............काया को अजीब सा जान पड़ा क्योंकि उसकी जुबान पर वह मर्द का नाम था............एक औरत के मुंह पर मर्द की छुअन-सा..........और उसका सारा शरीर सिहरने लगा।"[1]

काया उपन्यास प्रयुक्त पात्र, औरत को पथरायी आंखों से देखती चली गयी और उसे उसमें असाधारण चमक दृष्टिगत हुयी।

वह समझती है कि यह पहाड़न नथ वाली औरत एक ऐसा दिवा स्वप्न है जो आज के वक्त के अनुरूप ही फाक्स लैण्ड के ऊपर मंडराता रहता है। काया उसे फटी-फटी निगाहों से वैसे ही देखती है जैसे ऊंघते पहाड़ों के साथ-साथ उसका स्वर भी छुआ है।

इस प्रकार के परिवेशगत आयाम लेखक ने कुछ इस प्रकार के दिये हैं जिसे औरत और काया के मध्य शब्द सुलगते रहे हैं।

उस काया को लगता है कि इन बातों से कोई उम्मीद कोई आस्था और और कोई आशा जरूर जकड़ में आयेगी जिससे वह आने वाले दिनों को झेल सकेगी। बाह्य वातावरण से जिस प्रकार पहाड़ों की जिन्दगी अंधेरे और रोशनी के बीच संवेदना से ढकी हुयी है।

वह भीतर ही भीतर बड़बड़ाती है, छटपटाती है फिर अचानक एक झटके के साथ एक चीख को जन्म देती है जो दुःस्वप्न का धक्का खाकर बाहर निकली है उम्र का तकाजा तब तक रहता है। जब तक उसमें उमंगों की हलचल बनी रहती है। लेकिन ये पात्र बर्फ जैसे ठंडे और फुसफसाते स्वर के पर्याय मात्र रह गये हैं।

काया के सपने का सरलीकृत सापेक्ष अवचेतन मन के साथ इस तरह उपन्यासकार ने व्यक्त किया है।.............'मुझे मालूम है, मैं एक बहुत लम्बी-चिट्ठी लिख रही थी, लेकिन आखिर तक आते-आते मैं हमेशा उसके आखिरी हिस्से को बदल देती थी।'[2]

काया अजीब से सपने में यह सब कर रही है। उसे बरसों पहले चिट्ठी लिखी थी और सपने में भी वही चिट्ठी लिख रही थी लेकिन आखिरी हिस्सा क्यूं बदल देती थी।

इससे स्पष्ट हो रहा है कि वह अतीत कालधर्मी जानती थी लेकिन वर्तमान का छोर उससे फिसल जाता था।

वह कहना कुछ चाहती थी और कुछ कह जाती थी बहुत खामोश अंधेरे से घिरी रात में उसके जीवन के इस मर्म को उपन्यासकार ने जगह-जगह प्रकट किया है।

इन सब स्तब्ध आहटों का एक ही अर्थ है कि व्यक्ति आज जिस परिवेश में सांस ले रहा है उस परिवेश में केवल यन्त्रवत मशीनरी ढांचे में अपने को पाता है।

तत्कालीन क्षणबोध उसे इतना संदिग्ध कर देता है कि वह न तो प्रायश्चित ही कर पाता है और न समाधान वह तो बसन्त की उस घास की तरह उगा होता है जिसमें प्रकृति के लालित्य से रवितम ज्वर है और कुछ दिनों के बाद पतझड़ी उसे समूल सुखाकर इधर-उधर बिखेर देगी।

1- लाल टीन की छत, पृष्ठ 145

2- लाल टीन की छत, पृष्ठ 190

"एक चिथड़ा सुख" उपन्यास मानवीय सूक्ष्म प्रवृत्तियों का परिचायक है। कालधर्मिता इस उपन्यास के प्रकृतिगत परिवेश में सम्बोधित की गयी है.................जैसे उस पर सुखी, डबडबाते सूरज की छाया हो जमीन पर फैले बेमतलब और बेलास दुख उसकी आवाज से घिरी हुयी जो किसी अंधेरे गड्ढे से बाहर आ रही थी एक चमकीली सी फुसफुसाहट, जो चाकू की धार से छिछली हुयी उसकी आत्मा को छील जाती थी"[1]

यह बिट्‌टी के साथ जुड़ा हुआ परिवेश मन की परतों को खुद ब खुद उभारता जाता है। वह समझती है यह पहाड़न नथ वाली औरत एक ऐसा दिवा स्वप्न है। दरअसल मन की ठिठकन और चेहरे की छुअन अपने आप दमित इच्छाओं को खोल देती है।

बिट्‌टी सहसा काल सापेक्ष परिवेश में अपने आप को खुलती और बन्द होना पाती है।

वह सुबह उठते ही अचानक बहुत खुश हो जाती है कि वह अपने मन की गहराई में डूबी सारी बातें आज कह देगी लेकिन जैसे ही बिस्तर से बाहर आती है। होठों से कोई भी शब्द न फूटते केवल उसके चेहरे पर एक पीली सी छाया दृष्टिगत होती है।

दरअसल बाहरी परिवेश में चेतना के उड़ते स्वर चिमगादड़ की भांति दीवारों से टकराते रहते हैं जिससे एक अजीब सी सरसराहट होती है और सब कुछ मन में बसा सन्नाटे में लीन हो जाता है।

यह सब बाहरी भीतरी दुनिया का खेल समय सापेक्षता का ही दुहाई देता है।

अंधेरे में हम भेदक तत्व को महसूस कर सकते हैं। और आशा करते हैं कि उजाले में उसे देख भी सकेंगे, लेकिन ऐसा कुछ होता नहीं है।

सदैव की भांति बिट्‌टी की जिन्दगी में भीतर रह जाता है और बाहर का बाहर।

सुबह शाम उसकी यादों की भटकाव उसकी यात्रा उसकी आंखों के समय हयत जमी रहती है, लेकिन वह किसी भी शक्ति से उसे न तो हटा सकती है और न अभिव्यक्ति दे सकती है।

वस्तुतः व्यक्ति अपनी निगाहों के परिपार्श्व में ही भव्य निर्मित करता है लेकिन जब निगाहें ही बेमानी होने लगती हैं तो वह अपने सामने एक धुंध के अलावा कुछ नहीं देख पाता और वैसे ही जैसे घूमता-घामता अंधेरा किसी नगर शहर में सहसा आ गया हो................

"शाम होते ही शहर का सन्नाटा मकबरे पर उतर जाता है और वह घर की तरफ चलने लगता है खाली घर, धूल भरे मुंडेर, सांकल पर कागज की चिदियों फड़फड़ाती हुयी उसका स्वागत करती हैं।"[2]

व्यक्ति का खुला आकाश उसकी दुनिया बदल देता है।

फिर उसका उगता हुआ संसार तो बुझ जाता है या ठहर जात है। सचमुच बिट्‌टी की सोच ऐसी लड़की की सोच है जो छत अंधेरे में डबडाबे आंसुओं से मुंह धो लेती है और चेतन के स्वरों से आंसू पोंछ लेती है।

मन की अनागत भय अतीत जीवी सुख को आगे बढ़ने से रोकता रहता है।

यह सब कालधर्म पर टंगे परदों का नैसर्गिक खेल है।

निर्मल वर्मा ने अपनी कहानियों में काल सापेक्ष सभी प्रकृति का चित्रण किया है।

1- एक चिथड़ा सुख, पृष्ठ 76

2- एक चिथड़ा सुख, पृष्ठ 98

"दहलीज" में मार्च की बसन्ती हवा बह रही है, पीली रोशनी में भीगी घास के तिनकों पर रेंगती हरी गुलाबी धूप है।

लिखा है................'मौन की अथाह गहराई में मन डूबा है............शुरू मार्च की बसन्ती हवा घास को सिहरा-सहला जाती है।[1]

"अन्तर" कहानी में मई का महीना है लेकिन बसन्त जैसा चमकीलापन है, किन्तु वैसा बोझिल नहीं है जैसा गर्मियों में होता है।

एक हल्का घुला सा आलोक जो लम्बी सर्दियों के बाद आता है दिखायी दे रहा है।

"दो घर" कहानी में बसन्त के धूपीले दिन हैं। बीच बहस में मार्च के पागल पत्ते हैं "पिक्चर पोस्टकार्ड" में कनाट प्लेस के कोरीडोर में कड़कड़ाती दोपहरी में भी अंधेरा बना रहता है।

बाहर गर्म चुनचुनाती धूप है। शुरू गर्मी की खट्टी मीठी, हवा है, लू के संग धूल की गरम मोटी परतें बस के भीतर चली जाती हैं, खिड़की के बाहर कहीं आकाश नहीं है केवल गर्द की चादर है जिसके पीछे सूर्य मैले आइने में जलता प्रतीत होता है। दिल्ली के परिवेश में अप्रैल के महीने का यह अच्छा चित्रण दर्शनीय है। ...."मुझे एकदम याद नहीं आता, शायद अप्रैल..............क्वार्टरों के संग-संग लम्बी झाड़ी चली गयी है जिस पर धूप में सूखते गीले कपड़े हवा चलने से फड़फड़ाने लगते हैं।"[2]

'परिन्दे' कहानी में भी वर्षा ऋतु है- परिन्दे में बादलों के कारण पिकनिक में परिवर्तन करना पड़ता है।

यहां बारिश की मुलायम धूप सभी को भाती है 'लंन्दन की एक रात' कहानी में भी जुलाई एवं शुरू अगस्त की जलती रातें हैं 'सितम्बर की एक शाम' कहानी में घोर वर्षा का चित्रण है लवर्स, पहाड़ जलती झाड़ी, खोज, दो घर में पतझड़ ऋतु है।

'लवर्स' में वर्ष के आखिरी दिन हैं, दिसम्बर का मेघाछिन्न आकाश और मुलायम धूप है शिमले में बर्फ गिरने से दिल्ली में इतनी सर्दी हो जाती है कि नायिका खिड़कियां बन्द करके सोती है दिल्ली की सड़कों पर रूखे पपड़ाये पत्तों का शोर है।

पहाड़ में अक्टूबर के महीने में भत्ते भरने लगते हैं। जहां हवा में पतझड़ की हरी आलोक और झुरमराये पत्तों की बोझिल गंध ठहरी हुयी है 'जलती झाड़ी' में पानी पर तृतीय पतझड़ी रूप का एक तिरता हिस्सा बच्चों को लट्टू सा घूमता नजर आता है।

'खोज' में दिसम्बर का सर्द और उजाला आकाश 'बीच बहस में' प्रकृति का उतरता झपटता अंदाज वर्णित है इस प्रकार काल सापेक्ष परिस्थितियों का कहानीकार ने जगह-जगह पर निरीक्षण किया है।

वैसे कहानीकार प्रकृति सापेक्ष मनुष्य के आचरण को समान्तर दृष्टि बिन्दु से अनुशीलित करता है।

जैसे---- "वह छूने लगा, अंधेरे में उनकी देह को।

बारिश के बाद जैसे पेड़ गरम हो जाते हैं, वैसे उनकी देह थी।

हर अंग हवा में थरथराता हुआ, जैसे पुरानी ऐंठी नशे में उलझी हुयी टहनियां उसे अपने में लपेट रही हों, खींच रही हों, जैसे पेड़ के तने में अपने तन का एक-एक तिनका बिखरने लगा

1- जलती झाड़ी, पृष्ठ 87

2- परिन्दे, पृष्ठ 95

हो।''[1]

यह सब धुंधली सी आकांक्षा का प्रतीक होकर कालधर्मी जुड़नशीलता का यथार्थ बन गया है। व्यक्ति इसे भीतर हल्की छुअन के साथ अन्दाज कर सकता है। बाहर तो सिर्फ के मुखौटा परक छटपटाता हुआ अन्दाज है जिसे केवल लोकरीति के प्रतिमानों पर निरीक्षित किया जा सकता है।

कहानीकार ने मैदान, पहाड़, समुद्र, उपवन, पुल, तालाब आदि के चित्र जगह-जगह उकेरे हैं।

'माया दर्पण' कहानी में सूखी रेत के गर्म रेले बार-बार दरवाजा खटखटाते हैं और बार-बार सत्ता ना पाकर आंगन में ही बिखर जाते हैं।

यह सब जिन्दगी की उन बुनियादी रूपरेखाओं को प्रकट करते हैं जिनमें हवा तो चलती है लेकिन चेतना संकुचित होती है।

पांव तो बढ़ते हैं पर दबी सुबकी खिंच जाती हैं नींद तो खुलती है पर जागरूकता लुप्त प्रायः हो जाती है गति तो है लेकिन अवरोध अधिक हैं।

आज के बढ़ते चरणों में जहां एक ओर असाधारण चमक-दमक है वहीं दूसरी और लौटते हुये जीवन की पुरानी पहचान पाने की विकट तलाश है।

व्यक्ति पुराने और नये चाहत के प्रसंगों में एक चमकीले अंधकार में डूबा रहता है।

यद्यपि उसके सामने एक खुला हुआ जीवनपरक मैदान है, लेकिन चाल उसने इतनी ऊबड़-खाबड़ कर ली है कि उसे मैदान पर पैर रखना ही नहीं आता।

कहानीकार ने समय का तकाजा ''पहाड़'' कहानी में सुनिश्चित ढंग से प्रकट किया है...........''दोनों की पुरानी स्मृतियां थीं............और ऐसी नहीं कि एक की अलग और दूसरे की अलग, बल्कि एक दूसरे पर टिकी हुई................समय के संग एक-एक पत्ता जुड़ता गया था और अब वे एक दूसरे के संग इस तरह घुल-मिल गये थे कि यह कहना मुश्किल था कि कौन सा पत्ता किसका है।''[2]

धूप की सुनहरी माया में रंगी हुयी स्तब्ध पहाड़ियां उनकी चुप्पी का पर्याय बन रही हैं।

नंगी बर्फ में लिपटी हुयी खामोशी खुद अपनी खामोशी से आतंकित है।

''एक शुरुआत'' कहानी में लन्दन से प्राग से स्टीमर पर बैठे यात्री हैं।

समुद्र की नीली खारी बूंदों की महीन बौछारें कपड़े गीली कर जाती हैं। स्टीमर चल रहा है। आसपास समुद्र में फैनल जल उभरता हुआ पछाड़ें खा रहा है।

लहरों की चमकीली नोकें पर यात्री को अपनी जिन्दगी नजर आती है। समय सापेक्ष यह चित्रण विचारणीय है............डेक पर हवा का झोंका आता है।

समुद्र की नीली खारी बूंदो की एक महीन सी बौछार हमारे कपड़ों को गीला कर जाती है।

हमने अपनी कुर्सियों को कुछ और पीछे, कोने की तरफ खींच लिया है।''[3]

कहानीकार विदेश में जाकर भी स्वदेश की कालधर्मी प्रकृति को नहीं भूल सका है। अपने देश में पत्ते कब उगते हैं कब झरते हैं इन सबका अन्दाज वह बाहर रहकर भी करता है।

1- बीच बहस में, पृष्ठ 110

2- ज़लती झाड़ी, पृष्ठ 61

3- वही, पृष्ठ 45

धागे में बेर की झाड़ियां हैं।

''पिता और प्रेमी'' में बड़े-बड़े आम हैं

''माया का मर्म'' में सफेद रुई से बादल और मोतियों सी बूंदें हैं

''परिन्दे'' में झींगुरे, तितली, जुगनू, मछलियां, चीड़ और खुवानी के पेड़ हैं।

निर्मल ने कालधर्मी मानवीयकृत वर्णन भी यत्र-तत्र दिये हैं।

उनकी दृष्टि में छोटे-छोटे बादल रेशमी रुमालों से उड़ते हुये सूरज के मुंह पर लिपट से जाते हैं। पहाड़ों के ढलान पर बिछे हुये खेत भागती गिलहरियों से लग रहे थे।

'परिन्दे' और 'सितम्बर की एक शाम' आदि कहानियों में इस तरह के चित्र लगातार उरेहे गये हैं। ऐसा कहना बिल्कुल उपयुक्त है कि कहानीकार समय सापेक्ष प्रयोगधर्मिता को जबरन नहीं ओढ़ता है बल्कि सहज भाव से हर जगह ऐसे प्रकट होता है जैसे अषाढ़ के पहले बरसते हुये मेघ जो कमजोर भी हैं और मोट-मोटी बूंदों के एक हरे भरे संकलन भी हैं।

चतुर्थ
अध्याय

::-::(चतुर्थ अध्याय)::-::

निर्मल वर्मा के कथा शिल्प में साम्प्रतिक संदर्भ

निर्मल वर्मा का कथागत शैल्पिक आयोजन पूर्ववर्ती परम्परा से सम्बन्धित होते हुये भी अपना पृथक अस्तित्व रखता है।

वस्तुतः शिल्प-विधि एक कथ्यगत परिधि का प्रयोगपक्ष है, जिसे कथाकार चेतना प्रवाह के विविध पड़ावों में विविध रंग भरता चलता है। आज हिन्दी का प्रबुद्ध समीक्षक इस तथ्य को प्रत्यक्ष स्वीकारता है कि शिल्प-विधि की ताजगी और अभिनव दिशा कथानक के अभावों की गहराइयों को पाटता है।

वर्मा जी के कथा साहित्य में इस सूत्र के प्रयोग में तो हिचक होती है, लेकिन फिर भी उनके लेखन की अभिजात रागिनी उन्हें विशिष्ट स्तर पर कथाकार बनाती चलती है।

कथाकार की रहस्यात्मक, कौतूहल, आकस्मिकता और वर्णनात्मकता कथ्य विकास के लिये आधार स्तब्ध है। वातावरण, परिवेश, इन आयामों को उभारता चलता है। शैली, भाषा, संरचना, कथ्य दृष्टि से कथानकों की गहराई का समाहार करती चलती है।

कथाकार ने सहज मानवीय समस्याओं को सहज शैली में ही प्रस्फुटित किया है। जीवनपरक दार्शनिकता यद्यपि दुर्बोध और संश्लिष्ट है। फिर भी कथाकार ने कथा साहित्य में उनकी गहराइयों को नयी दृष्टि से अनुशीलित किया गया है वे मानवीय संवेदना को लेकर अतल और संकीर्ण गलियों में शिल्प प्रयोग के बल पर ही भीतर पहुंचे हैं। व्यक्ति के टेढ़े-मेढ़े अन्धकारपूर्ण जीवन को शिल्प के झरोखे से ही देखा है। कहीं-कहीं तो निर्मल जी का शिल्प इतना पैंना हो गया है कि कथानक सूक्ष्म और सीमित सा होने के बावजूद भी आन्तरिक गहराई अधिक छूता चला है। इसीलिए विगत दशकों में निर्मल जी से नौ कहानियों के शिल्प के सूत्रपात का श्रीगणेश माना जाता है। कहानियों में ही नहीं बल्कि उनके उपन्यासों में भी कथानक अपने ढंग के हैं।

भाषा में लाक्षणिक व्यंजना का प्रधान्य है। शैली में विविधता है जिसके कारण कथानक विधान में अनेक प्रयोगों का आग्रह मिलता है। भिन्न शैलियों का प्रयोग होते हुये सभी के मूल में जीवन विश्लेषण का प्रमुख ध्येय है। अन्तः संघर्ष एवं स्वगत कथनों का भरमार भी इसीलिए ही है कि व्यक्ति का अहं का विश्लेषण और अहं की एकाकिता आज भरपूर है। इन उपपत्तियों के बाद भी शैल्पिक सपाटता की वजह से उनके कथानक स्पष्ट और परिष्कृत हैं। कलात्मक आग्रह का बहुत ही अभाव है।

काल सापेक्ष उद्भावनाओं का समावेश है। श्री सुरेंद्र ने नयी कहानी की प्रकृति पर शैल्पिक टिप्पणी करते हुये लिखा है.........'नये शिल्प का प्रयोग चेष्टित होकर उतना नहीं है जितना वस्तु दृष्टि का लगातार प्रयोग रहता है जो वस्तु चयन में लेखक का शिल्प कोण बराबर काम करता रहता है।'[1]

1- नई कहानी- प्रकृति और पाठ, पृष्ठ 76

चाहे कहानी हो या उपन्यास शैल्पिक दृष्टि से दोनों में ही कथानक रूप बन्ध का आयोजन करते हैं। कथानक की गहराई और मार्मिकता को बहुत अधिक पाट देने के रूप बन्ध की अस्मिता का प्रश्न खड़ा हो जाता है। इसीलिए रूप बन्ध को सरासर नकार देना कथा समीक्षा के एक बहुत बड़े पहले से आंखें मूंद लेना है। शिल्प कोई क्रमिक प्रक्रिया नहीं है। शिल्पबोध लेखकीय अनुभूति के सामर्थ्य से जन्म लेकर पुष्ट होता है सत्य ही शिल्प केवल चौंकाने का काम कर सकता है कथानक की गहराई को नहीं छू सकता। इसीलिए शिल्प को सहज आन्तरिक प्रक्रिया मान लेना भी उपयुक्त ही कहा जा सकता है।[1]

विद्यागत प्रयोगशील रचना की जीवन्त का मुख्य लक्षण शैल्पिक योजना ही है। शिल्प बोध की अनिवार्यता रचना कर्म ही अंगभूत शर्त है।

निर्मल वर्मा ने इन्हीं प्रयोगशील धाराओं में आज के त्रास की अवस्था में अभिनव शैल्पिक संयोजना से कहानी के नये परिधान में नये धागे पिरोये हैं समूचे विश्व का परिवेश आज जिस प्रकार असंगति का शिकार है उसी प्रकार अपने आचरण व्यवहार में या कहें कि प्रयोग में भी यह निजी अस्तित्व दर्शन की शिल्प विधि को ओढ़ता चलता है। वर्मा जी का समग्र कथा साहित्य इसी अवधारणा के मूल में बुना गया है। कथाकार चरित्र विवरण, संवाद, भाषा शैली, उद्देश्य आदि परम्परागत तत्वों के प्रति अधिक सचेत न होकर प्रस्तुत कहानीकार ने कथा के कथ्य और शिल्प पर गहराई से विचार करते हुये व्यक्तिगत अनुभूत सत्य को जगह-जगह टांका गया हैं। उनके कथा साहित्य में इसी कारण कथ्य और शिल्प परस्पर गुंथे हुये हैं। उनका प्रत्येक कथ्य अपने उपयुक्त शिल्प को स्वयं ढूंढ लेता है। इसलिए सह कथाकार विशिष्ट भाषा और शिल्प के कारण ही अपनी पहचान बनाने में हर जगह सफल हुआ है। यह सफलता जितनी कथाकार की सपाटता को लेकर है उतनी ही शिल्प की प्रयोगशीलता को लेकर और दोनों और के ही अधोलिखित विस्तृत आयाम हैं------

(क)- भाषिक संरचना और नया शिल्पः-

वर्मा के कथ्य के अनुरुप ही भाषा के प्रयोग स्वतः अनूस्यूत होते हैं। उनके उपन्यास की भाषा के प्रयोग से अनुभूति और प्रयोग और शिल्प की अभिन्नता स्पष्ट हो जाती है। आज अनुभव के लिये भाषा संस्कार करने लगता है। डा. धनंजय वर्मा ने आज की हिन्दी कहानी पर विचार करते हुये लिखा है कि 'वस्तुतः आज की कहानी में जिस भाषा की पहचान हुयी है वह परिवेश की तीखी सच्चाइयों को व्यक्त करने में सक्षम है। पहली बार ऐसा होता है कि कहानी ने जीवन की मूल्यों की निरर्थक तलाश में न भटककर उस भाषा की खोज की यात्रा प्रारम्भ की है जो जीवन और सम्बन्ध मूल्यों के अन्वेषण के आग्रह से पूर्ण रहती है।''[2]

निर्मल के उपन्यास एवं कहानी साहित्य में भाषिक संरचना का स्वरूप पांच प्रकरणों में प्रयुक्त हुआ है। वे हैं -----**1-** भावनाकूल भाषा **2-** जनभाषा **3-** अलंकृत भाषा **4-** काव्यात्मक भाषा **5-** सूत्रात्मक भाषा कथ्य के अनुरुप भाषा है भिन्न-भिन्न रूपों में भाषानुकूल भाषा के विशिष्ट और प्रभावी रूप हैं। इस भाषा के कथ्य की आन्तरिक अभिव्यक्ति सहज और पुष्ट होती गयी है। जैसे---''वह निश्चल खड़ी थी। वह सुन रही थी। उनके बीच सन्नाटा था। और वह इतना गहरा

1- कहानी की संवेदनशीलताः सिद्धान्त और प्रयोग, पृष्ठ 81   2- आज की हिन्दी कहानी, पृष्ठ 12

कि उसे, जैसे उनकी आवाजें पहले उसके पास आती हों और फिर उसके कानों से छनकर उसके पास ---------।''[1]

जब-जब चलते थे, तो बहुत हल्के ढंग से --------, 'जब दरवाजा खोला तो काया दंग सी रह गयी इतने बड़े हातों की इतनी हल्की छुअन हो सकती है, उसने पहले कभी नहीं देखा था।''[2]

कितने अनजाने सुख आ जाते हैं मैने सोचा ----- वह सुख नहीं होता बल्कि आदमी खुद अपने दुख को छोटा करके देखने लगता है।[3] ''इन तीनों उदाहरणों में क्रमशः बिट्टी की मनोभूमि सहसा आलोकित हो उठती है। 'दो लाशें' सन्नाटे में भी एक थरथराती कौंध उसकी शिराओं में लपलपाने लगती हैं। यद्यपि परिवेश की बीहड़ आंतकित, मौन दृष्टि सब कुछ भीतर ही भीतर जला देती है फिर भी एक ऐसी जबरदस्त इच्छा है जिसके सहारे एक क्षण के लिये ही उसके भीतर कोई चीज थरथरा जाती है। वह भरकरा अपने आग्रह पर सब कुछ हटाना चाहे फिर भी उसकी दुनिया एक अन्तहीन समय के लिये ही ठहर जाती है। इसे भावात्मक अजीब सी उलझन की संज्ञा दी जा सकती है। भाषा के झरोखे से भावों की सूक्ष्म किरणें बिट्टी के भीतर तक फैलती चली जा रही हैं। काया, दूसरे उपन्यास बहुत बारीक हल्की सी छुअन को परिवेश सापेक्ष महसूसती है। शायद वह स्मृतियों को जोड़ने की चेष्टा करती है और उसे लगता है कि सिर्फ एक दो घड़ियां ही ऐसी होती हैं जो उतरते चढ़ते प्रकाश को हल्के से अन्दाज के साथ समझती चलती है। इसी क्रम में 'रायना' का वह रुख ''वे दिन'' उपन्यास में अधिक उभरकर भाव सिद्ध हो जाता है जब वह भक्ति हृदय से दार्शनिक परिप्रेक्ष्य में दुख और सुख की परिभाषा करने लगती है- दरअसल सुख एक अजीबोगरीब हालात के उपलक्षण का नाम है। बिना किसी शब्द के और बिना किसी प्रश्रय के और सहायता के वह व्यक्ति को दिलासा दिला ही देता है इन वक्तव्यों में भावना रुप भाषिक संरचना का एक रूमानी अन्दाज है।

'जलती झाड़ी' कहानी में प्रयुक्त शब्द अजनबीपन की अनुभूति को गहराते हैं। जैसे- पिछली रात रोनी को लगा कि इतने वर्षों बाद कोई पुराना सपना धीमे कदमों से उसके पास चला आया।''[4] ''बीच बहस में'' भावानुकूल प्रकृति का स्वर गहरा है। ''डायरी का खेल'' की पंक्तियां रूमानी भाषा का उदाहरण स्पष्ट करती हैं। डेढ़ इंच ऊपर के शराबी की भाषा भावानुकूल प्रभा को स्पष्ट करती है जैसे आदमी को जमीन से करीब डेढ़ इंच ऊपर उठ जाना चाहिये।[5]

निर्मलकथा संसार में कथ्यगत सभी दूरियों को भावनात्मक भाषा से एक संग बांध लिया गया है। ''जलती झाड़ी'', ''कुत्ते की मौत'' आदि कहानी शीर्षक किसी शब्दातीत रहस्य को ही प्रकट करते हैं।

इन कहानियों में प्रयुक्त स्त्री पात्रों को तरल स्निग्ध खिलखिलाहट का स्वरुप आगे पीछे निरन्तर परिवेश में मंडराता ही रहता है। धरती की गंध, दफ्तरी वातावरण, शहरी तनाव, झीलों और पहाड़ों का एकान्त, मन के भीतर बैठी चेतना में पंख लगाकर उड़ने लगता है। एक अजीब सी मार्मिक अनुभूति लेकर उपजी हुयी भाषा लेखकीय अनुभव को और अधिक चारुत्व प्रदान करती चलती है जिससे विविध भंगिमा विधि कोणों से अभिव्यक्ति तो होती ही है, साथ-साथ सम्बन्ध मूल्यों का अन्वेषण भी होता चला है। जीवनगत मार्मिक व्यंजना कथाकार के हर कथ्य

1- एक चिथड़ा सुख, पृष्ठ 67
2- लाल टीन की छत, पृष्ठ 103
3- वे दिन, पृष्ठ 152
4- जलती झाड़ी, पृष्ठ 87
5- पिछली गर्मियों में, पृष्ठ 35

में भाषित संरचना में भावानुकूल स्वरूप में ही प्रकट हो सकी है।

कथानुरुप निर्मल जी की भाषा देश विदेश में रहने के कारण जन भाषा के अधिक निकट रही है। भाषा का सहज स्वाभाविक प्रयोग हर पहलू पर अपना नय असर छोड़ता चलता है। जिसे अंग्रेजी, उर्दू, हिन्दुस्तानी आदि अनेक भाषाओं के सहज स्वाभाविक प्रयोग में देखा जा सकता है।

अंग्रेजी शीर्षक ही इस तथ्य को स्पष्ट करते हैं कि उन्होंने अपनी कहानियों में स्त्री पुरुष के नामों, स्थानों के नामों तथा पद पदार्थों के नामों में अधिक दिलचस्पी दिखायी है।

जैसे 'पिक्चर पोस्टकार्ड', 'लवर्स वीक एण्ड' (कहानियों के नाम), फादर, ऐलमेड, ह्यूबर्ट, मिस वुड, लूसी, जैली, जाज, बिली, अमालिया, माथी (पात्रों के नाम), लन्दन, प्राग, बेनिस, जर्मन, बर्लिन, डैसडन, न्यूरवर्ग, वासल (नगरों के नाम), स्कावर, पब, बार, टेरेस, कारीडोर, सिमिट्री, स्टीमर, आर्केस्ट्रा, रेस्तरां, चेबल पोर्च, सेण्डविच लाइब्रेरी, मेनगेट आफर, अफेयर टाइम्स, कनाट प्लेस, टेबिल लैम्प (पद पदार्थों के नाम)।

इस प्रकार भाषिक संरचनाओं में कथाकार ने अंग्रेजी के संयुक्त शब्दों से वाक्य विन्यास तय किया है।

इतना ही नहीं कहीं-कहीं तो वाक्य के वाक्य अंग्रेजी में ही प्रयुक्त हुये हैं।

यथा- द गोल्डन सिटी.............द सिटी आफ हण्ड्रेड

टावर्स................द सिटी और टियर्स एण्ड नाइट मेयरर्स।[1]

सिनयोर..............यू लाइक मैडोना।[2]

आई लव द, आई लव द स्नो -फाल..............गुड नाइट मैडम गुड नाइट।[3]

अंग्रेजी शब्दों के साथ ही साथ कथाकार ने उर्दु का शब्दों का भरपूर प्रयोग किया है।

जैसे तीसर गवाह परिन्दे एक शुरुआत दहलीज कहानियों के नाम करीमुन्नदीन बानो रूनी रियाना, मेहरुसिन्न जैल, शम्मी पात्रों के नाम तब्दीलियाप लश्कर खामखा, अजीब तमन्ना, फिलहाल जिम्मेदारी, असी खुमारी, लापरवाही, बेफिक्री, खौफनाक, उम्मीदन, इजाजत, बिलागा, मुलाकात, जर्द, निगाह, जिक्र, जिरह, इश्तहार, हरकत, मुश्किल, लापरवाही, गमगीन, पद पदार्थों के नाम। इस प्रकार बहुत सारी कहानियों में उर्दू शब्दों से संयुक्त वाक्यों के उदाहरण भी मिल जायेंगे। यथा -----'लतिका बिला नागा क्लब जाया करती थी -----उस मुलाकात के बारे में कुछ भी नहीं कह सकती हूं। अब क्या फर्क पड़ता है।'[4] कथाकार ने सबसे जिन शब्दों का कथा संसार में यथावत प्रयोग किया जाता है वे अधिकतर हिन्दी के ही हैं। साहित्यिक परिमार्जित शब्दावली में भी कहानियों के मध्य ऐसे शब्दों को अनायास ही ढूंढा जा सकता है। जैसे विक्षिप्त, विकृत, स्तब्ध, सितम्बर की एक शाम, मग्न, कंकाल, निलिप्त, मुद्रा, स्निग्ध, अनिर्वनीय, माया दर्पण, हस्तलिपि, निर्विकार, धागे निस्तब्धता, आतंकित, मंत्रमुग्ध, रक्तहीन, अप्रत्याशित, इतनी बड़ी आकांक्षा। इस प्रकार के तत्सम शब्दों के विविध प्रयोगों में भी कथाकार सजग दृष्टि से आगे बढ़ता गया है। कहीं-कहीं तो अंग्रेजी उर्दू और हिन्दी के तत्सम शब्दों का अद्भुत विन्यास बहुत ही अच्छा रहा है। जैसे- ''दिग्भ्रांत-सी खड़ी हुई ह्यूबर्ट के पीले उद्विग्न चेहरे को देखते रही।''[5]

इस वाक्य में ह्यूबर्ट (अंग्रेजी), चेहरे (उर्दू), दिग्भ्रांत और उद्विग्न (तत्सम हिन्दी) आदि शब्दों

1- वे दिन, पृष्ठ 25
2- जलती झाड़ी पृष्ठ 71
3- परिन्दे, पृष्ठ 122
4- परिन्दे, पृष्ठ 128
5- वही, पृष्ठ 144

का प्रयोग लेखक की बहुज्ञता और आधुनिकता का ही परिचायक है। कथाकार निर्मल ने भाषिक संरचना में प्रतीकों के बिम्बों का भी सहारा लिया है जिससे एक ओर अलंकृत भाषा के प्रश्रय से कथानक में चारुत्व का योग हो. गया है। राग सम्बन्धों के सन्दर्भ में कथाकार की भाषा काव्यात्मक ही बन गयी हैं। जिससे शिल्प में अपने आंप ही अभिनव कला कौशलता की गन्ध आने लगी है। जैसे--- ''वह दुबारा लेट गयी। इस बार बिस्तर ठंडा सा जान पड़ा।......छोटे को अपने पलंग पर खींच लेती,.......उसकी देह हमेशा गर्म होती थी।''[1]

उसके बाद हम देर तक अलग-अलग देशों की लड़कियों के बारे में बातें करते रहे। लगता था जैसे पुरानी भूख के भीतर से एकाएक नयी भूख जाग गयी हो।''[2]

इस प्रकार की रुमानियत, रागात्मक, दिलकश, भाषा के सहारे जिन भाव का कथाकार ने जिक्र किया वे सभी तरह के सम्बन्धों में अलग-अलग ढंग से निरूपित किया है। भाषा की काव्यात्मक के लिये गद्य राग में ही लेखन का आकर्षण है। निर्मल जी ने इसी कारण प्रेम पत्रों की प्रकृति में संजोये हुये शब्दों को गद्य राग में ही वर्णित किया है यद्यपि आधुनिकता बोधिय चरणों में अंग्रेजीयत के रोमान्टिसीजिम का असर उन पर कुछ ज्यादा ही है उन्होंने मूक लहरों में हवा को तिरते हुये देखा नीरवता के हल्के छुअन को भावों की बदलती करवटों में सुना गहरी नींद में डूबी सपनों की परछाइयों को पकड़ा स्तब्धता में जागती हुयी अवधारणाओं को पढ़ा। इस प्रकार के कथ्यात्मक सूत्र उनकी कहानियां जगह-जगह सटीक भाव को लेकर अवतरित होते गये हैं।

आज की कहानियों में सूत्रात्मक भाषा विविध स्तरों को लेकर चिन्तन के परिप्रेक्ष्य में प्रयुक्त हो रहा है। मर्म स्पर्शता, सूक्ष्मता और अनुभूत सत्य इसीलिए इन कहानियों के प्रमुख गुण माने जाते हैं। छोटी-छोटी सूक्तियां कहानियों में ही नहीं बल्कि उपन्यासों में भी एक विचित्रता ओढ़े हुये हैं। इस विचित्रता से व्यक्ति की तन्मय सी तल्लीनता किसी अदृश्य की ओर अग्रसर हो जाती है। ''एक चिथड़ा सुख'' उपन्यास में बिट्टी पात्र की मनःस्थितियों को बारीकी से अनुशीलित करते हुये सूत्रतात्मिक भाषिक संरचना का उपन्यासकार ने प्रंथम ग्रहण किया है वह चुपके से-----पीछे से आयी थी -----उसके कपड़ों की गंध भी उसे पकड़े थी। उन्होंने बिट्टी को देख और बिट्टी ने उनका हाथ पकड़कर अपनी ओर घसीट लिया ....वे प्यार करते हैं वे पागल हैं ''दे आर रुइनिंग देयर लाइव्स।''[3]

उपन्यासकार ने भाषा प्रवाह में छोटी-छोटी सभी अनुभूतियोचं को केंन्द्रीभत करके भंवर बना दिया है मानो वह इन सूत्रों द्वारा आने वाली पीढ़ियों के लिये यथार्थवादी परिभाषायें दे रहा है। इन कहते हुये डबडबाते हुये चक्करों में फंसा हुआ आदमी अपनी बिरादरी जिन्दगी को चाकू की तेज धार में बल खाता हुआ काटता चलता है। उसके मन में निहित झुलसती हुयी आभायें एक बहुत बड़ा धक्का देकर नीचे आ गिरती हैं और उसे लगता है कि वह इन शब्द परक सूक्तियों के सहारे में अंधेरे में चलता रहता है। वस्तुतः इस भाषिक संरचना की प्रक्रिया से मनुष्य सहसा ऐसा ठिठककर- खड़ा हो जाता है जैसे भीरू जानवर एक अनहोनी आहट पाकर बीच रास्ते में खड़ा हो जाता है। सूक्तियां आज के व्यथित व्यक्ति को मंद-मंद तरीके से सहलाने का हर काम सकती हैं और कभी-कभी धुंधले कुहासे में व्यक्ति के सारे जीवन का आच्छान करती ही कुछ सोचने विचारने के लिये मजबूर करती है।

1- लाल टीन की छत, पृष्ठ 113 2- जलती झाड़ी, पृष्ठ 103 3- एक चिथड़ा सुख, पृष्ठ 78-79

इन मुक्तिपरक शब्द वैभव को अधोलिखित उदाहरणों में जैसे- 'कुछ लोग ऐसे ही होते हैं। अपने साथ एक खास अपनी दुनियां को ले आते हैं। सिपाही, बाजीगर, बहुत छोटे बच्चे, अस्पताल के मरीज।'[1] 'प्रेम-अगर ऐसी कोई चीज है तो बहुत महत्वहीन और आकस्मिक परिस्थितियों में आरम्भ होती है और उसका अन्त भी शायद बहुत ही छोटे और अन्तहीन कारणों से हो जाता है।'[2]

कथाकार ने नियति, भाव, विचार, सृष्टि, व्यक्ति आदि के परिप्रेक्ष्य में बहुत-कुछ इन्हीं सूक्तियों के आधार पर कहा-सुना है। 'वीक एंड' कहानी में लेखक ने जीवनगत उस आयाम पर प्रकाश डाला है। जिसे आज के तनावपूर्ण जिंदगी में सबसे ज्यादा सोचा जाता है। कहानीकार कहता है कि कभी-कभी ऐसा होता है कि आदमी जीता हुआ भी करीब-करीब मरने की सीमा तक पहुंच जाता है-------'मरता नहीं लेकिन मरते हुए प्राणी की तरह सारी जिन्दगी घूम जाती है.............................सब चुके हुए मौके और आधे फैसले काठ के घोड़े तरह एक दूसरे के पीछे भागते हैं।'[3] दरअसल आदमी का हर छोटा सा फैसला एक लम्बी राह तक घिसटता रहता है और यहीं जाकर जिन्दगी खत्म हो जाती है। सूक्ति प्रयोग के बल पर कहानीकार ने बरबस पाठक का मन जीत लिया है। व्यक्ति आज तक अपनी विचार भूमि पर फैलकर खड़ा होने में असमर्थ है। भागम-भागम के इस जमाने में कोई भी व्यक्ति एक जमीन पर पैर जमाये खड़ा नहीं रह सकता। जब तक वह आगत और अनादर के द्वंद्व में जकड़ न जाये तब तक एक धुंधली आशा में अपने को खोता ही रहता है। निर्मल वर्मा की भाषिक संरचना इन्हीं तमाम खोजों से भावनानुकूल और चिंतनपरक है। उन्होंने युगानुरुप भाषा को नया शिल्प प्रदान किया है इसीलिए कहा जाता है कि उनकी भाषा में अंग्रेजी का पुट अंतर्राष्ट्रीय बोध का साक्ष्य है। उर्दू का प्रयोग हिन्दुस्तानी सामाजिक संस्कृति का परिचायक है और तत्सम हिन्दी शब्दों का प्रयोग विशुद्ध भारतीयता का परिपोषक है। इन्हीं निर्मित आयामों पर चुनी हुयी भाषा का बल लेखक को छुए-अनछुए अनुभूत शब्द को पकड़ने में कामयाबी दिलाता है। दरअसल हर भाषा की निजी विशेषता होती है। उसमें भाषा प्रकृति अपनी जवाबदेही के लिए तत्पर रहती है।

अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर हलके-फुलके शब्दों के माध्यमं से भीतर तक छुआ जा सकता है। उसे अन्य किसी भाषा से नहीं और जिस दार्शनिक तथ्य को कोमल कान्त विचारणों को भाव विह्वल हृदय को जैसे संस्कृत निष्ठ शब्दावली से भारत-भूमि पर अभिव्यक्त किया जा सकता है वैसा अंग्रेजी शब्दों से सुगम्भित हिन्दी भाषा से कदापि नहीं। इसी प्रकार विश्व की अन्य भाषाओं का अपना-अनपा महत्व है।

कहना यह होगा कि भाषित संरचना की लेखक का वह परिधान है जिसे ओढ़कर उसके जन और जीवन को राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर देखा और समझा है। निर्मल वर्मा इस दृष्टि से बहुत सफल रहे हैं। उनकी खास पहचान संरचना के मूल में कथ्य और शिल्प की परिधि में भाषा को लेकर ही की गयी है। आज के संदिग्ध, संशयग्रस्त, तनावपूर्ण जिंदगी आदि से जुड़कर भाषा न चले तो वह लड़खड़ा कर ठहर जायेगी। इस बात का कथाकार ने बराबर ध्यान रखा है इसीलिए निर्मल वर्मा को भाषिक संरचना का आंदोलनकर्ता भी कहा जाता है।

1- पिछली गर्मियों में, पृ. 102

2- परिन्दे, पृष्ठ 42

3- बीच बहस में, पृष्ठ 50

(ख) सांकेतिक प्रभावान्विति:-

भाषा का संरचनात्मक पक्ष सांकेतिक भाव निपुणता के साथ जब लेखक कथा में सम्प्रेषित करने लगता है तब जीवनगत उन आयामों को अभिव्यक्ति मिल जाती है, जिसे आज तक पूर्ण रूप से रहस्यदर्शी माना गया है। वर्णित कथावस्तु के संदर्भ में लेखक की रचना पद्धति का परोक्ष अथवा अपरोक्ष रूप से सांकेतिक प्रभावों को उकेरती चलती है। कथा के मध्य जितने भी विन्यास भाव प्रकट किये जाते हैं, उन सबमें सांकेतिक आग्रह का भरपूर जटिल योग रहा है। क्षणों में सांकेतिक आग्रह का भरपूर योग रहता है। वर्ण्य वस्तु के अनुरूप ही उसकी अभिव्यक्ति के सांकेतिक प्रभाव इससे विवेचित किया जा सकता है। पात्रों की मनःस्थिति का रोचक अनावरण प्रतीक चिन्हों द्वारा ही उद्घाटित हो सकता है। इन सब प्रमुख केंद्रीय बिन्दुओं के प्रयोग में निर्मल वर्मा ने बहुत सटीक अनूठे प्रयोग यत्र-तत्र कथ्य में समंजित किये हैं जैसे-

"अभी नहीं......................अप्रैल में।"

"घर के बाहर है।"

"और कहां?" उन्होंने बियर का घूंट लिया और उनके स्वर में एक अजीब सा उत्साह छलछला आया।"[1] बिट्टी हर चीज की तह में जाना चाहती है, वह जिन्दगी से उदासीन नहीं है, इसीलिए वाह्य परिवेश के बीच उसे सभी कुछ जानने की उत्सुकता रहती है, बिट्टी और डैडी के बीच वे संवाद का सांकेतिक स्वरूप बहुत ही पारदर्शी और मार्मिक होता गया है।

नित्ती भाई की विगत उपस्थिति का आंकलन करते हुए लॉन के मध्य स्टेज पर बीते हुए परिवेश को प्रस्तुत कर देने में लेखक ने सांकेतिक प्रभाव को भरपूर उपयोग किया है।

जैसे---"ऊपर चांद निकल आया, बहुत छोटा, एक सफेद कटे हुए नाखून सा। अब पहले जैसे धुंधलका नहीं था, न कोई परदा, न परछाई, न धुंध, हर चीज अपने में अकेली, ठोस खड़ी थी, गमले, कुर्सियां, दरियों पर बैठे लोग।"[2]

चांद का निकल आना लेकिन आकार-प्रकार और रंग में विचित्र खोना इस तथ्य का साक्ष्य है कि स्टेज के बाहर भीतर का ठिठका हुआ परिवेश किसी रूमानियत चाहना से लबालब भरा हुआ है, बैठे हुए लोगों का स्तब्ध वातावरण इस बात का संकेत करता है कि शान्त आवाज, साफ और ठण्डी गर्म होकर चतुर्दिक दिशाओं में अपना प्रभाव छोड़ती जा रही है।

एक तीसरा अभिप्राय सम्वेदना के धरातल पर गुजरने लगा है।

अजीब सी आधी जिन्दगी इन रास्तों पर होकर गुजर रही है। व्यक्ति भले ही उस परिवेश की आधुनिकतापरक स्निग्धता भीगे हो लेकिन याद का मंदिम आलोक उनके चेहरे पर गिरकर उनकी उम्र का सफेद तितीरीपन दिखाने में सक्षम रहा था।

इस प्रकार के गहराने वाले कौतूहल तन्मय में तल्लीनता में परोक्षतः अदृश्य आवाज को उभर जाने में कामयाबी मानते हैं।

"डैरी", बिट्टी और नित्ती भाई के मध्य चिलचिलाती जीवनगत प्रखरता को बौद्धिकता के

1- एक चिथड़ा सुख, पृष्ठ 35

2- वही, पृष्ठ 37

स्तर पर इसी प्रकार वर्णित किया जा सकता है। निर्मल वर्मा प्रभाव परक शैली से कुछेक तथ्यपरक संकेत सारे परिवेश में समग्रता के साथ पिरोते चलते हैं। उनका वर्णित कथ्य व्यक्ति भीतर बाहर का द्वंद्व बनकर अवतरित हुआ है। काया और वीरू का संवाद जिस प्रभाव संकेत की उपार्जना करता है विचारणीय है................

तुम चले क्यों आये?'' काया ने पूछा।

''ऐसे ही..............................''

वीरू चुप था।

उसकी आंखें रास्ते पर टिकी थीं।

हवा में बार-बार उसके बाल आंखों पर गिर आते थे।

''तुम नाराज हो?'' काया का स्वर हल्के से कांप गया। वीरू रुक गया-...........उसकी ओर झिझकते हुए देखा, ''तुम गिरने में क्या सोच रही थी?''

कुछ नहीं वीरू।''[1]

काया के इन उपर्युक्त शब्दों में मन के भीतर बैठी धुंधलकी छाया उभर रही है। वह भीतर बैठी शान्त तटस्थ चीज को सांसों की चलती हवा के इशारों में परिमाणित करती चलती है।

सचमुच ऐसा ही होता है कि अचानक कोई आदमी उन जगहों को घेर लेता है जहां पहले डर था, बेचैनी थी। इसी तरह सहसा काया का ध्यान भटक जाता है और उसे लगता है कि एक महीन सी छाया उसके मन के फ्रेम पर सरकती आ रही है। वह विस्मत होकर वीरू को नीचे ढलान पर खड़ा देख रही थी। वीरू को केवल उसके शब्दों के दोहराने के अलावा और कोई उपाय नही था इसीलिए प्रभावपूर्ण सकते में उसने ये शब्द बिना सोचे-समझे कह दिये थे, और कह देने पर उसे लगा कि गिरजे की ठहरी हवा के बीच वह जो चाहे कह सकते हैं। काया बेचैन होकर बिना पीछे देखे अपनी आंख पे बीरू की ओर उठाकर बातों ही बातों में सब कुछ जान लेना चाहती है। अभी कोई चीज उसके भीतर पूरी तरह से फूटी भी न थी, फिर भी वीरू की शान्त तटस्थ निर्भीक आंखों को देखकर उसके शब्द सूख गये, और काया मंत्रमुग्ध सी उसे देखती रह गयी। कथाकार ने यह सब वे सरकती हुयी जिन्दगी की उस भावभूमि को शब्दों में बांधने का प्रयास किया है जिनमें जीवन का अंधेरा और उजाला एक सा एक साथ ही सिमटा हुआ बैठा है।

''वे दिन'' उपन्यास में भी निर्मल ने इसी प्रकार की सांकेतिक आलोक को यत्र-तत्र शब्द दिये हैं। रायना और ''मैं'' पात्र के बीच गहराता हुआ संवाद परिवेशात्मक प्रभान्वित को विलोता चला जा रहा है। देखिये------

'' सुनो..................फिर मुझे चलना चाहिए।''

उसने कहा।

''अभी क्यों?'' मैंने उसकी ओर देखा।

''भीतर कमरे में अकेला होगा.................वह कई बार रात को उठता है।''

उसने कहा

''रायना.........................तुम सुबह तक रुक नहीं सकती।''

मैंने बिना मुड़े कहा।''[2]

1- लाल टीन की छत, पृष्ठ 123

2- वे दिन, पृष्ठ 167

लेखक रायना के दैहिक चेतनापरक इम्तिहान में उत्तीर्ण होने का प्रयास करने लगता है। निस्तब्ध वातावरण में भावनाओं का गुंजार उत्तरोत्तर बढ़ने लगता है। वे सोचने लगते हैं। शायद शरीर पर भी एक मौन संवेदिक इतिहास होता है।

तपता, गर्म, सनसनाती लू की तरह। विस्मय से वें बहुत देर तक सन्नाटे को बुनते रहते हैं, धीमे-धीमे शान्त स्वरों में वह लापरवाही पूर्ण वैचारिक स्तर को उधेड़बुन के साथ नये अध्याय देते रहते हैं। उनके मन का धुंधलका परिवेश में घुल जाता है, जिसके कारण वे कभी निष्प्राण से होकर निष्क्रिय हो जाते हैं तो कभी सक्रिय होकर मन की तहों को उकेरने लगते हैं। ''रायना'', ''मैं'' पात्र के साथ अनायास अनपा उद्भावित मन न्योछावर करती चलती है। फिर कुछ देर बाद दबे कदमों के साथ सब कुछ गायब हो जाता है। एक छोटे से पल के लिए संकेत भरे शब्दों में व्यक्ति एक अन्दरूनी अन्वेषण को साध्य मान लेता है, यद्यपि चारों ओर निखरा सा वातावरण भावनाओं को गहराई में उतारता चलता है। रायना भी इन्हीं कारणों से शब्दों को टटोलने का प्रयास करती चलती है। जिससे उसके भीतर छिपा नारीत्व मोमबत्ती की भांति भीतर ही भीतर प्रकाश करता चलता है। वह सिर्फ पुरुष मात्र के हवन्यात्मक संकेत को पकड़ना चाहती है, वह भी वैसे ही जैसे शीशों पर कुहरा जम गया हो और उसके परे चांदनी सिर्फ एक मैले पीले धब्बे सी चमक रही है। इसी चमक में नीरवता को तोड़ी हुयी वह अनिश्चित देहरी पर अपने पांव जमाये खड़ी रहती है। निम्नलिखित उदाहरण इस विचार भूमि का बहुत सटीक प्रमाण है।

''तुम अकेले रहते हो?''

''एक लड़का और है.....................वह आजकल घर गया है।''

तुम कब तक खड़ी रहोगी?

मैंने उसकी ओर देखा।

वह भीतर चली आयी और कोट उतारने लगी।

''अभी ठहर जाओ.................मैं आग जला लेता हूं।''

''ज्यादा सर्दी नहीं है।''

''उसने कहा और कोट उतार कर कुर्सी पर रख दिया।''[1]

रायना इन शब्दों की आत्मीयता में उस गहराई में उतरती चलती है जिसमें गरमाहट है, अपनापन है और हल्का सा रुखापन भी है। वे चुपचाप बहुत देर तक एक-दूसरे को देखते रहते हैं। जलती आग की धुंध में जब कभी कोई लकड़ी चटक जाती तो वे चौंक उठते हैं। यही विस्मय रेखा एक छोटी सी झुरझुरी उनकी देह में भर देती है। वे बहुत देर तक लकड़ियों के जलने और सिर-सिर की आवाज सुनने में अपने आपको को खोते रहे। एकाएक उनकी आवाजों में रोशनदान के वे पुर्जे समायोजित होने लगे जिनमें फीका-फीका प्रकाश हल्का-हल्का झरने लगा। कथाकार उन्हीं स्वरों को हृदय की धड़कनों से अभिन्न बनाता चलता है। इस प्रकार के बहुत सारे छितराये हुए टुकड़े जीवन के दरवाजे पर एक निर्वाक कौतूहल करते चलते हैं और संकेत प्रभाव की तो बात ही विचित्र है। जिसमें स्त्री-पुरुष संबंध ठहर जाते हैं। अंधेरे में मन की परतों के नीचे दबी-सूखी पत्तियां सरसराने लगती हैं। सब कुछ इतना नीरस हो जाता है कि लगता है कि सारा का सारा सब भीतर रुक गया है और हवा के साथ समय बहता चला जा रहा है। सचमुच बड़ी अजीब

1- वे दिन, पृष्ठ 157

स्थिति होती है जब संकेत बिन्दुओं पर बल पड़ने लगता है। बातें भले ही छोटी हों लेकिन वे एक चतुर मार्गदर्शक की भांति सब कुछ सामने उपस्थित कर देते हैं और लगता है कि बरसों से बाहर तलाशी हुयी गंध आज भीतर सिमट आयी है और भावों की एक लम्बी कतार एक पर एक आरुढ़ होकर आज सब कुछ खोल देना चाहती है। एक बचकाने अंजान उन्मादी स्तूप को अवचेतन में टटोलने का प्रयास किया जाता है जिससे पीछे बहुत संकलित धावा धक्का दे रहा है। व्यक्ति के भीतर का फंदा सांकेतिक प्रभान्विति में ही खुलता है। भीतरी गांठ तब और ज्यादा खुलने के लिए तत्पर होने लगती है जब उसमें एक अजीब सा उजाला उभर आया हो। स्त्री-पुरुष के सह-सम्बन्ध में सांकेतिक प्रश्नों को इन्हीं भोगे हुए यथार्थ तथ्यों में अनुशीलित किया जाता है। यथार्थतः व्यक्ति के भीतर बसी हुयी गंध उसके शरीर से भिन्न करके नहीं देखी जा सकती, उसे अनजाने में ही सांकेतिक शब्दावली के साथ महसूसा जा सकता है। निर्मल जी इन कथ्यों से पूरी तरह से जुड़े हुए हैं, एक पहने हुए कपड़े की तरह। वे दो-चार शब्दों में ही जलती हुयी अनुभूति को एक-दूसरे के ऊपर फेंकने में समर्थ है। उसका अनुमान पात्रों के साथ इस तरह सटीक बनता चलता है, जिस तरह वे अप्रत्याशित रूप से एक-दूसरे के अजनबी दोस्त हों। कथाकार ने इसी प्रकार की भाषा का संरचनात्मक पक्ष उपन्यास में हर जगह प्रयुक्त बनाया है जिसमें पात्रों के बोल मनःस्थिति का दर्पण बनकर उनकी छवि के प्रकाशन में सफलीभूत रहे। लेखक शब्दों से रिश्तों का निवेदन, संवेदन और प्रकाशन परिवेश अनुरूप ही प्रभावपूर्ण संकेतों में करता हुआ कथानक के मूल को साक्ष्य बनाता चलता है। निर्मल की कहानियों में सांकेतिक स्वरूप बहुत ही सहज सपाट भाषा शैली में प्रस्फुटित हुआ है। वे कथ्यात्मक, प्रतीकात्मक एवं चिंतन प्रधान शैली को सांकेतिक स्वरूप प्रदान करते गये हैं। कारण है कि वे यथार्थवादी धरातल पर ही बहुत सारे संकेतों को एक साथ उतार देना चाहते हैं। उनके संज्ञा, विशेषण, क्रियापद आदि व्याकरण रूप स्थल-स्थल पर विनयस्त भावों का संकेत बनते गये हैं। ''दो घर'', कहानी में नंगे पेड़, मटियाली छाया, थकी-थकी सी चांदनी, मोतियों सी चमचमाती वर्षा की बूंदें आदि

ऐसे ही सांकेतिक आयाम हैं जिनमें बहुत कुछ पढ़ा जा सकता है।

उदाहरण दृष्टव्य है-------''अभी नहीं..........मैंने कहा,''

''एक दिन घर आऊंगा।''

उन्होंने आंखें ऊपर उठायीं।

धूप की रोशनी दो डबडबाते धब्बों में बंटकर उनकी आंखों से बाहर झांकने लगी।

न कातरता, न अवसाद।

सिर्फ दो उदभ्रांत सी निगाहें मुझ पर गड़ी थीं।''[1]

कथाकार ने एक लावारिस दृष्टि का गहराई से अहसास किया। संदेहात्मक प्रश्नों की बौछार भी है, मन की भीतरी तह का अन्वेषण भी, खुद के अस्तित्व का अहम बोध है। वैचारिक गूंजों का द्वन्द्व, जागती घुटन का अवसाद है, प्रकृति के खुले परिवेश का बोध है, हृदय की कलख का अभिज्ञानहै, अकेलेपन के खटकते सम्बन्ध का भान है, ढलते जीवन का मार्मिक प्रकाश है। इन प्रयोगधर्मी अर्थों में जितने भी नये सन्दर्भ हुये हैं, उनके मूल में यही एक सांकेतिक भाव है कि व्यक्ति दृष्टि बोध से कितने सोचों को एक साथ बटोरने लगता है।

1- बीच बहस में, पृष्ठ 56

इस प्रकार 'सितम्बर की एक शाम' कहानी में सांकेतिक प्रभावान्वित को देखा जा सकता है।

''बारिश में भीगता हुआ वह सड़क पार करने लगा।

बहुत से आदमियों की भीड़ में वह एक था उसका चेहरा दूसरे आदमियों के चेहरों से अलग था। फिर भी उनसे मिलता-जुलता था, वेश-भूषा, चाल-ढाल, आंखों का खोलना-झपकना, सांस लेना, फिर सहसा अनायास ढंग से सांस हवा में फैला देना- वह सब वही कर रहा था, जैसा साधरणतया सब लोग करते हैं। उसके व्यक्तिगत में कही भी कोई विशिष्टता, कोई चमत्कार नहीं था।''[1]

यहां पर कहानीकार अथाह दृष्टि से घिरते, टिमटिमाते अभूतपूर्व अनुभव का जायजा लिया है। व्यक्ति मकानों, दुकानों और आदमियों के मध्य किस तरह सरकता चलता है, इसमें बताया गया है।

कितने आदमी एक जैसे एक दूसरे से मिलते-जुलते उस शाम सड़क चल रहे हैं, चित्रित किया गया है।

चलते हुये व्यक्ति को सहसा अहसास होता है कि उसके चेहरे को देखकर बड़ी तीखी व्यंग्यात्मक मुद्रायें एक दूसरे को काटती हुयी झांक रही हैं। परिवेश के सापेक्ष व्यक्तित्व की विशिष्टता का इन पंक्तियों में आभास है। बारिश की ऋतु में बादलों का झुरमुट और उनके तहत टिमटिमाता धरती का प्रकाश एक अजीब स्थिति प्रकट करता है। कहानीकार ने ऐसी ही 'सितम्बर की शाम' का यहां जिक्र किया है। परिवेश चुप्पी साधे जैसे हर आहट को महसूसता जाता हो और चलता हुआ व्यक्ति ऐसी स्थिति में ना तो अपने की ही पहचान बना पाता है और ना दूसरों की। उसमें किसी को भी अपनी तरफ खींचने या आकर्षित करने की क्षमता नहीं रह जाती। वह ऐसे परिवेश में सहमा-सहमा अपनी ही छाया को दूसरी मानने लगता है। कहानीकार ने 'पिछली गर्मियों में' संकलित 'खोज' कहानी में मनोवैज्ञानिक प्राभावान्विति को दर्शाया है।''

''आह! बिन्नो! चीजें!...............तुम्हें चीजों से भी डर लगता है।''

''डर?'' छोटी बहिन ठहाका मारकर हंसने लगी!''

अब नहीं ....अब कैसा डर? पहले था।

पहले बहुत था...........जब वह यहां थे............वह पीते रहते थे और हम में से कोई भी इस कमरे में नहीं आ सकता था।''

''आखिरी रात भी।'' बड़ी बहिन अब भी उसके चेहरे को देख रही थी।''[2]

इस कहानी में दोनों सगी बहनों के मध्य जिस प्रभावी संवाद योजना को कहानीकार ने अनुभूत सत्य सिद्ध किया है। वह काफी अजीब है। वे बात करते-करते सहसा हंसने लगती हैं। विस्मित होने लगती हैं।

जब कभी अतीत के झरोखे से घूच की परतें उभरने लगती हैं तो अनजाने ही उनके मन में छिपी भावना टिमटिमाने लगती है, हालांकि वे पूरे हंस नहीं रहती थी, बल्कि अपलक दृष्टि से किसी बीते क्या को खोज रही हैं।

एक बहुत पुरानी याद उनकी आंखों के कोरों में सरक आयी थी जिसके कारण एक अजीब

1- परिन्दे, पृष्ठ 112-113

2- पिछली गर्मियों में, पृष्ठ 47

सी मुस्कान उनके होठों में सिमट आयी थी जिसके अपने सन्दर्भ थे, अपने अर्थ थे, अपनी भूमि थी और अपने ही पैमाने थे।

इन तमाम कथ्यात्मक सूत्रों को क्या कार ने बहुत ख़ामोशी के साथ जगह-जगह से कुतरकर किसी एक छोर से लटकाया है। जिससे एक निस्पन्द फड़फड़ाहट सी शेष रह गयी है। और बहुत दूर का जन्मा जीवा रेंगता नजर आ रहा था। इतना ही नहीं उपर्युक्त पंक्तियों में परिवेश का सांकतिक स्वरुप चारों कोनों में मटका हुआ दृष्टिगत होता है।

'छोटी बहन' बड़ी बहन को बहुत ही कौतूहल पूर्ण दृष्टि से देखती है जैसे वह एक-एक लम्बे अरसे से इस प्रश्न की प्रतीक्षा कर रही हो।

छोटी बहन की आंखों में पागलों की सी चमक उमड़ आयी थी। और वह सोचती थी कि बड़ी बहन इस घर से अधिक डरती थी।

विवाह उसके लिये छुटकारा था अथवा बंधन। आख़िरकार यह सब बड़ी बहिन के भीतर छिपे स्वर में गूंज ही जाता था।

कहानीकार अन्तर में प्रकाशित उन आयामों को अपनी लेखनी के हल्के स्पर्श से जांचना चाहता है जिनमें छोटे बड़े सारे क्षण एक दूसरे से सटे हुये हैं।

कमरे की स्तंव्यता भावनाओं क्री स्तव्यता के समरूप है। अंधेरे की आबाध नीरवता मन में जुड़ी सलवटों को और अधिक गहराती जाती है।

वे दोनों बहिनें चाहे जितनी दूर भिन्न-भिन्न अनुभवों में घिरी रही हो, लेकिन आज मन के अनिश्चित स्वर ने उन्हें नई गूंज, नया प्रकाश और नया जीवन प्रदान कर ही दिया जाता था।

बर्फ का सफेद भंह, शराबी के पैरों सा लड़खड़ाता, सांस का प्रकम्पित स्वर, कोमल पंखुडियों सी हथेलियां, संगमरमर सी सफेद चिकनी बाहें, अखरोटी बाल, जबड़े को सूखे रबर की तरह खींच कर फैलाना, सिनेमा के पर्दे पर ठहरे बलाज अप से चेहरे, बांस की सी लकड़ियों की टांगे, तितली के होंठ, चिड़ियाघर के मूक निरीह जन्तुओं की भांति कुछ भी पाने के लालच में यन्त्रचलित गति से सीखचों के पास घिसटते आते, बेकार, सोती जागती, गुड़ियों की आंखें, बर्फ सा सफेद चेहरा, हड़बड़ाते हाय, एक अतृप्त भूखी सी जिज्ञासा आदि संकेत ऐसी प्रभावान्वित के प्रतिरुर है जिनमें सौन्दर्य उपमा विशेषण है सब कुछ बिमबाइत होता चलता है।

निर्मल ने मानक भूमि पर खड़े होकर विचारों की बैठी हुयी तन्द्रा को झकझोरा है। यह झंकृति केवल स्त्री पुरुष के मांसल स्वरूप में ही संग्रन्यित नहीं हुयी बल्कि प्रकृति के अच्छे बुरे, छोटे बड़े, नीचे ऊपर, हिलते डुलते, सूखे गीले, टेढ़े मेढ़े आदि अनेक आयामों में अभिव्यक्त हुयी है जैसे पिघलती चांदी सी धूप मैले आयामों में बुझते दिये रेशमी रुमालों से बादल, चमकीले लट्टुओं से परिन्दे तीतरी धूप, झिलमिलाते सुर्खी रेत के कण, फटी थिगली सी पानी का एक हिस्सा आदि प्रयोग इस तथ्य के परिचायक हैं कि प्रकृति के भिन्न रूपों में संयुक्त चित्रण बहुत ही मार्मिक और जिज्ञासापरक होता है।

एक सहज स्वाभाविक अनूठा उदाहरण प्रकृति, (मानवीय प्रकृति और बसुधा प्रकृति) सापेक्ष यहां दृष्टव्य है- ''मुझे दोबारा रास्ता टटोलना पड़ा।

मैं इन सड़कों पर दोबारा चलने लगा, जिन पर कल चला था, जो अब परिचित थी, किन्तु

चांदनी अजीब सी अनजानी दिखायी दे रही थी''[1]

'लन्दन की एक रात' कहानी में व्यक्ति के दोहरे प्रकृति मूलक मन की अन्वेषण इन पंक्तियों में प्रस्तुत ....व्यक्ति द्वारा अनिश्चित भाव से उसी पथ पर चलने लगता है जिस पर कभी चलता था।

वह जितना पहले कभी उस पथ पर चलने से पूर्व सोच चुका था, उतना अब नहीं।

वही भावहीन चेहरा अजीब से भयावह चित्र प्रस्तुत करने लगता है।

कहानीकार कहना चाहता है कि शायद ऐसे पथिक का अपने पथ के प्रति एक अजीब सा भय उतर आता है वह एक अज्ञात नियति के प्रति इतना अधिक खामोश हो जाता है कि जिसका निर्णय वह आने वाले गुजरने वाले दोनों ही क्षणों में नहीं कर पाता।

उसकी मनःस्थिति उस समय चिड़ियाघर के उन मूक निरीह जन्तुओं की भांति होती है जो कुछ भी पाने के लालच से यत्र तत्र चलित गति से सीखचों के पास घिसटते जाते हैं।

कहानीकार ने इसी उदाहरण में चांदनी की बदलती प्रतिछाया को अनुशीलित किया है।

वह समझ नहीं पाता कि आज और बीते कल की चांदनी में बहुत कुछ अन्तर क्यों आ गया है।

फीकी चांदनी में चमकती हुयी धड़-धड़ाती मशीनों की आवाज और मन्द-मन्द गति से चलते हुये पैरों की आहट कुछ ऐसी अजीबो गरीब बन जाती है जिसे किसी एक सूत्र में पिरोकर हम नहीं देख सकते।

निर्मल वर्मा ऐसे यथार्थवादी कथाकार हैं जिन्होंने कपयानप रूप चिन्तन को अर्थबोध के सहमात्री के रूप में विविध संकेत ग्रह प्रदान किये हैं।

वस्तुओं का मानवीयकरण भाषिक सौन्दर्य को बढ़ाता चलता है उन्होंने जिन शब्दों का प्रयोग किया है सब में अपना छितराया हुआ संकेत बोध है चाहे वह परिवेश मूलक हो या भाव मूलक देखिये ....अगले दिन खुलकर धूप खिली थी। मैं अधिक देर तक लाइब्रेरी में नहीं बैठ सका। दोपहर होते ही मैं बाहर निकल पड़ा और घूमता हुआ उस रेस्तरां में चला आया, जहां खाना खाने जाया करता था।

वह एक रास्ता यहूदी रेस्तरां था।

वह सिर्फ डेढ़ शिलिंग में कोशर गोश्त, दो रोटियां और बियर का एक छोटा गिलास मिल जाता था।''[2]

इस उदाहरण में खिलती धूप और चमकता यहूदी रेस्तरां मन सापेक्ष दृष्टिबोध को लेकर जिज्ञासु मन पर छाया हुआ है।

रेस्तरां की यहूदी मालकिन ग्राहकों को घूरती रहती है और उसे घूरने की दृष्टि में एक तना हुआ अदृश्य फंदा है जिसमें धूप है, आकाश की नीली मखमली डिबिया है, गरीबी और ठंड से जकड़े मन की स्थिति है। मन मस्तिष्क को खोलकर जब वह खिड़की से बाहर झांककर देखती है उसे सीधा कोहरा और धुंधन दिखायी देकर दोपहरी के बढ़ते चरणों में ग्राहक ही दिखायी देते हैं।

शायद दृष्टि के उतार-चढ़ाव में भावनाओं की सार्थक बहस अन्तःर्निहित हो गयी हो।

1- मेरी प्रिय कहानियां, पृष्ठ 117

2- कौवे और काला पानी, पृष्ठ 20

कहानीकार इस तरह के परिवेश में संकेतात्मक बिन्दु फ़ैलाता चला जाता है।

देखें......... जैसे यह दिन रेल के डिब्बे में बन्द, धूप में उनींदी उसकी आँखें जिन्हें वह अपने होठों में मूंद लेती, अगर आस-पास उतने लोग न होते। क्या वे जानते हैं कि जो आदमी उनके कन्धे पर सिर रखकर ऊंघ रहा है, कल रात उसकी देह पर था, समुद्र की उफनती देह पर एक अवश ढेले-सा उठता, मरता हुआ.........।''[1]

निष्कर्षतः कथाकार वर्मा ने उपन्यासों और कहानियों में शब्दों के विविध प्रयोगों के माध्यम से सांकेतिक प्रभान्वित को नये अर्थ, सन्दर्भ प्रदान कियेहैं।

प्रकृति परिवेश के सूक्ष्म विवेचन को कहानीकार जहां एक ओर विशिष्ट दृष्टि में बांधने का प्रयास करता है वहां दूसरी ओर मानवीय अन्तः प्रवृत्तियों को समाकलित करता हुआ आज के आधुनिक परिवेश में समायोजित करता चलता है यही सब लेखन बद्धता का अति विशिष्ट प्रयोग आधुनिकता सापेक्ष मूल में जुड़ा हुआ है।

(ग) शिल्प और प्रतीक विधानः-

कथाकार अभिनव प्रभाव सृष्टि के लिये अभिनव शिल्प का समर्थक होता है निर्मल ने पात्रगत उद्भूत भावों की संसलिस्टी प्रतिकार्थ प्रायोजनों में इस प्रकार गूंथी है कि वह अर्थ को प्राछन्द होने के बावजूद मूलभाव संवेद से जोड़ता चलता है वस्तुतः रचनाकार का लक्ष्य भावनाओं की उदीप्त शिखा की ओर रहता है जिसमें व्यक्ति परिवेश, समाज, संस्कृति और सभी कुछ एक के बाद एक सभी जुड़ते चले जाते हैं।

कहना होगा कि शिल्प, प्रतीक प्रयोग से और अधिक सटीक तथा कलात्मक निर्वाह में और आर्थिक प्रमाणित सिद्ध तब हो जाता है जब कथानक रूपबन्ध शब्द का पर्याय बन जाता है।

नये शिल्प में कथाकार की वस्तु दृष्टि का लगातार योग रहता है।

शिल्प बोध, इस प्रकार लेखकीय अनुभूति की समार्थ्य से जन्म लेकर पुष्ट होता है।

विशिष्ट शिल्प प्रतीकवादी अवधारणा का एक अनिबार्य हिस्सा है,

इसीलिये कहा जाता है कि प्रतीकात्मक शिल्पबोध की अनिवार्यता रचना कर्म की अग्रभूत शर्त है। जितेन्द्र भाटिया ने सम्भवतः इसी धारणा से अभिप्रेरित होकर लिखा था.........''कथाकार अक्सर विशिष भाषा और शिल्प के कारण ही कहानियों की भीड़ में आइडेनटिटी बनाने में सफल होता है कथाकार के लिये कुशल शिल्पी होना आवश्यक है पर शिल्प अपने आप में स्वतन्त्र आर्ट फार्म नहीं है।

रचनाकार के सामने शिल्प के मुकाबले में संवेदनायें प्रमुख होती है। कहानी के क्षेत्र में पिछले वर्षों में शिल्प की आड़ में। कथ्य हीनता को छिपाने की जितनी कोशिश की गयी वे अन्ततः असफल ही रही, क्योंकि शिल्प और भाषागत चालाकियां कथ्य को प्रभावशाली बनाने में सहायक तो हो सकती है, उसका सब्सीट्यूट नहीं बन सकती।

वास्तव में किसी भी जैनुअल लेखक के सामने भाषा और शिल्प को लेकर कोई समस्या नहीं होती''[2]

निर्मल वर्मा का शिल्प इस दृष्टि से कथ्य का आवरण नहीं है। उसमें घटना या स्थूल परिस्थिति

1- बीच बहस में, पृष्ठ 38

2- सारिका, सितम्बर 71

का अत्यन्त अभूर्त प्रतीकात्मक संकेत है।

'वे दिन' उपन्यास में इन बुदबुदाये प्रश्नों को गहराई से विश्लेषित कर सकते हैं।

देखें .... "एक चमकीली सी मुस्कान उसके चेहरे पर फैल गयी थी और तब अचानक मुझे उसकी आंखों में वही पहचान दिखायी थी, जिसे कुछ क्षण पहले मैने खो दिया था..............उसी तरह नहीं जिसे पहली बार देखा था बल्कि एक निशान की तरह जिसे सतह पर छोड़ जाते हैं और कुछ दूर पर जाकर दुबारा देखते हैं............... ।"[1]

चमकीली सी मुस्कान, पहचान निशाद, आदि शब्द एक असीम उल्लास को लेकर प्रमाता के हृदय को मथने लगते हैं। जिसे वह तन्मय होकर बड़ी ही तमन्ना से इन शब्दों की छांव को छूने लगता है।

लगता है पात्र की शरारत भरी हंसी उसकी आंखों से बाहर झांक रही है।

"रायना" पात्र समूचे परिवेश में अपने को इस उल्लासित भाव से आपूरिर्त पात है कि उसमें सहसा ठिठकन और सूनी सनसनाहट एक ही साथ एक ही हृदय में उतर आती है।

"निशान" शब्द अपने आप में इतना गहरा है जिसमें भावों के मिटने के पीलेपन से जुड़े हुये गहरे रंग मिटने के बावजूद भी रेंगते रहते हैं।

कथाकार उस शाम की बुझती रोशनी में उसके उज्वल चेहरे को मधुर मुस्कान के साथ देखता है, यद्यपि आंखों में बहुत दूरी है, फिर भी 'पहचान' शब्द ने साझेदारी कर ली है।

पहली बार ही दृष्टा पात्र को महसूसने लगता है कि उसके चेहरे पर एक हौसला आ गया है।

सुबह से लेकर शाम तक का बंधा-बंधा सा सूनापन चमकीली मुस्कान को देखकर मर गया है।

भावनाओं की यह जिन्दादिली धूमिल छायाओं को भी ठिठकाती हुयी पाती है।

परिणामस्वरूप छोटे-मोटे बिगड़ते चिह्न दूसरे पात्र को विश्वास में जकड़ते चलते हैं।

और ऐसा लगता है कि वह पात्र दोबारा उस जगह पर खींच लाया गया हो जहां से वह कभी भूलकर चला जाता था। उसके भीतर में एक विचित्र आकांक्षा उपजती है और एक निश्चय बन जाता है कि जहां पहचान की गन्ध ठहरी हुयी है उसी में अन्तर्निहित उसकी आंकाक्षा भी व्यग्र थी।

कथाकार ने प्रतीकात्मक शैली से जितना कुछ वैचारिक स्तर को नये पहलू प्रदान किये हैं। वे सब शीशे में खुले चेहरे को प्रस्फुटित करते चलते हैं।

"लाल टीन की छत" उपन्यास का परिवेशात्मक प्रतीक दृष्टवय ...."उजाला मिट गया था। सिर्फ एक सुर्ख रेखा पहाड़ों पर खिंच आयी थी, आकाश के एक सिरे से दूसरे सिरे तक।

कमरों में बत्तियां अभी तक नहीं जली थीं।

जहां वह बैठी थी, वहां डूबते सूरज का पीला आलोक सामने दीवार गिर रहा था, बाकी कमरा अंधेरे में डूबा था।"[2]

यहां पर बाहर फैले जंगल की सांय-सांय में बीहड़ मकान और रोते हुये गीदड़ तो हैं ही, साथ ही अंधेरे और प्रकाश में बुझे हुये शब्द स्मृति से जुड़े हुये हैं। भीतर ही भीतर व्यक्ति के मन का प्रकाश इतना कुछ द्रवीभूत होकर चलता है कि रोशनी के सहतीर बाहर के परिवेश को भी डूबते

1- वे दिन, पृष्ठ 96

2- लाल टीन की छत, पृष्ठ 103

उतारते नजर आता है। कमरे की रोशनी भले ही पात्र के आधे चेहरे पर पड़ी हो लेकिन बाहर की उगते सूरज की रोशनी घनी पलकों की छाया के नीचे कुछ सुखद सोचने के लिये मजबूर करती है। इन पंक्तियों में उजाला आकाश, बत्तियां, डूबता सूरज, अंधेरा कमरा आदि ऐसे शब्द हैं जिनमें प्रतिकार्य भाव प्रच्छन्नता परत दर परत जुड़ी हुयी है। पात्र मनः स्थिति में आकाश उस सुकोमल हृदय का परिचायक है जिसमें बाहरी उदास आंखें भी अपना कुछ खोजती हैं। बत्तियां इस तथ्य की प्रतीक हैं कि अभी जागरूकता की छुअन नहीं है। 'काया' पात्र सोचती अवश्य रहती है परन्तु बुआ और चाचा के बीच कसमसाती ऐसी रेखा बनी रहती है जिसमें उसके हृदय का तड़पता रोदन ही एक सिरे से दूसरे सिरे तक रेंगता दृष्टिगत होता है। दरअसल 'काया' सीधी आंखों के पीले आलोक को दीवारों पर रेखा बनाते हुये देखकर समझ जाती है कि उसके मन में निराशा ने बहुत पुरानी सूखी झुर्रियों को एक बारगी ही नहला दिया हो। सम्भवतः लेखक ने इन प्रतीकात्मक शब्दों से उन आंसुओं को जोड़ने की चेष्टा की है जिन पर कभी वह खुशी से कभी हंसे भी थे। उनकी आंखों में छलछलाते भाव कभी किसी निष्ठुर पत्थर पर गिरे भी थे।

इन प्रतीकों से बिंधे हुये शब्दों में पात्रों की पुरानी पहचान फड़फड़ा रहे हैं।

कथाकार ऐसे ही परिवेश के अनुरूप मन की सरसराहट को घोर निराशा को सन्नाटे में 'बिट्टी' पात्र के परिवेश का अध्ययन करता है। जैसे...............

"बिट्टी का बिस्तर खाली पड़ा था।

वह लेट गया।

वह रिकार्ड अब भी डिस्क में लग था, जिसे कुछ देर पहले इरा सुन रही थी। क्या नाम बताया था, उसने ....हाइडन या हैण्डल? पता नहीं कितनी देर बार डेरी की मोटर साइकिल की घुरघुराहट सुनायी दी।

वह जा रहे थे, चांद सरकता हुआ मकबरे के गुम्बद पर आ अटक था।

सारी छत सूनी पड़ी थी, सिर्फ बिट्टी मुंडेर के पास खड़ी नीचे झांक रही थी।"[1]

खाली, घुरघुराहट, सरकता, सूनी, खड़ी आदि शब्दों की प्रयोगपरक प्रक्रिया में बहुत कुछ बिट्टी के मन की खरोंच है।

लगता है बिट्टी बिना कुछ कहे नित्ती भाई से एक अजीब तत्कालिकता को दिखाती जा ही है। मुंडेर के साथ सटी हुयी भीने हृदय से जुड़ी अजीब सी हलचल उसके खाली मन मस्तिष्क में एक साथ रेंगने लगती है। दरअसल वह चुपचाप उस खाली जगह को देखती रहती है, जहां कुछ देर पहले वह खड़ी थी और उसके मन में एक अजीब सा डर बैठने लगता है जो उन दोनों के बीच बीत चुका है

उसे एहसास होता है कि वह कहीं बीच में है,

न इधर न उधर।

...............जहां नित्ती भाई खड़े हैं न वे कुछ अपने लिये कुछ कर सकते हैं और न कुछ उनके लिये कर सकती हैं, सिर्फ एक चमकीली सी घुरघुराहट सुनायी देती है जिससे उनके भीतर स्मृतियों की धूल उड़ने लगती है, वह न साफ है न धुंधली, सिर्फ एक जिद्दी से गर्द जो मन के भीतर एक तम्बू सा तान लेती है।

1- एक चिथड़ा सुख, पृष्ठ 44

"इरा" पात्र के मन पर बने गुम्बद का यह सब परिवेश साक्ष्य है बिट्टी और इरा के मध्य एक ठिठका हुआ क्षण है। जिस पर उसकी हंसी है न पीड़ा, केवल बीत हुआ समय है जो नाखूनों की खरोंच से इन प्रयुक्त शब्दों के प्रश्रय में खरोंचे जा रहे हैं।

इस प्रकार के पात्रों की दृष्टि बोधमयता हृदय के मध्य बने तम्बू के बाहर झांकती नजर आती है, जो उन्हें अकेले में समग्रतः लीलती जा रही है।

उपन्यासकार ने पात्रगत तिलमिलाती दुनिया को प्रतीकात्मक शैली से बने नये आयाम दिये हैं।

इरा और बिट्टी का बुदबुदाता मन एक चमकीले कीड़े की तरह भीतर रेंगता रहता है।

जिसे न तो वह मार सकती है, और न ठहरने का आदेश ही दे सकती है।

फिर भी भीतर का ठंडा अंधेरा उन्हें तसल्ली देता चलता है इसकी देह से बाहर झांकती हुयी आशायें एक के बाद एक जिन्दगी जीती चली जा रही हैं, सिर्फ परिवेश के साथ आंखें बदलती जाती हैं।

जिस आवाज को बहुत पहले भीतर ही भीतर सुना था उसी की गूंज अब तक चली आ रही है।

जैसे बरसों पहले फड़फड़ाते चीथड़ों के बीच किसी जिन्दा दिलों को महसूसा गया है

यद्यपि इन पात्रों के मन में अनिश्चितता है फिर भी रोशनी अंधेरे के फासले को दूर करने के लिये उनके मन में एक चमकीला सा आतंक है। एक मैला सैलाब है जिसमें वह पहली बार सबग्रता के साथ अपना कुंवारापन डुबो देते हैं कथाकार ने इन प्रतीक परक शब्दों से भागते हुये क्षण को ठहराया है और सिद्ध किया है कि आदमी भी वही है जो पहले कभी बच्चे की तरह बौना और ठिगना था।

बेधड़क आवाज सन्नाटे को भेदती हुयी व्यक्ति की भीतरी दुनिया में बत्तियां जला देती है जिससे भीतर के अंधेरे को अपने पीले आलोक में टोह मिल जाती है, और वह समझ जिसे कभी फिलसले हुये सोचा गया था, पकड़ में आ जाती है।

दरअसल इस उपन्यास का कांपता हुआ चिथड़ा सुख इन्हीं पात्रों की मनःस्थिति के अनुरूप उपन्यासकार ने गहरी दिलचस्पी के साथ अन्वेशित किया है। धुंधले क्षणों में पुरानी स्मृतियां अजीब सुख का आभास देती हैं। यद्यपि उनमें अजीब सा कौतूहल ही बाहर झांकता नजर आता है, पर हृदय के अन्दरुनी हिस्से में एक छोटा सा अपना अधिकार कर कोई बैठ जाता है

निर्मल की कहानियों में प्रतीकों का प्रयोग प्रचुर मात्रा में हुआ है।

बल्कि उनके कथानक आज के जीवन में संश्लिष्ट रूप को जितना ओढ़ कर चलते हैं, उतने ही संकेत सूत्र प्रतीकों के माध्यम से कुछ नया कहते गये हैं।

वस्तुतः प्रतीक कहानी की व्यंजना शक्ति का संवर्धन करके उसके अर्थ गौरव को सम्पुष्ट करते हैं।

डा. इन्द्रनाथ मदान ने कहानियों के प्रतीकों के प्रयोग के सन्दर्भ में यही लिखा है .... "इंगित या संकेत आंतरिक सम्बन्धों को उभारने तथा रचना के ख्वाब में कलात्मक संयम लाने

के लिये आज की कहानी का अभिन्न अंग बन गया है।

कहानी में बिम्ब और प्रतीक खूब रम जाते हैं तो कहानी की संश्लिष्टता का बंग बन जाते हैं।''[1]

इसी बात को डा. शंताशु ने इस प्रकार कहा कि.........''नयी कहानी'' में प्रतीक का प्रयोग अपने प्रस्तुत अर्थ में विशिष्ट और अद्वितीय होते हुये भी कहानी का समाज परक, युग परक जैसी अनन्य विशिष्टता से भी संचालित करने वाला है।

यहां प्रतीक, कथ्य के अन्तर्गत खुलते हैं और अपने प्रासंगिक विवरण से हवन्यर्थ के सहारे पूरे युग और परिवेश का संस्पर्श करते हैं।''[2]

निर्मल ने अपनी कहानियों में अभूर्त संवेदना को जिस वातावरण में मुखरित किया है वह सब अनायास ही प्रतीक की दृष्टि को अवधारित किये हुये है।

कहानीकार ने ''अंधेरे'' में कहानी के अन्तर्गत प्रतीक प्रयोग पर बहुत कुछ कह दिया है.......... ''मैने संगमरमर सी सफेद दो बांहें परदे के बाहर हवा में फैली हैं।

पीछे एक छाया है, भूखी फटी-फटी सी दो आंखें हैं.............परदे नोंचती हुयी लम्बी-पतली कांपती अंगुलियां हैं और बिजली में चमचमाती नाक की लोंग जो बार-बार फड़फड़ाते होंठों के ऊपर तारे सी टिकी है, ...यह सब कुछ मैंने एक छोटे से क्षण में देखा था..........''दूसरे क्षण मुझे लगा मानो परदा अपनी जगह वापस खींच लिया गया है, सिर्फ एक भर्रायी सी आवाज सुनायी दे जाती है, जो ऊपर उठे से पहले ही दबा दी जाती है मानो किसी ने अपने हाथ से उसे भींच रखा हो।''[3]

इस प्रस्तुत उदाहरण में संगमरमर सी सफेद बांहें फटी-फटी सी आंखें लम्बी पतली कांपती अंगुलियां, बिजली में चमचमाती नाक, फड़फड़ाते होंठ आदि सब ऐसे प्रतीक प्रयोग हैं जिनमें स्थूल सौन्दर्य तो है ही, साथ ही साथ मन का विचित्र भाव चमकीले कांच की तरह जहां तहां चमक दमक जाता है।

कहानीकार कहना चाहता है। कि अजीब सी छूटी सहलाती पहचान शब्दों की आहट में अद्भुत दृश्य उपस्थित करती चलती है, चमकना, कांपना, फड़फड़ाना आदि क्रियायें व्यक्ति के मन की खामोशी को आवाज प्रदान करती हैं। टूटे हुये शीशे के भीतर चेहरे को जैसे बीचों बीच द्रिगुमित आभा और बिम्ब मिलने लगता है, वैसे ही अंधेरे में भी उसके सफेद संगमरमर से हाथ हमेशा के लिये खुली हवा में कुछ पाने के लिये उठे हुये हैं। लेखक ने इन्हीं शब्दों में एक कातर और सहमी हुयी ध्वनि भी नजर आती है जिसमें वह संगमरमर सी सफेद दो बांहें किसी को बार-बार अपनी ओर खींचकर अपने खुलेपन का इजहार करती हैं।

प्रकाश की पतली सी रेखा होंठों और नाक पर जैसे ही पड़ती है वैसे सब कुछ अजीब सी खुशी में नाचता हुआ दृष्टिगत होता है।

पात्र ऐसी मनोभूमि पर दूसरों की आंखों को गढ़ाता हुआ पाता है और उसके पीछे एक ऐसा रहस्य छोड़ जाता है कि सभी कुछ बाहर भीतर एक जैसा होकर हवा की गन्ध में चारों ओर फैल जाता है। वस्तुतः 'बानो' पात्र एक सफेद छाया है जो अंधेरे में भी चमक रखती है, उसके

1- कहानी और कहानी, पृष्ठ 34
2- नयी कहानी के विविध प्रयोग, पृष्ठ 143
3- परिन्दे, पृष्ठ 80-81

संगमरमर से सफेद हाथ खुली हवा में किसी को आमन्त्रित करते हैं और पाठक को लगता है जैसे वह अपने आप से अलग हों ग़दराये हुये फल की तरह हल्का सा उसमें स्पन्दन भी हो।

यह सब प्रतीकात्मक ढंग से आस पास की, नीरवता को लेकर कहानीकार ने बहुत कुछ मुखरित कर दिया है।

यही नहीं 'जलती झाड़ी' कहानी संकलन में प्रस्तुत कहानी 'माया दर्पण' का इन्जीनियर बाबू पात्र जब सीढ़ियां उतरता है। तो सारा घर हिल जाता है। यहां घर हिलना तरन के व्यक्तित्व के हिलने का प्रतीक है। रेतीली जमीन तरन के आस-पास का वातावरण है।

अस्त होता हुआ सूरज स्वयं तरन है।

कच्चे सोने की सी रेत भी तरन है।

"रोड़ी, पत्थर, तरन का अहं है तथा पानी का टैंक उसके सरस का भण्डार है।

देखे दूर-दर तक रेतीले जमीन फैली थी। अस्त होने से पहले सूरज की पीली किरणें कच्चे सोने की सी रेत पर बिखर गयी थीं।"[1]

तरन की रूखी सी रिक्तता इस प्रकार का परिवेश बुनती है। बरसों पहले की एक धुंधली सी अनुभूति कहीं भीतर धीमे से उसके मन में उमड़ आती है- "लगता है, जैसे वह टब के पानी में अपनी नंगी देह पसारे लेटी है।"[2]

धुंधली सी अनुभूति का कहानीकार ने जितना सटीक प्रयोग किया है वह एक साहित्य में अनूठा उदाहरण ही है।

तरन पात्र का मनोवैज्ञानिक सत्य जितना कुछ कहानीकार उद्भाषित कर सका है, वह सब विशेष तो है ही, साथ ही आज की कुंवारी लड़की का प्रतिनिधि भी है।

तरन के बारे में कहानीकार समग्रतः यह कहता चलता है कि वह एक हल्की सी गुदुगुदी समेटे हुये है, ब्याह के लिये नहीं, गहनों के लिये नहीं, बल्कि उस अजीब अनजानी खुशी के लिये जो उसकी अपनी थी।

"कुत्ते की मौत" कहानी में सभी प्राणी मर रहे हैं। मां के पराये, शहर, पराये घर ने, नन्हे नितिन को बेकारी ने पिता को पुराने रोग ने विशेष प्रकार की मौत प्रदान की है।

कहानी का आरम्भ वातावरण ही इसका साक्ष्य है कि परिवेश का प्रतीकात्मक पहलू कितना कुछ अजनबीपन समेटे हुये है............"फिर यह भी एक रात है घर के हर प्राणी के कान ऊपर लगे हैं।

एक टूटती, मरमराती सी चीख सुनायी देती है। घर का सन्नाटा सिहर जाता है केवल पल भर के लिये फिर सब पहले सा शान्त हो जाता है।"[3]

इस कहानी का कथ्य सूक्ष्म प्रतीक पद्धति का बहुत सुन्दर और सटीक प्रयोग लिये हुये है। आरम्भिक वातावरण, भरभराती चीख का ऐसा कुछ पर्याय है जिसमें मृत्यु बोध हर जीवन के पहलू से जुड़ा हुआ है, बल्कि यों कहें कि जिन्दगी और मृत्यु के फासले की बात ही यहां लेखक ने खत्म कर दी है।

एक क्षण का ही फासला उनके बीच में सदैव टकराता रहता है।

"पहाड़ी" कहानी में बच्चा पहाड़ का प्रतीक बन गया है "जलती झाड़ी" यौन का प्रतीक है।

1- जलती झाड़ी, पृष्ठ 35 2- वही, पृष्ठ 30 3- वही, पृष्ठ 50

"उनके कमरे" कहानी में हवा में डोलते एरियल पोल पर फंसी हुयी अंधेरे में फड़फड़ाती पतंग खिड़की से झांक रही है उस गृहस्थ.स्त्री का प्रतीक लिये है जो गृहस्थी के एरियल पोल पर पतंग सी फड़फड़ा रही है। 'अमालिया' में एक बरिया, युवतीं के प्रेम का प्रतीक है और शहर के बीच छितरे टापू भिन्न युवकों के प्रतीक हैं। 'पिछली गर्मियों' में कहानी का निन्दी चमगादड़ की तरह दीवार से चिपका खड़ा है और चांदनी रात में उसकी धुंधली छाया बेडौल पशु सी दीवार पर पड़ती है।[1]

यहां पर निन्दी का चमगादड़ जैसा चिपकना और बेडौल पशु की तरह दीवार पर छाना इस तथ्य की ओर संकेत करता है कि व्यक्ति रुआंसा मन लेकर हर स्थिति में अन्यमनस्का है। 'बीच बहस में' कहां का अस्पताल लहरों में जूझते जहाज का प्रतीक बन गया है।

इतना ही नहीं एक बहुत बड़े परिवेशगत प्रतीक शैली से कहानीकार ने अर्थ को नये सन्दर्भों में जूझने के लिये विवश कर दिया है।

देखिये ....उनके मुंह में लार बहती हुयी गले तक चली आई, जहां सफेद मांस की थैलियां झूल रही थीं। सफेद मांस पर नीली नसों के बीच रास्ता टटोलते हुये एक काली लकीर, जंगल की गर्मी में हांफते, फुफकारते सांप की तरह। वह एक टक जड़, मन्त्रमुग्ध सा होकर उन्हें ताकता रहता। मुंह पर बहते सांप को..........फिर एक खतरे ने उसे जकड़ लिया।"[2]

सफेद मांस, नीली नसें, काली लकीर, फुफकारता सांप कितने ही भयावह बूंदे की फड़फड़ाती शिराओं का प्रतीक बन गया है। दरअसल मृत्युबोध व्यक्ति को इसी तरह निगलने में दृष्टिगत होने लगता है। आधी बेहोशी के धुंध में घिसटते हुये जीवन का अन्तिम चरण चिलचिलाती धूप जैसे कष्ट में सुर्ख आंखें मूंदकर सो जाना चाहता है। हवा में घूमते हुये पापड़ जैसे पड़पड़ाये होंठ एक अदम्य लालसा को अभिव्यक्ति तो देते हैं लेकिन अस्पताल का खास बोझिल सन्नाटा वह सब अधिक से अधिक बेदर्दी से समेटता चलता है। निर्मल नें प्रतीतात्मक प्रयोगों से 'अंधेरे में' कहानी के वीरेन चाचा को अपनी पुस्तक 'शिमला का इतिहास' विषय में खोज करते हुये वर्तमान परिवेश के आंकड़े जुटाये हैं। इसी कहानी में रस कोस उसका यह लड़की 'पूनो' का प्रतीक है वह पूनो जो अपनी गृहस्थी को छोड़ कर प्रेमी की बन गयी थी। 'परिन्दे' के पात्र परिन्दों से भी गये बीते हैं। वे कहीं भी नहीं जा सकते। इस प्रकार परिन्दे मरणधर्मा के प्रतीक हैं और अन्त में बुझता हुआ लैम्प मरणासन्न ह्यूबर्ट का संकेत करता है।"[3]

'लवर्स' में प्रेमियों का मिलन स्थल हुमायूं का मकबरा है जो प्रेम में मृत्यु का प्रतीक है। इस कहानी में लड़की बर्फ और लड़का पतझड़ का प्रतीक है वस्तुतः वर्मा ने प्रतीक दृष्टि को कथ्य के अन्तर्गत बड़ी सजगता से खोला है और कहा भी है कि कथाकार प्रतीकों के अन्तर्गत बड़ी सजगता से खोला है और कहा भी है कथाकार प्रतीकों से बच नहीं सकता। प्रतीक तो अन्धें की लकड़ी के समान है जिसे भूमि पर टेकता हुआ अन्धा अपना रास्ता खोजता है, वैसे ही प्रतीक पद्धति के सहारे ही कहानी का कथ्य अनुभूत की गुणात्मकता का व्यंजित रूप बन जाता है। हमें तो लगता है कि जितने भी निर्मल जी के कहानी शीर्षक हैं, वे सब अधिकांशतः प्रतीकात्मक ही हैं जैसे 'पिक्चर पोस्टकार्ड', "सितम्बर की एक शाम", 'जलती झाड़ी', 'दहलीज', 'दो घर', 'डेढ़ इंच ऊपर', 'धागे', 'कौवे और काला पानी', 'सुबह की सैर', 'धूप का एक टुकड़ा' आदि।

1- पिछली गर्मियों में, पृष्ठ 123 2- बीच बहस में, पृष्ठ 123-124 3- परिन्दे, पृष्ठ 159

(घ) परिवेशगत जीवन्तता और भाषिक संरचना की अंतरंगता :-

जिस प्रकार रूमानी साहित्यकार प्रकृति की विभिन्नता, विराटता, रहस्यमता, निर्जनता, भयानकता आदि अनेक रूपों का चित्रण करता है उसी प्रकार वही साहित्यकार रागात्मक या विरागात्मक सम्बन्धों को परिवेश में खोजता है। निर्मल का कथा साहित्य रूमानियत चिन्तन को लेकर परिवेश की जीवन भावनाओं का प्रयास बना हुआ है और यह परिवेशगत जीवन्तता, घटना, संकुल जीवन की परिभाषा का एक प्रयास घर है। कहानीकार सभी तरह से वातावरण और जीवन के निकटतम पहलुओं को खोजता चला जाता है। निर्मल के यहां अकेलेपन अजनबीपन एवं परिचय के ढेरों कारण परिवेश की मूल संवेदना में छिपे हुये हैं। कमलेश्वर ने परिवेशगत जीवन्तता, पर व्यक्ति की मनोदशा का चित्रण करते हुये लिखा है........... "हम अभिशप्त हैं- अति परिचित होने के लिये। इसीलिये हमारे देश की मानसिकता भी परिचय से डूबी हुयी है और इस अति परिचय का परिणाम है। अपरिचय की मनोदशा।"[1]

वर्मा ने भीड़ के अकेलेपन को स्वीकार करते हुये परिवेश की विविध दशाओं पर गहराई से विचार किया है। डा. रमेश चन्द्र लवानिया ने निर्मल की परिवेशगत जीवन्तता पर इस प्रकार कहा है........ निर्मल प्रेम, सेक्स, विवाह की समस्या पर मूलतः विचार करते हैं और यही प्रमुख वस्तु है। जो मानव के व्यक्तित्व को तोड़ने वाली है। प्रेम से ही व्यक्ति एकांकी हो जाता है।"[2]

निर्मल की कथात्मक धारा में आज के परिवेश के अलगाव, बेगानापन, ऐलीनियेशन की एक गहरी समझ है। उनका कथा साहित्य में अकेलेपन, अजनबीपन, एवं अपरिचय की स्थिति को आज के आम आदमी की संपूर्ण विवशताओं के साथ उजागर हुआ है। यह परिवेशगत जीवन्तता भाषित, संरचनाओं में सार्थक बहस का मौका देती है। 'वे दिन' उपन्यास जीवन परिवेश का एक ज्वलन्त उदाहरण है। देखें......... "उसने दरवाजा खोला कुछ देर बाद उसका चेहरा दरवाजे की ओट से बाहर आया। पहले क्षण मुझे भ्रम हुआ कि मैने किसी गलत कमरे का दरवाजा खटखटा लिया है उसके चेहरे को मैने इतनी पास से नहीं देखा था कि वह भी गलियारे के पीछे धुंधलके में था वह भी शायद यह भ्रम उसके बालों को लेकर हुआ था।"[3]

यहां पर कथाकार माहौल को बहुत ही पारदर्शी रूप में चित्रित कर देना चाहता है। पहले चरण में तो दरवाजा और उसके भीतर बाहर का खुला हुआ परिदृश्य है जिसमें कुछ तसल्ली है। तो कुछ घबराहट। महसूसा जाता है कि दरवाजे के ऊपर एक बत्ती टिमटिमाकर चारों ओर की एक बासी गन्ध की याद दिला रही है। और लगता है कि बरसों से बाहर की ताजी हवा भीतर नहीं आयी है। फिर भी पहले ही क्षण उसके चेहरे की शाम की थकान की तरह महसूसने में मदद मिलती है। दूसरे चरण में एक अनिश्चित सा भाव खड़ा हो जाता है क्योंकि दरवाजे के भीतर निपट सन्नाटा है।

चारों तरफ क्लिप लगे हुये हैं और दरवाजा खोलने वाली पात्र धुंधलके में चेहरे को छिपाये

1- नई कहानी की भूमिका, पृष्ठ 126

2- हिन्दी कहानी में जीवन मूल्य, पृष्ठ 238

3- वे दिन, पृष्ठ 56

हुये है लगता है कि परिवेश ने दोनों के ही बीच एक झीना सा पर्दा लटका दिया है, जिसके कारण उन्हें अपने भीतर एक बेमानी सी बेचैनी महसूस होती है।

अजीब सा भी लगता है। वहां न पास होने का कौतूहल है और न दूर होने का ठंडापन।

विस्मय से भरे हुये वे पात्र एक दूसरे को मनचाहे ढंग से देखने के लिये लालायित होने लगते हैं, और निगाहें क्षण भर के लिये एक दूसरे पर टिक जाती हैं। दरअसल यहां पर निगाहों का मेल और भावनाओं की अनूभूतियों का तादाम्य परिवेशगत जीवन्तता को नया आयाम दे रहा है।

वे पूर्ववतः शान्त होकर अपनी आंखों के नीचे एक गर्म सा गुलाबीपन समेट लेते हैं।

इस रोपे हुये वातावरण में उपन्यासकार ने ने परिवेश का जीता जागता उदाहरण तो दिया ही है बल्कि साथ ही नये-नये स्थानों और नये-नये व्यक्तियों के सम्पर्क से पात्रगत मनःस्थिति का आंकलन किया है।

चेकोस्लिावाकिया की राजधानी प्राग में अजनबी स्त्री पुरुष के सम्बन्धों की यह गाथा परिवेशगत जीवंतता का हिस्सा बनी हुयी है।

निर्मल ने अपनी मोहक कल्पना शक्ति के माध्यम से इन परिपूर्णता तक परिवेश के संरचनात्मक पक्ष को सफल बनाया है।

'लाल टीन की छत' उपन्यास में पूरी तरह से एक सूने परिवेश में फंसी लड़की की कहानी है, जो अपने छोटे भाई के साथ शहर में रहती है।

सर्दी की लम्बी छुट्टी में वह इधर-उधर भटकती रहती है।

उसने अपने इर्द-गिर्द एक मायावी जाल सा बुन लिया है जिससे वह परिवेश के साथ जुड़कर अपने आप को खो चुकी है।

"कपड़े उतारने से वह सचमुच अकेली पड़ गयी थी। छज्जे पर चलती सांय-सांय हवा, कपड़ों की फड़फड़ाहट पत्तों सी नंगी, बेशर्म देह कांपने लगती। कहीं बहुत धुंधली, सुखद सा विचार आता कि मुझे सर्दी लगेगी, निमोनिया होगा,

काली मां के लिये मेरी जान जायेगी, और तब वह धीरे-धीरे अपनी नंगी देह को सहलाने लगती।"[1]

इस व्यक्तव्य में सबसे बड़ी चीज परिवेश की अभिनयशीलता है। पात्र सच्चाई के पहिये में फंसकर अपने आप की छुरी में ही घूमता चला जाता है। खुद अपने पर उसकी पकड़ छूट जाती है।

नशे की लहर समूची देह पर उठने लगती है।

उसे अभिनय की सीमा का अभिज्ञान ही नहीं हो पाता कि सर्दी भी है और सरसराता सन्नाटा भी है।

काया, मंगतू आदि पात्रों का सानिध्य अनुभव की कतरनों के साथ परिवेश को नया मोड़ देने में सहायक बनता है। काया अपनी आंखों को कसकर भींच लेती है और वह ऐसे कांपने लगती है जैसे वह सारे परिवेश में अकेली और निस्तब्ध खड़ी हो।

आधी रात तक अपने घर के छज्जे पर अकेली लेटी रहती है- नंगी और निश्चल, जहां वह खुद अपने से अलग है।

1- लाल टीन की छत, पृष्ठ 88

अचानक उसे लगता है कि ऐसे परिवेश में उसका बचपन बहुत दूर चला गया है और आने वाला समय अनेक संकेतों और संदेशों से भरा है।

परिवेश के इस आन्तरिक स्तर पर एक ओर अजीब आतंक छाया हुआ है तो दूसरी ओर असहनीय सम्मोहन।

सारे वातावरण में एक खाली-खाली सन्नाटा है।

नीचे फैला जंगल कभी अचानक ही हिलने लगता है जैसे ठहरे पानी पर किसी ने ढेला मारा हो ऐसे परिवेश में निर्मल की भाषा ऐसी प्रतिध्वनति गूंज समेटे हुये है जो परिवेश का जीता जागता चित्र उपस्थित करती है। देखें "उसकी निगाहें धूप में डबडबाते उस लाल बिन्दु पर ठहर गयीं, जो भरती हुयी धूम बढ़ते हुये अंधेरे पर जादू के टिमकने सा टिका था।"[1]

पहाड़ों के बीच बिखरी वह (काया) किसी पहेली का हल ढूंढती रहती है।

पहाड़ और काया की चितस्थिति जंगल के रास्ते की जहां एक ओर खोज करते हैं, दूसरी ओर उनका मन उन हिस्सों को छूता है जहां बहुत से आंसू बिना किसी की प्रतीक्षा किये बिना ही जमे हुये थे।

उपन्यासकार वर्मा ने परिवेश का वह स्वरूप भी स्वीकार किया है जिसमें मानव की सूक्ष्म मनोवृत्तियां घटते-उतरते जीवन को अभीष्ट मान लेते हैं।

"एक चिथड़ा सुख" उपन्यास कुछ ऐसी ही हिस्सेदार का नमूना है जिसमें अपने ही देश की परिवेशगत जीवन्तता बिट्टी पात्र के एकांकी जीवन में प्रविष्ट होकर चक्कर लगा रही है।

बिट्टी एक अजीब सी उलझन अपने चेहरे पर लिये रहती है। हर बार उसके मन के दरवाजे किसी की प्रतीक्षा में आहट पाकर खुल जाते हैं लेकिन बाहर झांकने पर बिट्टी को अपना ठिठकता जीवन ही दिखायी देता है।

बिट्टी की पुकार एक ऐसा पोस्टर साबित हो गयी है जिसमें जादुई भरी फनफनाहट तो है, लेकिन चेहरे की झुर्रियां बीती हुयी रात की दास्तां की कहानी बन चुकी हैं।

"रेत उड़ रही थी, उसके भीतर, और वह कांप रहा था।

पागल-सी इच्छा हुयी, वह बिस्तर से उठ खड़ा हो; सोने का बहाना छोड़कर उनके बीच जा खड़ा हो, बिट्टी को खींचकर डेरी से अलग धकेल दे, किन्तु वह बैठा रहा, अंधेरे और बुखार और चांदनी में, उन दोनों की सांसें और सिसकियां सुनता हुआ ....डेरी का रुंधा स्वर किसी भुतैली खोह से बाहर जा रहा था, क्या कर रही हो?"[2]

रेत का उड़ना, पागल सी इच्छा का उड़ना और अंधेरे का तैरना, सांसों का सिसकी भरना, यह सब अजीब मन की दरिद्रता को अभिव्यक्ति देने में समर्थ है।

बिट्टी सचमुच ऐसे परिवेश में ठहर गयी है। उसकी हांफती सांसों के बीच चेतना की एक लकीर कौंध जाती है।

उसके फड़फड़ाते होंठ परिवेश के रूपाकार में बदल जाते हैं। उसके उफनते हुए शब्द अर्थ को समेट लेते हैं। ऐसा लगता है कि बिट्टी इस एकांकी परिवेश में कमजोर, शिथिल, बेमानी ही नहीं बल्कि फिसलती हुयी जिंदगी के बवण्डर को तूफानी काले अनघड़ में घूर कर देख रही है।

वर्मा ने इस उपन्यास में ऐसी जमीन की तलाश की है जिसमें सन्नाटा तो है ही अंधेरे की

1- वही, पृष्ठ 98

2-एक चिथड़ा सुख, पृष्ठ 119

भी अपनी पहचान है। सोच का उदास और संवेदना की महक बिट्टी के लिए इतनी कुछ बेमानी हो जाती है कि वह बेकार की भटकन को भी भेद भरी आंखों से देखने लगती है।

उसे इसी परिवेश में वे दिन याद आते हैं जब नित्ती भाई से एक अजीब सीं पहचान जुड़ी हुयी थी, लेकिन आज वह किसी अज्ञात विपत्ति कोने से अपने आप को निहार रही है और उसे लगता है कि उसके भीतर दया, हमदर्दी जैसी चीजें खत्म हो चुकी हैं।

डा. शिवप्रसाद सिंह ने एक बहुत सुन्दर बात आज के परिवेश को रेखांकित करते हुए बतायी है कि ''आज के वातावरण में मनुष्य अपने और समाज से अलगाव को रेखांकित करता चलता है।''[1]

अजनबीपन अथवा निर्वासन की भावना आज ''एक चिथड़ा सुख'' कैसे उपन्यास की कहानी बहुत गहराई से निरूपित की गयी है।

इसी परिवेशगत भावना को पाश्चात्य विचारक ने आत्म निर्वासन कहा है।

कार्ल मार्क्स ने इस निर्वासन भावना को भौतिक आधार देते हुए राजनैतिक, आर्थिक निर्वासन कहा है। किर्क गार्द ने मनुष्यों के बीच निर्वासन को मनुष्यों के बीच निर्वासन को एकांकी पद्धति बताया है।

सार्त्र ने इसी परिवेशगत निर्वासन को मनुष्य के भीतर या बाहर की संश्लिष्टी माना है।''[2]

वस्तुतः आज के परिवेश में अकेलेपन का बोध व्यक्ति का बोझ बना हुआ है।

जहां मध्यकालीन अकेलापन आत्मिक स्तर का अकेलापन था वहीं रोमान्टिक युग में वैयक्तिक स्तर का बन गया परन्तु आज वही बड़े-बड़े कारखानों, बड़े-बड़े संस्थानों में काम करने वालों के बीच अवैयक्तिक होता जा रहा है।

सच्चे अर्थों में ''एक चिथड़ा सुख'' उपन्यास की नायिका भिन्न-भिन्न स्तरों पर अकेली ही है, जिसका साथ जुड़ी हुयी जिज्ञासा भरी आंखें ही शेष रह गयी हैं।

एक गहरी उदासीन ने उसे घेर लिया है, एक धुंधली सी चाहना ने उसे भटका दिया है, एक शान्त ठंडी आवाज ने उसे बहका दिया है, इसीलिए वह अनजाने में ही अंधेरे गुफाओं के भीतर जीती चली जाती है।

आज के भोगे हुए यथार्थ में जिस भाषा को कथ्यात्मक रूप कहानियों में वर्मा जी ने दिया है वह बहुत ही सहज और परिवेशगत है।

इसलिए आज का वैयक्तिक मानसिक धरातल कुछ अलग ढंग का ही बन गया है।

निर्मल ने आज के परिवेश में प्रौढ़ और बूढ़े व्यक्तियों की उस आस्था के चित्र उकेरे हैं जब उनकी जिन्दगी हाथों से फिसल चुकी है।

''परिन्दे'' कहानी के डा. मुखर्जी इस प्रौढ़ उम्र में युद्ध के कारण अपने शहर रंगून को छोड़ यहां आ बसे हैं और वे सोचते हैं कि सारी उम्र यहां कट ही जायेगी।

परिवेश को यह बुझता हुआ रूप कितना कुछ यथार्थ है जिसे उन्होंने भोगा है।

देखें.........''बर्मा पर जापानियों का आक्रमण होने के बाद वह इस छोटे से पहाड़ी शहर में आ बसे हैं।..............कुछ लोगों का कहना था कि वर्मा से आते हुए रास्ते में उनकी पत्नी की मृत्यु

1- आधुनिक परिवेश और अस्तित्ववाद, पृष्ठ 13
2- Existentialism and Humanism, page 32

हो गयी..................बातों के दौरान डा. अक्सर कहा करते हैं--मरने से पहले मैं एक दफा बर्मा जरूर जाऊंगा।''[1]

लतिका डॉ. साहब के निजी जीवन को या कहें परिवेश को उरेहना चाहती हैं है, लेकिन वे अतीत के सम्बन्ध में सहानुभूति दिखलाने पर भी कुछ नहीं बतलाते।

उनका तो सीधा यही आदर्श वाक्य बन गया है कि इंसान जिंदा किसलिये रहता है? इसी प्रकार ''माया दर्पण'' कहानी में रिटायर्ड व्यक्ति का परिवेश निरूपित किया गया है।

दीवान साहब सिक्खों के दरबार के अकेले दीवाना थे, किन्तु आज उनके पास फटे-चिथड़े सा दीवान का खिताब बचा है जिसे चाहे ओढ़ लो चाहे बिछा लो। रिटायर्ड जीवन और अतीत में चिपकने की असंगति के कारण वे ऊंची जाति एवं बड़े घराने की प्रतीक्षा में बेटी तरन की शादी नहीं कर पाते।

घर का बोझिल सन्नाटा चहलकदमी की यकी अनिश्चित पदचाप और अधीर आतुरता से मेहमानों की प्रतीक्षा आज के परिवेश को जीवंतता प्रदान करती है। ''कौवे और काला पानी'' कहानी में परिवेश का संरचनात्मक पहलू चित्रित किया गया है।

इस पहाड़ी परिवेश में सटी हुयी मास्टर जी की टोहती आंखें बहुत बड़ी जिज्ञासा के साथ दर्शायी गयी है।

देखें.........''कहां काम करते हैं आप?

उन्होंने पहली बार मुझसे मेरी नीचे वाली जिंदगी के बारे में पूछा था.............उनके स्वर में एक लगाव भरी चिन्ता थी, जिसके कारण में उनका कृतज्ञ सा हो आया।

...............सिर उठाकर उन्हें देखा.................कमरे की पीली चांदनी में उनकी आंखें मुझ पर टिकी थीं। मुझे एक अजीब सा खटका हुआ................पता नहीं वे क्या सोच रहे थे?''[2]

अल्मोड़ा के प्रसंगत जीवन रिश्ते का धागा परिवेश में जितना अर्थ भरी दृष्टि से देखा जाता है, वह समझने योग्य है।

भले ही ठंड और थकान जमी हो, लेकिन वहां के व्यक्ति की अपनी दुनिया अलग-थलग बिखरी होने के बावजूद भी काफी परिष्कृत और विश्वसनीय है। वहां पेड़, चट्टानें, डगर, डाली आदि में फंसी हुयी व्यक्ति की करवटों की सांसों हल्का बाजार गरम तो कर ही देती हैं।

इस परिवेश में भी भावनाओं के जलते अंगारे हैं और विचारों को शीतलता की ऊंचाइयां बादलों में छिपी हुयी हैं।

लेखक आज के व्यस्त जीवन में ऐसे परिवेश से यथार्थवादी आदमी जोड़ना चाहता है जो जीवन की सच्चाई को बहुत नजदीक से पहचान सकें।

''डेढ़ इंच ऊपर'' का बूढ़ा पात्र आज के परिवेश में विगत पंद्रह वर्षों से जीवनगत विसंगति और व्यर्थता बोध में जी रहा है।

वह बार-बार स्वीकारता चलता है कि इस बुढ़ापे में न तो कोई कुशलता पूछने वाला है न उसकी जिन्दगी में सटकर के यथार्थवादी बनकर कुछ कहने वाला ही है।

बस इतना चेतना अवश्य रहती है कि नींद के लिए छटांक भर लापरवाही चाहिए और आधा छटांक थकान।

1- परिन्दे, पृष्ठ 123-124

2- कौवे और काला पानी, पृष्ठ 145

इसी बात को बढ़ाते हुए वही बूढ़ा व्यक्ति के चेतना के विभिन्न आयामों को संश्लेषित करने लगता है।

"इतनी चेतना अवश्य रहनी चाहिए कि आप अपनी चेतना को माचिस की तीली की तरह बुझते हुए देख सकें।

................जब लौ उंगलियों के पास सरक आये तो उसे छोड़ देना चाहिए।"[1]

बीच बहस में बूढ़े आदमी के परिवेश को कहानीकार ने विचारणीय बना दिया है। वह बरसों पहले रिटायर हो चुका है लेकिन फिर भी पुरानी नौकरी का स्वर अभी छूटा नहीं है।

बच्चों के लिए उसका अस्तित्व पीले पुराने गद्दे सा दिखायी देता है। फिर भी वह आज के परिवेश से वितृष्णा करता हुआ बेटे से इतनी बहस करता है कि बेटे को अपना अस्तित्व दीवार से चिपकी छिपकली सा लगता है।

"परिन्दे" और "दहलीज" कहानियों में युवा किशोर रूमानी एवं यौन धरातल का परिवेश है। परिन्दों की लतिका अपने को आज के परिवेश में समायोजित नहीं कर पाती क्योंकि उसका प्रेमी मर चुका है और वह अतीत से चिपकी है।

लतिका के लिए पूरे विश्व में कोई संगति नहीं है, इसलिए वह छुट्टियां भी स्नोफाल के बीच उस पहाड़ी कान्वेंट में अकेली बिताया करती है। जहां दरारों से बर्फ का पानी टपकता है।

"अन्तर" "उनके कमरे" और "वीक एण्ड" में यह विसंगति यौन सम्बन्धों की देन है।

तीनों कहानियों की नायिकाओं के अन्दर गृहस्थ और प्रेम की ललक है किन्तु जिन्दगी उनके हाथों से फिसलती जा रही है।

"अन्तर" की नायिका अपनी इच्छाओं के विरुद्ध आज के परिवेश को झेल रही है।

"वीक एण्ड" की नायिका छुट्टियां व्यतीत करने के लिए अपने अनुरूप किसी पुरुष को अपना दोस्त बना लेती है।

दृष्टव्य है........."अपने" "वीक एण्ड" वे हमेशा दूसरे शहर में गुजारते थे..........लेकिन ट्रेन में बैठकर लगता था कि वे दोनों अरसे के साथ रहते आये हैं.................कभी-कभी उसका मुंह उसके कन्धों पर उठकर उसके गले पर आ टिकता है और तब वह सब कुछ भूल जाती....................जहां-जहां उसके होंठ जाते वहां-वहां मांस गलने लगता जैसे उसके होंठ मोमबत्ती की लौ हो........."छोड़ो" वह धीरे से कहती-लगता जैसे उसकी झनझनाती नसें खून में भीगे सिगनल हों।"[2]

"दो घर" का प्रवासी देशी और विदेशी परिवेश में सोचने से पहले ही निराशा छा जाती है।

इसीलिये "लन्दन की एक रात" को जार्ज यही पूछता है कि क्या करना चाहिये क्या नहीं? "जलती साड़ी" में संकलित इस कहानी का अंश बहुत ही मार्मिक है।

"और मैंने सोचा, हम सचमुच कितनी कम बार अपने हाथों को इस तरंह देखते हैं, जैसे वे हैं, जैसे वे असल में है और तब भ्रम होता है कि जो भी चीज उनकी पकड़ में आयेगी वह हमारी नहीं हो सकती।[3] आज के परिवेश में बहुत तंग घेरे के भीतर केवल निगाहें ही हैं।

आंखें टटोलकर भीतर की कातरता को उड़ेल तो देना चाहती है पर किस पर और क्यूं?

1- पिछली गर्मियों में, पृष्ठ 36

2- बीच बहस में, पृष्ठ 37

3- जलती झाड़ी, पृष्ठ 109

कहानीकार आज के जलते उबलते परिवेश के ढलते स्वरूप का चित्र उपस्थित करता चलता है।

आज का व्यक्ति जिस रास्ते पर चल रहा है वहां एक धुंधलका ओढ़े हुए एक गड्ढा बना हुआ है जिसके भीतर वह न तो फिसलकर गिर पाता है और न ही बच पाता है।

परिवेशगत आधार पर निर्मल ने अपनी हर कहानी में मौलिक रूप से प्रस्तुत किया है।

''सितम्बर की एक शाम'' के नायक ने घर से भागने का कारण इस भावना से जाना है कि उसे लगता है कि वह मुक्त है और सारी दुनिया उसकी प्रतीक्षा कर रही है कि वह जीवन को नया अर्थ दे।

आज का चिन्तनशील व्यक्ति जीवन वरण की स्वतंत्रता के प्रति अत्यधिक सजग है।

इसीलिए निर्मल ने अपनी कहानी पात्रों को किसी अदृश्य शक्ति से नहीं जोड़ा है।

यहां प्रत्येक पात्र अपना जीवन चुनने के लिए स्वतंत्र है, क्योंकि वह जीवन को नया अर्थ देना चाहता है। इसमें संघर्ष और क्षमता बोध का होना अनिवार्य है। निर्मल की ''डायरी का खेल'' में बिट्टो तपेदिक की रोगी है।

वह असहाय, रुग्णता से घिरी हुयी है, फिर भी जिजीविषा से प्रेरित होकर बब्बू से कहती है.........''मरने से डर नहीं लगता'', लेकिन मरने के बाद क्या होगा, कहां जाना होगा, यह सोचते ही लगता है कि...........मरने से पहले बहुत जी भरकर जी लेना चाहिए और इतना जितना कि पहली कभी किसी ने न जिया हो।''[1]

''सितम्बर की एक शाम'' का नायक भी आज के परिवेश से जूझ रहा है। ''माया दर्पण'' की तरन जीने की अद्भुत क्षमता रखती है।

धागे की रूनी पति को छोड़कर जिजीविषा से जुड़ी हुयी है। ''डेढ़ इंच ऊपर'' के बूढ़े पात्र में भी आज के जीने की ख्वाइश है।

जिन्दगी का जवाबदेही लम्हा निर्मल प्रवृत्ति मार्गी व्यक्ति में भलीभांति देखा है।

आज के परिवेश में भाषा का जो पक्ष रचना रचाव में सही और उपयुक्त होना चाहिए, वर्मा जी ने स्वीकारा है।

उन्होंने जीवन के यथार्थ बोध में भाषा की यथार्थवादी परछाइयां ही चयन की है।

सचमुच जीवन के यथार्थ मनुष्य के भीतर पंछी की तरह उड़ान भरने के लिए छटपटा रहा है। इसीलिये कहानीकार ने हर कहानीकार पात्र को आज के ढंग से जीने के लिए विवश किया है।

उनकी कहानियों में युद्ध का भयानक चित्रण है। ''अमालिया'', ''माया दर्पण'', ''ब्रेख्त'' और ''एक उदास नगर'' आदि ऐसी ही कहानियां हैं जिनमें भयावह भयंकर लड़ाई के मिटे बुझे घाव परिवेश में देखे जा सकते हैं। ''पिक्चर पोस्टकार्ड'', ''सितम्बर की एक शाम'', ''कुत्ते की मौत'' आदि कहानियां देशी-विदेशी बेकारी के अनेक चित्र उरेह रही हैं।

युग यथार्थ को परिवेश से जोड़ते हुए निर्मल ने ''लंदन की एक रात'', ''छुट्टियों के बाद'', ''इतनी बड़ी आकांक्षा'' आदि कहानियों में ऐसे भयंकर दरिद्र संकेत संजोये हैं जिनमें केवल पथराये भावहीन सम्बन्ध माना शेष रह गये हैं। आज व्यक्ति को विसंगतियों ने अकेला और

1- परिन्दे, पृष्ठ 26

अभिशप्त बना दिया है।

मानसिक स्तर पर वह यह सोचने के लिए मजबूर है कि वह जिन्दा कैसे है।

अपने निर्णयात्मक पहलू को आज के परिवेश से जोड़कर हर व्यक्ति नयी दिशा दे रहा है। निर्मल का प्रवासी व्यक्ति घर, नगर और देश से उखड़ने की अनुभूति भोगने के कारण समाज और स्वयं के समक्ष संदिग्ध हो गया है।

निरन्तर असुरक्षा महसूसने के कारण वह समाज से ही कट गया है।

वाह्य एवं मानसिक विसंगतियों ने उसे अजनबी कर दिया है।

निर्मल ने यांत्रिक विसंगतियों को संसार में अकेलें अभिशप्त ने मनुष्य का चित्रण किया है। तात्पर्य यह है किं भाषा का संरचनात्मक पक्ष कथ्य के बुनाव में जितना कुछ सफल हो सका है उसके मूल में परिवेश की जीवन्तता अन्तर्निहित है।

(ङ) शिल्पगत प्रयोग और उनके प्रयोग द्वारा अभीष्ट प्रभाव की सृष्टिः-

आधुनिकता के परिवेश में अभिनव शिल्प बोध को रचना धर्म का अंग मानते हुए आज के यथार्थ से जोड़ा था। "अपने कथ्य को सीधे भोगने जीने और प्रस्तुत कर देने का यथार्थपरक प्रयत्न आज का अभिनव शिल्प बोध है।"[1]

यह तो निश्चित है कि शिल्प बोध लेखकीय अनुभूति की सामर्थ्य से पुष्टि होता हुआ अभीष्ट प्रभाव की सृष्टि करता है। हिन्दी शब्द कोष के अनुसारं ही शिल्प शब्द की व्याख्या भिन्न-भिन्न पद पदार्थों के प्रयोग धर्म को लेकर की गयी है। जैसे- ब्रनावट, गठन, आकृति, लक्षण, अवस्था, दशा तथा सौन्दर्य।

आज का लेखक कथा के रूपबन्ध और शिल्प विधान पर जब बात करता है तब एक ही बात उभर कर सामने आती है कि शिल्प के जितने अभिनव पक्ष प्रयोग सिद्ध हो सकेंगे उतने ही प्रभावमूलक वाक्य विन्यास कथा में जुड़ते चले जायेंगे। कथ्य का परिधान जहां एक ओर संवेदनात्मक क्षणों की तलाश करता है जिनसे अनुभूतियां को कथाकार संश्लिष्ट बनाने में सफल हो पाता है।

निर्मल वर्मा के अभिनव प्रयुक्त शिल्प को कुछ एक प्रयोगधर्मी बिन्दु मानते हुए हम कह सकते हैं कि उन्होंने मानवीय चेतना पक्ष को विविध आयामों पर सहस्पर्श करने का प्रयास किया है। जैसे चेतन प्रभाव पूर्ण शिल्प, कथा नियोजन का शिल्प, प्रलापीय शिल्प, आवर्तक शिल्प, बिम्बात्मक शिल्प तथा प्रतीकात्मक शिल्प आदि।

चेतन प्रवाह शिल्प का सम्बन्ध पाश्चात्य विचारभूमि से है। इस प्रकार के शिल्प स्मृति द्वारा अतीत के अंधकार को प्रदीप्त करते हैं। अतीत का क्रमिक इतिहास चेतन प्रवाह में वर्तमान के साथ जुड़ा रहता है। डा. देवराज उपाध्याय ने इसी तथ्य पर लिखते हुए कहा था कि वर्तमान क्षण को अपने अति क्षुद्र, अल्प और क्षणिक होता है। यदि वह अतीत को अनुप्रमाणित कर अर्थात उसमें

1- कहानी- स्वरूप और संवेदना, पृष्ठ 100

अपनी सांस फूंककर उसे सप्राण कर उसके कंधों पर बैठ सकेत तो वह बहुत ही भव्य विशाल आकृति का दृश्य खड़ा कर सकता है। इस दृष्टि से ''लाल टीन की छत'' उपन्यास झूठी स्मृतियों से घिरा हुआ ऐसा उपन्यास है जिसकी ''काया'' चन्ना चलित सी जिन्दगी होती हुयी कल्पना से अजीब का विषाद समेटती चलती है। उसकी आत्मा कांच के टुकड़े सी झिलमिलाते अतीत को हड़बड़ाती हुयी, झपटती हुयी बनी रहती है। काया और मंगलू के बीच का यह परिवेश चेतना प्रवाह पूर्ण शिल्प केलिये यह उदाहरण उपयुक्त ही है।

''दिल के भीतर एक गुबार सा उठता था और वह फूट जाता था। अंधेरे के आर-पार पहाड़ियां घूम रही थीं- उसकी चीखों के लय के साथ-साथ पागल, बेवकूफ............देखती नहीं हम कमरे में नहीं जा रहे..........मंगतू ने उसके पैर अपनी हथेलियों में दबोच लिये। वह गलियारों की सीढ़ियों से उतरने लगा था- और तब काया की देह शांत हो गयी। हाथ-पांव ढीले पड़ गये। मंगतू उसे अपने क्वार्टर में ले जा रहा था। वह उसके कंधों पर लिपट गयी।''[1]

''काया'' एक ऐसी स्मृति पात्र है जो आसपास के सन्नाटे में अपना अता-पता ही भूल जाती है। वह अपनी लम्बी सांसों को झूठी आशा में भुलाये रखती है। उसके बीच का जीवन झूलता हुआ अपने आप ही में अविश्वसनीय बन गया है। उसका यह ख्याल विस्मयकारी हो गया है कि वह अपने कमरे में नहीं, मंगतू के क्वार्टर में लेटी है।

इच्छा होती है कि सब उसे देखें कि वह कितनी अकेली है। उसे अविश्वसनीय लगने लगता है कि जो टिमटिमाती रोशनियां उसे दिखायी दे रही हैं उनमें सब अकेले ही लोग संतृप्त हैं। उसे एक अजीब सा विषाद घेरे रहता है। एक अच्छी आदिम हमदर्दी उसके मन में उगने लगती है जो जंगल की अबाध नीरवता में एक पक्षी की चीख सुनकर दूसरे पक्षी को चीखने के लिए विवश कर देती है।

वस्तुतः वह जिंदगी भर अंधेरे में ही दोनों हाथों को दबोचकर अपनी बीती सिसकियों को सुनाती रही है इसलिए उसके एक-एक शब्द के बीच स्मृति चिन्ह मिल जाता है, जहां वह हवा में धुंधला सा इशारा करती हुयी ठहर जाती है।

कभी-कभी तो उसे लगता है कि जो चीज उसे अपनी खोर खींच रही है वह कुछ और न होकर सिर्फ उसकी स्मृति ही है इसीलिए वह धीरे-धीरे अपने बोझिल कदमों से सीधे-सादे बच्चों की तरह जिन्दगी की राह पार करती चली जाती है। चेतना प्रवाह का यह अभिनव शिल्प काया के उस मन का रहस्य खोल देता है, जिसमें उसने अदृश्य सांसों के महल बनाये हुए थे। काया का कसेला सा स्वाद, भय, जीवन पहाड़, के बीच आज कितना धुंध से अपूरित हो गया है, वह खुद ही महसूसती है।

उसका बदहवास सा चेहरा, पेट पर बंधा दुपट्टा, चौड़े माथे पर उड़ते बाल, उठे हुए सतर कंधे ऐसे ही साक्ष्य हैं जिनमें अतीत की जिन्दगी की आहट और वर्तमान के जीवन का फिसलता कवभ एक साथ उतर आये हैं। उसे लगता है कि भीतर ही भीतर कोई सुरंग बन गयी है जिसमें पैरों की आहट एक सिरे से दूसरे सिर तक आती-जाती रहती है। उसके भीतर एक विचित्र सा धुरधुराता स्वर उठता है और फिर धीरे-धीरे भीतरी सुरंग में सो जाता है। इस अजीब सी बेचैनी में उसका दम घुटता जा रहा है।

1- लाल टीन की छत, पृष्ठ 71

निर्मल वर्मा ने चेतन प्रवाह शिल्प से काया जैसे अनेक पात्रों की मनःस्थिति का अन्वेषण किया है। डा. नामवर सिंह ने तो उनकी कहानियों में भी चेतन प्रवाह शिल्प ही बुनियादी रेखाओं का प्रकाश डाला है और कहा है............"निर्मल की अधिकांश कहानियां अतीत की स्मृति हैं। कहानी कहने वाला बरसों बाद उस स्मृति को दोहराता है। स्मृति में भावुकता सम्भव है किन्तु समय का अन्सल तात्कालिकता के आवेग को काफी कम कर देता है। ऐसा प्रतीत होता है कि तात्कालिक आवेग की भावुकता को कम करने के लिए ही निर्मल समय का इतना अन्तराल दे देते हैं।"[1]

"डायरी का खेल" के बब्बू को बिट्टी की बहुत सी बातें याद आती हैं, एक के बाद एक प्याज के छिलके सी एक-दूसरे को छीलती हुयी। "तीसरा गवाह" के रोहतगी साहब में स्कॉच पीते-पीते अपनी कहानी सुनाने लगते हैं।

"माया दर्पण" के दीवान साहब अतीत जीवी होने के कारण आज भी फटे चिथड़े सा दीवान का खिताब ओढ़े फिरते हैं। "दहलीज" की सनी के पास कोई पुराना सपना धीमे कदमों से चला आता है। ये स्मृतियां शम्मी भाई द्वारा दिये गये नामों की तरह इतने बरसों बाद भी लान की घास और बंगले की दीवारों से लिपटी बेल लताओं की तरह चिरन्तन अमर हैं।

कहने का तात्पर्य यह है कि निर्मल ने चेतन प्रवाह शिल्प में दो प्रकार के स्मृत्यात्मक बिम्ब खड़े किये हैं पहले वे हैं जिनमें वैयक्तिक जीवन से घिरी हुयी कहानियों के स्वरूप हैं और दूसरे वे हैं जो प्रस्तुत के माध्यम से अप्रस्तुत की व्यंजना करते हैं। जैसे "दो घर" कहानी में प्रवासी पात्र को पतझड़ के पत्तों को देख अपने देश के पतझड़ की याद आ जाती है। इसी प्रकार "अंधेरे में", "डेढ़ इंच ऊपर", "धागे", "पिछली गर्मियों में" आदि कहानियों में छितरे-छितरे प्रसंग पूर्व दीप्ति को लेकर आये हैं।

अभिनव शिल्प प्रतिष्ठा में निर्मल ने विचारोत्तेजक प्रलापीय शिल्प का अत्यधिक प्रयोग किया है। यह प्रयोग अर्थ गम्भीर्य को अधिक सम्पुष्ट करता है। वैसे यह भी अवचेतन से जुड़ी हुयी जीवनगत अवधारणा है जिसे जीवन में हर व्यथित व्यक्ति को जीना होता है। अनुभव का सहज हिस्सा कितना प्रलापी होता है, वह "वे दिन" उपन्यास में विचारणीय है। देखें........

"मैंने तुमसे क्या कहा था? आज तुम अकेले नहीं हो सकोगे............सब हीटर और बत्तियां बंद हैं। किसी ने मुझे फोन किया था।" "नहीं............आज नहीं।" लेकिन कल रात तुम कहां थे? कोई लड़की तुमसे बात करना चाहती थी। वह तो कहो, मुझे जर्मन आती है..........नहीं तो उसे कुछ पता नहीं चलता।"

"मुझे मालूम है..........मैं भीतर जाने लगा।"[2]

यहां दोनों पात्रों के मध्य जिस अनर्गल प्रलाप का जिक्र किया गया है वह सशंकित और हास्यास्पद है। जैसे आज अंधेरा कैसा है? मैंने तुमसे क्या कहा था? किसी ने मुझे फोन किया था। मैं भीतर जाने लगा, आदि वाक्य असम्बद्ध प्रलाप होकर नायक के गहरे चिंतन को व्यक्त करते हैं। कहानियों में "डेढ़ इंच ऊपर" प्रलापी शिल्प में लिखी गयी कहानी है। यहां मध्यम पुरुष की कल्पना करके नायक कभी संलाप करता है और कभी एकालाप। उसका चिन्तन गहरे अर्थ

1- कहानी- नई कहानी, पृष्ठ 75

2- वे दिन, पृष्ठ 112

बोध का संकेत देता है। "परिन्दे" की लतिका भी ह्यूबर्ट से सलाप करती हुयी अनर्गल प्रलाप तक पहुंच जाती है। जैसे "खुदा जाने इस हालत में कहां भटक रहे हैं?..........कमरा खाली पड़ा है। लतिका ने लेटे-लेटे पलंग के नीचे चप्पलों को उतार दिया।"[1] "वीक एण्ड" में भी ऐसा ही प्रलापी शिल्प है। और भी ऐसी कहानियां हैं जिनका बहुत सारा हिस्सा उन्हीं शब्दों को दोहराने के लिए चुना गया है जिनमें एक भीतरी स्मृत्यात्मक बुनियाद है। "दहलीज" का मूल भाव प्रेम और वेदना का रागात्मक चित्रण बन गया है, जिसमें हर पात्र का अभिनव शिल्प रुमानी बनकर मुखरित हुआ है। "बीच बहस में" कहानी का शीर्षक ही इस बात का प्रमाण है कि संलाप बूढ़े और युवा के बीच किस प्रकार प्रलापीय बन सकता है। नर्स और मरीज के बीच जो वार्तालाप होता है उसका निष्कर्ष अपना अलग ही शैत्विक प्रयोग बनाये हुए है। देखें............"वह झिड़की नहीं थी, एक खाली जगह को भरने की कोशिश थी.........नर्स ने हताश भाव से उसकी ओर देखा मानो मरीज वह हो बिस्तर पर लेटा आदमी नहीं।"[2] पात्रों की परस्पर असम्बद्ध बातें ही प्रलापी शिल्प की अनोखी परिचायक बन जाती है। निर्मल की ये कहानियां घटना की क्रमबद्धता, संगति से तारतम्य को चुनौती देती हुयी पात्रगत मनःस्थिति का इस प्रकार उद्घाटन करती हैं जिसमें व्यक्तित्व का विश्लेषण एवं परिवेश का स्वरूप स्वतः ही अंकित हो जाता है।

यहां पर एक बात कह देना निहायत जरूरी है, कि इस अभिनव शिल्प से कथानक से बहुत कुछ बिखराव आ जाता है, इसीलिए डा. शिवप्रसाद सिंह ने एक सामान्य सी बात कही है कि "जो कथाकार समस्याओं के घेरे में प्रलापीय संलाप को अपनाते हैं वे कहते-कहते खुद ही बिखर जाते हैं और उन्हें फिर अपने को संभालना कथासूत्र को जोड़ने के लिए बहुत ही कठिन हो जाता है।"[3]

मूलतः कथानक का ह्रास इस अभिनव शिल्प के प्रयोग से कुछ ज्यादा ही हुआ क्योंकि इस प्रकार का प्रयोग पाठक से अतिरिक्त समझ की मांग करता है।

कथाकार शब्दों, वाक्यों या सन्दर्भों की आवृत्ति द्वारा कथा की व्यंजना एवं सोद्देश्यता को प्रकट करता है। भाषा की यह गतिमयता कथा की मूल संवेदना में इतनी एकीकृत हो जाती है, कि कथाकार बार-बार उसी विन्यास को दोहराता हुआ अभिनव शिल्प के नये आयामों को प्रकाश में लाने लगता है। वस्तुतः भावनाओं का गुबार वैचारिक स्वर का भी अतिक्रमण कर देता है जिससे जीवनगत उतरती चढ़ती तमाम रेखाओं को बड़े ही सहज ढंग से टटोला जा सकता है। "जिन्दगी यहां और वहां" कहानी में कथ्यात्मक विचित्रता इतनी अधिक आवृत्तिमूलक हो गयी है कि उसे दर्शन, जीवन, मन, मस्तिष्क आदि विषयों में एक साथ एक क्रम में पिरो दिया गया है।

लेखक लिखता है............ "ऐसी घड़ी में न्याय-अन्याय की बात मुझे हिमालय की चोटी सी जान पड़ी, ठण्डी और सफेद पवित्र........पहुच के परे.......कुछ शब्द अचानक भीड़ से अलग हो जाते हैं.........खोये से, लावारिस.........प्रेम और पाप, ईश्वर, झूठ और न्याय और मौत........ ठहरे पानी में अलग-अलग साबुत, चमकते, सुनहले पत्थरों की तरह मैने जल्दी से एक कागज उठाया और दूसरे नामों के नीचे अपना नाम लिखने लगी।"[4] यहां पर पात्र की मनःस्थिति उस परिन्दे की तरह बनी जो सीजन के साथ ही अपने हौसले बदलता चलता है। दरअसल उसे अपनी पहचान रह नहीं गयी है। इसीलिए जल्दी ही कागज समेटे हुये अपनी आंखों से उस विचार विशेष को

1- परिन्दे, पृष्ठ 154
2- बीच बहस में, पृष्ठ 87-88
3- धर्मयुग, अक्टूबर 1966
4- कौवे और काला पानी, पृष्ठ 49

टोहना चाहती है जिसमें कोई ऐसा सुख हो जिस पर अंगुली रखकर कहा जा सके। वह अपने मन के भीतर झांकते हुये उन कोशिशों को बराबर बरकरार रखती चलती है जो भीतर की दुनिया से बाहर आकर ठिठक गया है। उसके मन की उलझन भीतर ही भीतर सुराख पैदा करती चलती है, इसीलिए उसे डबडबाई रोशनी के बीच भ्रम पैदा होता है बल्कि वह माया और सच के बीच भागती हुयी छांह बन गयी है। उसके होंठों से बाहर जो शब्द मुखरित हो रहे हैं उनमें प्रार्थना की आवृत्ति है और अकेले पन की झटपटाहट।

ऐसी स्थिति में निर्मल ने बहुत कुछ हृदय की गूंज की अनुगूंज को बहुत दूर तक सुना है। डा. शशि भूषण नें ऐसे अभिनव शिल्प पर विचार करते हुये एक जगह लिखा है कि.........''यहां आवर्तन की प्रक्रिया प्रति आवाहन की भी है और प्रकृत विकास की भी जो कथा की मूल संवेदना को निचय ही सम्प्रेषणीयता और प्रभावान्वित की शर्त तक पूरी करती है।''[1]

निर्मल ने ऐसे अभिनव शिल्प के प्रयोग से पात्रगत मनःस्थिति को हर कोण से देखने का प्रयास किया है। ''लवर्स'' में निन्दी बार-बार अपने मैत्री कक्ष का इजहार करता हुआ कहता चलता है कि बी केन बी फ्रैण्ड्स बी आर फ्रैण्ड्स।

यह सब पीले पपड़ाये गिरते पत्तों की उस आवृत्ति का सूचक है जिसमें सब कुछ होने के बावजूद भी कुछ भी नहीं है। पिक्चर पोस्टकार्ड का परेश अक्सर बोलते हुये अपने विचारों की आवृत्ति करता रहता है।

''लन्दन की एक रात'' का बेकार पात्र भूख और पेट से इतर शरीर की भूख पर जोरदार बहस करता है। ''अन्तर'' की नायिका गर्भपात के बाद मानसिक रूप से इतनी बोझमुक्त हो गयी है कि उसे लगता है कि वह बहुत हल्का महसूस रही है।

''धागे'' में पात्रगत शून्यता बोध अनुभूति को बहुत अधिक गहराना चलता है। ''दो घर'' में एक हिन्दुस्तानी की आत्मकथा का अभिनव शिल्प में ऐसा चित्रण है जिसमें भीतर से बाहर तक एक व्यथित गूंज है।

कथा नियोजन का शिल्प निर्मल को बहुत अधिक भाया है। उन्होंने शिल्प की उस प्रयोगधर्मिता पर विचार किया है जिसमें व्यक्ति के विचार सूत्र साकार बन जाते हैं।

संशलिष्ट शिल्प के द्वारा कथ्य के रचाव में उन्होंने विलक्षणता ही एहसासी हैं। यद्यपि बहुत कुछ परिवेश एवं वैयक्तिक अवधारणा से कुछ नीरस बनता गया है, फिर भी यह सब अभिनव शिल्प की कसौटी पर कुछ नया लेकर ही गुजरता है। ''पिछली गर्मियों में'' कहानी का वह हिस्सा बहुत अधिक विचारणीय है, जिसमें कहानी का प्रारम्भ मन मस्तिष्क और पार्थिव शरीर की प्रक्रियाओं में एक जैसा गुंथ गया है। जैसे.......''वह दो सीढ़ियां नीचे उतरा और अन्तिम सीढ़ी पर आकर ठिठक गया। पांव के अंगूठे से पानी को छुआ। एक गुनगनी सी झनझनाहट उसकी नंगी देह में फैलने लगी। एक आतुरता सी हुयी अपने को खुला छोड़ देने की, किन्तु उसने अपने को रोके रखा।''[2]

पात्र की मन अनुरूप उतार चढ़ाव की स्थिति जिस परिवेश के सापेक्ष दर्शायी गयी है, वह बहुत ही ऊबड़-खाबड़ है। उसके मन की दुविधा काफी हद तक उसे अशान्ति दे रही है। सीढ़ी पर

1- नई कहानी के प्रयोग, पृष्ठ 189

2- पिछली गर्मियों में, पृष्ठ 118

उतरते-चढ़ते उसे अजीब सा तो लगता ही है साथ ही अन्तःहीन खुलापन वह महसूसने लगता है। वह भीतर ही भीतर खिंचा हुआ अजीब सा तनाव महसूस करता है, फिर जिजीविषा के बल पर धड़कते हुये दिल से आगे वह कुछ छूता ही चला जाता है। उसके मन का छितराया हुआ पीलापन धूप के उजालेपन में भी कुछ बदरंगा हो गया है जिससे भीतर ही भीतर वह घुलता हुआ चिन्तित मन को हवा में उड़ता हुआ देख रहा है।

यह कड़वाहट और मनहूस सा परिवेश उसे ठिठक जाने के लिये मजबूर करता है। वह अनमने भाव से ऐसे खड़ा रहता है, जैसे सामने का जमीन का टुकड़ा बिल्कुल अपरिचित और अंजाना है।

अभिनव शिल्प में आज बिम्बात्मक शिल्प बहुत कुछ जोर दे रहा है। बिम्ब का निर्माण कल्पना के मूर्त होने पर होता है। बिम्बों की आवृत्ति जिस व्यंजना को जन्म देती है उसी से प्रतीक जन्म लेते हैं। प्रतीक में जातीय चेतना होती है और बिम्ब में व्यक्ति की चेतना।

आज के कथा साहित्य में दोनों तरह के मूलसम्वेद कथ्य की स्पष्टता के लिये अनिवार्य हो गये हैं। सचमुच परिवेश का चित्रण पात्र मनःस्थिति और संवाद की उपयुक्तता के लिये कथाकार ने इन्हें अनिवार्यतः प्रयुक्त किया है।

निर्मल वर्मा ने अभिनव शिल्प में बिम्ब के उन अर्थ विशेष से जुड़े आयामों को सुदूरता से पहचाना है जिनमें मन का ठहराव और देह में अजीब सी सिहरन एक विशेष हिस्सेदारी से रेंगने लगती है।

''बौने'' पात्र का व्यक्तित्व विविध धर्मी बिम्ब विधान के यहां दृष्टव्य है..........''इतने बरसों बाद आज भी उसका चेहरा स्मृति पर टंगा रह गया है...एक पुरानी फोटो सा गंजा सिर, मोटे लाल होंठ और गोल-मटोल सी गर्दन...........जैसे ''किसी ने दुनिया का ग्लोब दो लकड़ीनुमा टांगों पर टिका दिया हो। किन्तु जो चीज आज भी दिल को खोजती है...वह उसकी आंखें थीं...दो छोटी-छोटी दीवो-सी टिमटिमाती हुयी भीतर के अंधेरे को अपने पीले आलोक में टोहती, पिघलाती हुयी। उसने कभी इतनी उदास आंखें नहीं देखी थीं।''[1]

इसमें मोटे लाल होंठ, गोल मटोल सी गर्दन लकड़ीनुमा टांगों छोटी-छोटी दीवो, पीले आलोक आदि ऐसे चित्रात्मक बिम्ब हैं जिनके बीच दृश्यबोध के बहुत सारे दृश्य बिट्टी के मन पर रेल की तरह गुजरते चले जाते हैं।

बोने का व्यक्तित्व आज की दुनिया की हवा में फंसा हुआ ऐसा भंवर है जो कभी इधर तो कभी उधर धीरे-धीरे चलता फिरता जाता है। उसका ठूंठ जैसा सहज नुमाइश नुमा व्यवहार धुंध के उस पहिये को खींच रहा है जिसमें न गति है और भीतर की जलन। बिट्टी अपने मन पर तारों की पीली छांह में गुजरते हुये, घिसटते हुये इस प्रकार के सन्नाटे को झेलती जा रही है।

''माया का मर्म'' कहानी में भी इसी प्रकार ऐन्द्रिक दृश्य बोध को दर्शाया गया है। जैसे सपनों की बासी गन्ध मानो तितली के रंगीन परों से बूंद-बूंद ढुलककर विस्मृति की कब्रों पर उगी हुयी पीली घास में खो गयी है।

यहां सपने, तितली के रंगीन पर, कब्र, पीली घास, दृश्य बिम्ब प्रस्तुत करते हैं।

बासी में स्वाद बिम्ब है, गन्ध में घाण, घास में स्पर्श और ढुलकन में श्रव्य बिम्ब है।

इन बिम्बों की आवृत्ति मन में उतरती हुयी उन तस्वीरों को परादर्शी बनाती है जिनमें सारी

1- एक चिथड़ा सुख़, पृष्ठ 104

सृष्टि समायी हुयी है। यह भावनाओं की चित्रोपम पूंजी वही लेखक बटोर पाता है जिसे परिवेश की मनःस्थिति की मूर्त अमूर्त पहचान हो 'मेरी प्रिय कहानियां' संकलन में 'दहलीज' कहानी का यह ऐन्द्रिक और परिज्ञानात्मक परिवेश सापेक्ष बिम्ब विधान विचाणीय है............''चारों ओर दूर-दूर तक भूरी सूखी मिट्टी के ऊंचे-नीचे टीलों और टूहों के बीच बेरों की झाड़ियां थीं,

छोटी-छोटी चट्टानों के बीच सूखी घास उग आयी थी, सड़ते हुये पीले पत्तों से अजीब नशीली सी बोझिल कसैली गन्ध आ रही थी।

धूप की मैली तहों पर बिखरी-बिखरी सी हवा थी।[1]

परिवेशगत भूरी-सूखी मिट्टी का ऊंचा नीचा टीला, झाड़ियां, चट्टानें एक ओर जहां ऊबड़-खाबड़ जीवन का प्रतीकात्मक बिम्ब हो रही हैं वहां दूसरी ओर कसैली गन्ध, मैली तह, बिखरी हवा, जीवन की द्वन्दपरक स्थिति का परिचायक बनकर बिम्बायित हो रही हैं। रूनी और शम्मी को इन सब में टेढ़ी-मेढ़ी आकृतियों तिरते हुये हवा को झोकों में दृष्टिगत होती है।

ऊबड़-खाबड़ धरती पर उनकी खामोश छायायें ढलती हुयी धूप में मिटने लगती हैं।

लाल भुरभुरे पत्तों को ओह में भूला हुआ सपना झांकने लगता है।

गुनगुनी सी सफेद हवा मन की दीवार को लांघकर बहुत दिन पहले सुने हुये मधुर स्वर की पुनरावृत्ति करने लगती है और वे शाम की धूप की तरह ढलता हुआ हल्का दर्द लेकर खड़े के खड़े रह जाते हैं ....आकश के उस नीले टुकड़े की तरह जो आंसू के कतरे में ढरक कर उपस्थित हो गया है निर्मल वर्मा ने 'इतनी बड़ी आकांक्षा' कहानी में कथा का संयोजन ऐसे ही अभिनव शिल्प से चित्रित किया है जिसमें आधुनिकता का पूरा ही बोध है, किन्तु परम्परा में उन्हें बार-बार धक्का देकर बेचैन बना दिया है।

इस कहानी को अभिनव शिल्प से इतर यह रोपा गया है कि पति पत्नी और एक अन्य पात्र तीव्र हो रही यौन आकांक्षा को लेकर तड़प रहे हैं।

इसी बीच ठिगनी सांवली जिप्सी लड़की फौजी के साथ नाचकर यह सिद्ध करती है।

कि आज का जीवन भी अभिनव प्रयोग की मांग करती है। निर्मल ने समग्रतः अभिनव शिल्प विधान के द्वारा ऐसे पात्रों की सृष्टि की है जिनके पैरों तले की जमीन ठोस होने के बावजूद भी वायवी ही है। जिसमें खोखली आकांक्षा अतृप्त अदम्य लालसा और यथार्थ भोगने की कामना जगह-जगह ठिठक गयी है।

(च) जटिल मनोजगत को सूक्ष्म रूप से समझने तथा अभिव्यक्त करने की क्षमता :-

कथाकार व्यक्ति के वाह्य संसार की अपेक्षा आन्तरिक गहराई की ओर ज्यादा रुचि लेता है।

सामान्य मानव की सामान्य परिस्थितियां ही विभिन्न अवस्थाओं की ओर झुकती हुयी बड़ी ही जटिल समस्या खड़ी कर देती हैं जिससे टेढ़े-मेढ़े अन्धकारपूर्ण कोने ही हर जगह दृष्टिगत होते हैं।...........डा. देवराज ने कथा साहित्य के मनोविज्ञान में यह बात भली भांति विचारी

1- मेरी प्रिय कहानियां, पृष्ठ 16

है............"कथाकार ने मानवीय प्रवृत्तियों को लेकर ही विश्व की परिक्रमा कर डाली जिससे मानव के हृदय और मस्तिष्क के अतल और संकीर्ण घेरे सामने आने लगे हैं।"[1]

निर्मल वर्मा के उपन्यास पात्रगत जटिल मनःस्थिति को अभिव्यंजित करने में बहुत सफल हुये हैं

"एक चिथड़ा सुख" में बिट्टी की जटिल मनःस्थिति का चित्र दर्शनीय है।

देखें ...."बिट्टी अपना बैठ लेकर बैठी थी।, उजली और साफ-लेकिन रक्तहीन। नित्ती भाई की मृत्यु के बाद उस का चेहरा बराबर एक ठिठुरती हुयी ठंड में जमा रहता है। न कोई भाव न भावहीन ....सिर्फ सख्त, सख्ती, जो सूख जाती है सूखकर एक चमक सी बन जाती है।"[2]

बिट्टी की मनःस्थिति इस परिवेश में बहुत जटिल बन चुकी है। उसका मन भीतर बाहर बहुत भटक रहा है।

उसकी देह में चमक तो है लेकिन वह निष्फल और तटस्थ है जो सिर्फ अपने से जोड़ती है।

बिट्टी सरकती हुयी जिन्दगी को बड़े उदास मन से देखती है। ऐसा उसके मन का रहस्य बन गया है जिसे न वह कह पाती है और न दिल से बुझा पाती है, बल्कि एक थकी मांदी औरत की भांति एक एक कदम घसीटती हुयी जिन्दगी गुजार रही है। उसके भीतर मन का धुंधला सा कुहासा वर्तमान को ढकता चला जा रहा है।

उसे धुयें में काले अक्षर जिन्दगी के ऐसे लगते हैं जैसे कुहासे में पेड़ फिसल रहे हों, घास हिल रही हो, झाड़ियां सरसरा रही हैं, दुनिया की आंखें उसे घूर रही हैं।

बिट्टी की सारा दैहिक चेतना का रूप आधी कटी तस्वीर सा बना है जिसमें नीली तनी हुयी नसें स्पष्ट दिखायी दे रही हैं। वह अपलक पांव और घुटने को समेटती हुयी अपने को देखती रह जाती है।

किसी भी जीते मनुष्य के चेहरें को ऐसा नहीं कहा जा सकता है। जैसा कि बेजान पत्थर सा चेहरा उसका था।

वह अपने आप में उलझन के धागों से बिधी हुयी है। उसकी आंखें कभी कभार सन्नाटे में अपने आप को टटोल लेती है। बस मूड़े पर बैठी हुयी बिट्टी की सांस भर सुनायी देती है। और कुछ नहीं।

इस प्रकार के मनोभूमि पर जीवन चरण को रखने वाला पात्र वर्मा ने "लाल टीन की छत" उपन्यास में भी देखा है।

काया प्रवासी होकर अपने जीव को बेहद एकांकी बना लेती है।

काया धुंधलके का ऐसा बना चित्र है जिसमें न उत्साह की सांसें हैं और न ही आंखों की इच्छा भरी दृष्टि।

काया सब कुछ अपने में ही समेट कर रक्तहीन विराम लगा देती है। उसने अंधेरे में ही अपने जीवन को गुजारने का निश्चय कर लिया है।

बेहद जटिल मन स्थिति से काया का घर और दुनिया घिरी हुयी है।

इसीलिये उसने स्मृति का वह हिस्सा मन में टांक लिया है जिसके सहारे रियायती आंखों से

1- आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य और मनोविज्ञान, पृष्ठ 253

2- एक चिथड़ा सुख, पृष्ठ 160

वह कुछ और आकांक्षा भर पाती है।

काया अपनी मन स्थिति इतनी कुछ विचित्र बन गयी है कि वह पत्थरों पर चिपटकर आकाश को ताकती भर रह जाती है, इसीलिए परिवेशगत अन्य पात्रों के साथ भी वह निराश और लापरवाह होती जा रही है।

काया जिस मानसिकता को लेकर जी रही है वह सिर्फ उसके अपनेपन की भीतरी खोज है।

उसने आज सरो जीवन की भंगिमा को अपने में ही समेटकर जीने का निश्चय किया है। झूठी सच्ची बोझ भरी जिन्दगी से उसे भयानक पीड़ा का ही एहसास होता है।

वह परिवेश को झेलती हुयी सोचती है...........“मैं सांस लेने लगी जैसी पहली बार खुली, अन्तहीन हवा में सांस ले रही हूं ....पक्षियों का रेला झाड़ियों से ऊपर उठा और रेल की पटरियों के साथ-साथ उड़ने लगा.........समूचे जंगल को अपने में समेटती हुयी, एक अजीब सा आमन्त्रण जो सब कुछ धो डालता है, अपनी तरफ बुलाता है...........मैं नीचे उतरने लगी।”[1]

इन पंक्तियों में न कोई पीड़ा है और न कोई पछतावा अगर है तो सिर्फ भीतर का घिरता आकाश है जिस पर डरे हुये पक्षियों का बवण्डर जो अपने भीतर एक अंधेरी फूटकार चेतना को प्रकट करता है।

काया का यह दृश्य भयानक पीड़ा को तोड़ता हुआ उसमें रक्तिम ज्वार पैदा कर देता है

वह अपने आप में इतनी अधिक आतंकित गूंज महसूसने लगती है जिसके कारण इस प्रकार के असाधारण स्वप्नों में उसकी मानसिकता जी रही है।

उसका मन मस्तिष्क बनैले जानवर की तरह बदहवास सा होकर चारों तरफ घूमता है, न बाहर आ पाता है और न भीतर ही रह पाता है।

उसकी आंखों की कायरता पूर्ण बेचैनी सारे शरीर को झकझोर देती है और असर यहां तक होता है कि उसके भीतर का सब कुछ ठहर जाता है

फिर भी परिवेश के साथ सारा परिचित संसार उसके सामने भटकता रहता है।

ऐसी अवचेतनपूर्ण मनःस्थिति में काया का सुदूर जीवन इतना कुछ विचित्र बन गया है कि वह न तो धरती पर ही है और न आकाश में।

उपन्यासकार वर्मा नये-नये पात्रों के माध्यम से जीवनगत उन बारीकियों को पकड़ने का प्रयास करते हैं जिन्हें हर व्यक्ति कभी-न-कभी अजनबी मानकर जी लेता है। हर व्यक्ति की अपनी चाहत एक खालीपन समेटे हुये है और इस अनिश्चित मन से किसी-न-किसी ऐसे सिरे को पकड़कर जी रहा है जो कभी-न-कभी भीतर से बाहर तक आलोक ही आलोक भर देगा।

यद्यपि आज के व्यक्ति के भीतर का बेमानी स्वरूप नीरवता में समाप्त होता जा रहा है, फिर भी वह अपने मन का कोलाहल कहीं खास जगह परक जाकर विस्फोटक बना ही देता है।

‘वे दिन’ उपन्यास के कुछ पात्र ऐसे ही हैं जिन्हें उपन्यासकार ने जटिल मनःस्थितियों में घिरा हुआ पाया है।

मन का खालीपन कभी-कभी ऐसी जगह की तलाश करता है जिसमें सिर्फ उत्तेजना होती है।

व्यक्ति अथाह चिन्ता में डूबा हुआ अपने आपको भूल चुका है।

वियना के युद्ध परिवेश का स्मरण करती हुयी स्त्री पात्र सोचने लगती है---------

1- लाल टीन की छत, पृष्ठ 196

"क्या सोच रही हो?"

वह चौंक सी गयी। उसने मेरी ओर देखा .... मुझे लगा जैसे उसकी आंखें मेरे चेहरे को छू रही है...........

"कुछ नहीं ....मैं उस आंखिरी रिकार्ड के बार में सोच रही थी।" ....उसने हंस कर कहा। "कैसा लगा तुम्हें?"

"मैने उसे बरसों पहले सुना था ....उससे कहा।

"वियना में?"[1]

वस्तुतः सोच में व्यक्ति का मन अतीत के अंधेरे में टिमटिमाते अक्षर खोजने लगता है और वह उन चीजों को उरेहने लगता है जहां पुरानी दीवारों की वास गन्ध जमा हो गयी है। वियना के उस दृश्य का स्त्री पात्र ने इतना कुछ ख्याल बना रखा है कि रिकार्ड के बारे में वर्तमान को ठहरा लेती है और उसकी सोच एकाएक चारों तरफ से ढीली पड़ जाती है फिर चारों ओर का परिवेश खाली-खाली उजड़ा सा ही अनुभव करती है।

अतीत और वर्तमान के अन्तराल का बड़ी खामोशी से अनुशीलन करती हुयी वह निर्मल अपनी स्मृतियों को एक जगह ठहरा लेती है जैसे कि पानी के नीचे सुडौल चमकीले पत्थरों की तह जमी हो। वर्मा ने इस रूखे और संघर्ष पूर्ण परिवेश का बहुत ही जटिल मनःस्थिति से नाता जोड़ ा है। उसी स्त्री को उस क्षण यह सोचना सम्भव लगा कि रायना और फ्रांज जैसे हजारों लोगों ने वियना लड़ाई के समय कभी जिन्दगी गुजारी होगी।

वियना बड़े ही कौतूहल पूर्ण दृष्टि से उसके मन का सारा रहस्य पारदर्शी बना देता है।

यही उसके आधुनिकता बोधीय बोध का परिणाम है। जिसने ठंडे गरम सभी तरह के अजीब हर से पात्रों के मन में भीतर बैठे हुये देख और समझे हैं।

उपन्यासकार का बाहरी परिवेश इतना कुछ बहुयामी है कि वह चेकोस्लोवाकिया की राजनधानी पराग में स्त्री-पुरुष के सह-सम्बन्ध और उनकी मानसिकता को सहज में ही पहचान लेता है। कहानीकार निर्मल वर्मा ऐसे तमाम कथ्य कहानियों में लेकर चले हैं जिनमें पात्रगत संत्रास है, विडम्बना है, छटपटाहट है, जटिलता है और भयावहता है।

"डायरी का खेल" की बिट्टी आधी रात के समय बब्बू को चेफ्त पर ले जाती है, पांव के नीचे सूखे का ढेर चरमरा उठता है। नायक बब्बू इतना संत्रस्त है कि वह हल्के से पत्तों की चरमराहट की ध्वनि से सहम जाता है और फिर एक अपरिचित घनी शान्तिप्रिय छाया में अपने को बेगाना महसूसने लगता है।

बब्बू और बिट्टी के बीच एक गर्म रिस्ता है फिर भी बब्बू एक शून्य दृष्टि लेकर अपनी आंखें दीवार पर जमाये उन क्षणों को गिनता रहता है जिनमें मात्र जिन्दगी के सूखे से शब्द हैं जिनका महत्व केवल इस रहस्य में है जो शब्दातीत होते हुये भी अपनी महीन सी छाया पीछे छोड़ गये हैं। बिट्टी बब्बू को याद दिलाती है........... "बब्बू, याद है तुमने कहा था, अगली गर्मियों में शिमला चलेंगे। ....संग पहाड़ी पर चढ़ते हुये घुर चारती तक जायेंगे वहां जहां रुई के गालों से बादल उड़ते हैं।[2]

इन शब्दों को सुनकर बब्बू अजीब सा अज्ञात विस्मय लिये आंखें फाड़कर ही रह जाता है।

1- वे दिन, पृष्ठ 138 2- परिन्दे, पृष्ठ 29

कमरे के बुझते मैले प्रकाश में उनकी केवल सांस का प्रकम्पित स्वर शराबी के पैरों सा लड़खड़ता दृष्टिगत होता है।

वह सोचने लगता है कि बिट्टो को आखिर हो क्या गया है।

वह एक चित्रित चमत्कार को उद्‌घाटित क्यों करती है। बिट्टो के शब्दातीत हो जाने पर आज वही बब्बू डायरी के पन्नों को लेकर टेढ़ेमेढ़े अक्षरों को पढ़ रहा है जो अब पुराना और पीला पड़ गया है।

याद करने पर बिट्टो से जुड़ी कुछ बातें और कुछ घटनायें याद आती हैं।

वह सोचता है कि कुछ दिन, कुछ घड़ियां बिखेर से क्षण जो उसने और बिट्टो ने एक संग जिये थे, शेष रह गये हैं।

इसीलिए उन अक्षरों में उसे खोजने की चेष्टा करना व्यर्थ है।

लेखक ने बब्बू के उस मन के कोने पर छितरायी हुयी याद को देखा है जिसके भीतर स्मृति का लावा भीतर ही भीतर घुल रहा है।

सारा परिवेश अजीब मुतैली सी थकी-थकी चांदनी में गल रहा है।

बिट्टो इतनी संज्ञाहीन नहीं है जितना कि बब्बू शून्य बन गया है।

इस जटिल मनःस्थिति का प्रकाशन करता हुआ कहानीकार यह सिद्ध कर देना चाहता है कि आज हर व्यक्ति अतीत के गड्ढे में रेत के धूमिल दूह को समेटे हुये है।

निर्मल की अधिकांश कहानियां जीवनगत सत्रांस से घिरी हुयी हैं।

''लंदन की एक रात'' में सत्रांस बेकारी का है। 'परिन्दे' का डा. दूसरे प्रकार का अस्याववादी सत्रांस रखता है।

'देहलीज' की रुनी यौवन के प्रथम यौनाकर्षण और पराजय के कारण मृत्यु की कामना करती है 'अंधेरे में' बच्ची का अन्धविश्वास है जिनके कान छोटे होते हैं वे जल्दी मर जाते हैं।

''सितम्बर की एक शाम'' में बेकारी और भूख का सत्रांस है।

इसी प्रकार ''अमालिया'', ''जलती झाड़ी'', ''माया दर्पण'' आदि कहानियां भी तरह-तरह की सत्रांस भोग रही 'अन्तर' कहानी का नायक परिवेशगत सत्रांस से दुखी है दहलीज के शम्मी भाई अतीत के सत्रांस से चिपटे हुये हैं। देखें...........''आज इतने बरसों बाद भी जब उसे शम्मी भाई के दिये कुछ अजीब गरीब नाम याद आते हैं तो हंसी आये बिना नहीं रहती।

उनकी नौकरानी मेहरू के नाम को चार चांद लगाकर शम्मी भाई पर उसे कब सर्दियों पहले की सुकुमार शहजादी मेहरुन्निसा बना दिया है कोई नहीं जानता।''[1]

शम्मी भाई बड़े ही विस्मय के प्राणी हैं।

उनके द्वारा दिये गये नाम पहले वर्षों बाद भी, लान की घास और बंगले से लिपटी बेल लताओं की तरह चिन्तन और अमर हैं।

उनके और नेहरू के बीच जान पहचान इतनी पुरानी है कि अपने पराये का अन्तर बीच में नहीं फटकता।

शम्मी भाई की यह अजीब सी मायावी रहस्यवादिता बहुत ही झिलमिल और स्वपनवत है।

यद्यपि उनकी जटिल मानसिकता ने एक डरावनी गंध फैला रखी है जिससे उनके शरीर की

1- जलती झाड़ी, पृष्ठ 89

एक-एक गांठ खुलती जा रही है, मन रुक जाता है धड़कने बढ़ जाती हैं और सारे संज्ञा रूप सुनकर सिर चकराने लगता है। फिर भी इन सबके बावजूद शम्मी भाई की ऐसी कुछ जटिल विशेषता है जिससे उनको सुनकर मीठी-मीठी सुहया चूमने लगती है और मेहरुन्निशा के मन का उत्साह बढ़ाने लगती है।

कहानीकार इसी प्रकार इतनी बड़ी आकांक्षा में टेलीविजन के जासूसी ड्रामे द्वारा सत्रांस के अनुभूति को गहराता है जिसमें नंगी गली में मांग रही अकेली छोटी लड़की होती है।

एक शुरुआत का पात्र इतनी जटिल मानसिकता को ओढ़ लेता है कि वह बेल्जियम के सेनिटोरियम में रहते-रहते इतना अधिक अभ्यस्त हो गया है कि हर बार घर के लिये चैनल पार करते हुये उसे लगता है यह उसका आखिरी बार जाना है उसके मन की निराशा इतनी अधिक सत्रांस बना देती है कि वह सोच ही नहीं पाता है कि आदमी जीता क्यों है इसी प्रकार 'कुत्ते की मौत' में लूसी रात के समय मृत्यु और पीड़ा से चिल्लाती रहती है।

'लवर्स' में पतझड़ की शाम के कहानी के नायक को एकदम बदल दिया है।

'धूप का एक टुकड़ा' कहानी के स्त्री पात्र तो बहुत ही विचित्र मनःस्थिति में जी रहे हैं।

वह धूप के खातिर एक बैंच पर आकर बैठ जाती है और अपने विवाह से अनुरूप ही सूनी आंखों से उस गिरजे को ताकती रहती है जहां से लोग जिन्दगी की शुरुआत करते हैं।

वह कहती है...............''कभी-कभी तो यह भ्रम होता है कि 15 साल पहले मेरे विवाह के मौके पर जो लोग जमा हुये थे, वही लोग आज भी हैं,

................मेरा विवाह भी इसी गिरजे में हुआ था ....सड़क के दोनों तरफ लोग खड़े थे और मेरा दिल धुक-धुक कर रहा था कि वहीं सबके सामने मेरा पांव न फिसल पड़े।''[1]

यह स्त्री परम्परा पर एक बहुत बड़ा व्यंग करती हुयी परम्परावादी जटिल मानसिकता को उभाड़ती है और कहने लगती है कि आदमियों की बात तो मैं नहीं जानती लेकिन मैं कह सकती हूं कि वह घोड़ा मुझे जरूर पहचान लेगा जो उस दिन हमें खींच कर लाया था।

आदमी तो अलगाववादी हो गये हैं। इसलिए इस धूप के टुकड़े से मुझे लगाव है

जब हम किसी चीज को बहुत चाहने लगते हैं तो नव केवल वर्तमान में उसके साथ रहना चाहते हैं, बल्कि उसके अतीत को निगलना चाहते हैं जो कभी हमारे साथ रहा था। वह स्त्री भीतर ही भीतर इतनी जटिल मानसिकता की शिकार हो गयी कि बरसों पहले की गूंज उसके अंगों से लिपटकर उसकी आत्मा में बैठ गयी है। वह उसी तरह गिरजेघर को आंखों से टोहती है, जैसे कुछ लोग पुराने खण्डहरों पर अपने नाम खोजते हैं जो मुद्दत पहले उन्होंने दीवारों पर लिखे थे।

मन का यह व्यग्र रूप अतीतजीवी जटिल मानसिकता उदाहरण है।

ऐसे बहुत सारे उदाहरण निर्मल की अन्य कहानियों में भी देखने को मिलेंगे।

अमृत राय ने ऐसी जटिल मानसिकता का संत्रास प्रकट करते हुये एक जगह लिखा है----------''संत्रांस एकांत, भय की स्थिति है, सुन्न हो जाने की स्थिति है,

दिशाहारा होकर प्राण भय से कहीं किसी कोने में छिपकर बैठने की स्थिति है।''[2]

दरअसल आज का लेखक जीवनगत जटिल मानसिकता की कहानी लिख रहा है। पहले लेखक का कहानी से पड़ोसी या दोस्त का रिश्ता था लेकिन अब वह जीवन के उस आयाम को

1- कौवे और काला पानी, पृष्ठ 12   2- नई कहानियां- दिसम्बर 1968

पढ़ना चाहता है जिसमें व्यक्ति की प्राकृतिक मौत ना होकर मानसिक मौत हो चुकी है।

प्राकृतिक मौत तो अनिवार्य होती है जिसका डर प्रायः किसी को नहीं होता लेकिन दूसरे प्रकार की मौत जिसे मानसिक मौत कहा जाता है, आज की पीढ़ी उस मौत को वरण करती जा रही है।

इसी मौत के कारण आधुनिक पीढ़ी सत्रांस और यातना का अनुभव कर रही है जिससे वह बेहूदी जिन्दगी व्यतीत करने के लिये मजबूर है।

जीवन का सम्बन्ध केवल कल्पना और भयप्रद है। मनुष्य-मनुष्य के बीच संदेह ने स्थायित्व पैदा कर दिया है।

प्यार, सद्भाव तो तीखे कांटे की तरह चुभने लगा है।

आज का व्यक्ति मृत्यु भय से आधुनिकता बोधीय चौखटों में जचकड़ गया है, ना उसके जीवन में उत्साह है न उल्लास, फिर जीने की भरपूर लालसा के कारण वह प्रणय निवेदन का ढोंग करता है। श्रीपत राय ने निर्मल की 'अंतर और धागे' कहानी पढ़कर व्यक्ति के व्यक्ति से सम्बन्धों के स्तर पर यही बात दोहरायी थी। उनका कहना है कि ''संत्रांस नयी संवेदना से प्राप्त ऐसा कसैला विष है जो व्यक्ति को आहत करता है, मूर्छित करता है, और हतसंज्ञ भी करता है।

यही आहट, मूर्छित और हतसंज्ञ व्यक्ति निर्मल की ''धागे'' कहानी में मिलता है।''[1]

इस कहानी के पति के. सी. को रिकार्डों के कारण रात भर नींद नहीं आती इसलिए उसने ग्रामोफोन लाइब्रेरी में रखवा दिया है।

मीनू को पति का पीना अच्छा नहीं लगता और के. सी. पिये बिना नहीं रह सकता।

इसलिए के. सी. की आंखें भावहीन पथरीली हो गयी हैं। सम्बन्धों की टूटन ने उन्हें अलग-अलग कर दिया है, देखें.......... ''मुझे तो रात को नींद नहीं आती ....के. सी. दूसरे कमरे में है.........मीनू ने दरवाजा खोलकर पर्दा उठा दिया।

बरामदे के परे लान अंधेरे में डूबा था।

एक अपरिचित धनी-सी शान्ति सारे अहाते में फैली थी।''[2]

'खोज' में एक वर्ष पश्चात बड़ी बहन छोटी बहन के यहां लौटती है और वह छोटी बहन से पूछती है कि क्या तुम हर रात इन चीजों के बीच सो सकती हो, जो कभी दूसरे की थी। पुतुल जिस बिस्तर पर सोता था, वहां एक बाल पड़ा है और यहां से ही मन की जटिलता शुरू होती है।

उन्हें लगता है कि उनके सामने सांप का स्तब्ध फन खड़ा है।

जरा सा हिलने से पलंग चरमराता है और दोनों बहिनें चौंक पड़ती हैं। हवा के थपेड़े दरवाजा खटखटाकर उन्हें संत्रस्त कर देते हैं और बिन्नो झपट कर बड़ी बहन का हाथ पकड़ लेती है। जटिल मानसिकता अनिष्ट की आशंका से उद्भूत भावनाओं का संकोचन है, जो आत्मनिष्ठता में घुमड़न, तनाव, भय और असंतोष सहेजे है।

मूलतः मानव अस्तित्व को प्रत्येक क्षण चुनौती देता, अस्तित्व भय ही सत्रांस की स्थिति का मूल कारण है।

यह संत्रांस व्यक्ति के अंतर के सूक्ष्म पटों को बेधता हुआ उसे विक्षिप्त, संवेदन शून्य, जड़ एवं निसंग करता जा रहा है। इसके मूल में पूंजी, संगठन तथा युद्ध जनित आर्थिक-सामाजिक-राजनैतिक पहलू ही नहीं बल्कि यांत्रिकी और परिवेश सापेक्ष भविष्य की अनिश्चितता भी है यही

1- विकल नवम्बर, 1968 2- पिछली गर्मियों में, पृष्ठ 9

व्यक्ति के चारों ओर मंडराने वाला ऐसा संकट है जिसे मानसिक जटिलता के नाम से जाना जाता है।

योगेन्द्र शाही ने सत्रांस ओर आज के अस्तित्व पर विचार करते हुये लिखा है कि .... "संत्रांस भय नहीं है, बल्कि निश्चित विपद की आशंका से भी दूर की चीज है।

भय से, बीमारी, बेकारी से बचाव किया जा सकता है लेकिन सत्रांस तो ऐसा भाव है जो हमें चारों ओर से घेरता है इसका ना बचाव है ओर न छिपाव।"[1]

वस्तुतः सत्रांत में सुखद के बीच एक परदा पड़ जाता है।

एकाकीपन घर लेता है और लगता है कि अंजान और संप्रवत वस्तुओं ने उसे घेर लिया है।

निर्मल की अनेक कहानियां इस मानवीय नियति का पर्दाफाश करती है। आज की जटिल मानसिकता को ढोने वाली इन कहानियों में बहुत कुछ यथार्थ बोध किया जा सकता है।

"छुट्टियों के बाद" और "वीक एण्ड" की नायिकायें देह की चाहना में डूबकर अपनी जटिल मानसिकता को नया रूप दे रही हैं।

"अमालिया" का नायक अजनबी शहर के अंधेरे में सीलन भरे बिस्तरों की दुर्गंध को झेल रहा है।

"पराये शहर में" वैश्याओं की दरिद्रता पर एक जटिल मानसिक पथराया हुआ भावहीन प्रभाव है।

व्यक्ति जब तक पुराने संसार में नहीं लौट पाता तब-तब वह नये संसार को गढ़ता चला जाता है।

जिन्दगी के हाथों से फिसलने एवं स्वतन्त्र चयन के निषेध ने व्यक्ति को अनीत, वर्तमान एवं भविष्य की शून्यता प्रदान की है।

बेकारी, बुढ़ापा, रूढ़ता, प्रेम आदि भिन्न स्थितियों ने मनुष्य के जीवन को दुरुह बना दिया है। "माया दर्पण" की तरन बुआ की आंखों से ओझल हो जाना चाहती है।

वह दीवान साहब की छाया को भी अब कसैले रसं जैसे स्वाद में महसूसती है।

वह सोचती है कि उसके मन की रूखी सी रिक्तिता बुआ जी और बाबू जी के मध्य विरक्ति का कारण बनी है। कहानीकार कहता है कि---"आज भी तरन जब उस रात की घटना पर सोचती है, तो सारी देह में झुरझुरी सी दौड़ जाती है।"[2]

तरन की यह जटिल मानसिकता आंखें फाड़ते हुये अंधेरे में धुयें की काली छाया देखती रहती है।

उसके स्वर में एक अजीब सा खोखलापन उभर आता है और उसकी समझ में नहीं आता कि उसे क्या करना चाहिये, क्या नहीं।

उससे सब कुछ कितना दूर होता चला जा रहा है जिसे वर्षों से अपना कहती रही है।

तरन के दिल और दिमाग में वर्तमान की मटियाली धूप की तरह जम गयी है। इसलिए वह अपने जीवन की ऊंची नीची रेखाओं को साफ-साफ नहीं देख पाती।

चेहरे की असंख्य उदास झुर्रियां यह सब बता देने में असमर्थ हैं कि तरन दूर-दूर तक फीकी सी चांदनी की लय मात्र रह गयी है।

1- अस्तित्ववाद, पृष्ठ 82 2- जलती झाड़ी, पृष्ठ 31

उसके मन में एक भयावह विचार रेंगता रहता है।

कहानीकार वर्मा ने ऐसे ही सन्नाटे में सिहरते पात्रों को बहुत कुछ समाकलित किया है।

'बीच बहस में' बाप बेटे की बातचीत भी जटिल मानसिकता का प्रतीक है।

अजनबीपन और नियति पर विचार करते हुये निर्मल ने रुमानियंत को भी जटिल मानसिकता के साथ ही आड़े हाथों लिया है।

''अन्तर'' कहानी के सभी पात्र शराब पीते हैं। ''खोज'' लड़की पात्र विहस्की पीती है। ''अमालिया'' का अरब पीने के बाद सीटी बजाता है। यह सब जटिल मानसिकता शराब पीने के बाद यौन आमंत्रण का परिचायक है, जिसे हम किसी उजाड़ सूने व्यक्तित्व में भली भांति देख सकते हैं।

(छ)- अंग्रेजी वाक्य विन्यास का प्रभाव :-

कथ्यगत विदेशी प्रभाव निर्मल के रुमानी कहानीकार का स्वरुप पारंपरिक रुमानियत से भिन्न कर देता है। और उसी तथ्य के अनुरुप ही भाषागत विदेशी प्रभाव कहानीकार के स्वरुप का अलग ही चित्रण करता है।

निर्मल पर पड़े विदेशी प्रभाव भाषागत एवं कथ्यगत स्तरों को देखते हुये दो प्रकार के हैं।

पहला वह जिनमें उसने विदेशी विचारकों का जैसे किर्क गार्द, नित्से, कोक्का, सात्र, कामु आदि का वैचारिक स्तर का प्रभाव है जिसे अभिव्यक्ति देने के लिये अंग्रेजी वाक्य विन्यासा का प्रश्य ग्रहण करना ही पड़ता है और दूसरा उस स्तर का प्रभाव है जिसमें लेखक की पृष्ठभूमि सारी विदेशी ही रही है।

डा. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय निर्मल की गणना उन भारतीय लेखकों में करते हैं जो अपनी प्रेरणा के श्रोत विदेशों में खोजते हैं भारतीय जीवन पद्धति जिनके लिये नगण्य एवं उपेक्षणीय है। तथा जिन्हें अपने को भारतीय कहने में संकोच होता है, क्योंकि भारतीय लोग प्रागवासियों की तरह आधुनिक नहीं हैं।[1]

और लगता है कि गणपति चन्द्र गुप्त भी अंग्रेजी वाक्य विन्यास के प्रभाव के कारण निर्मल को प्रवासीय लेखक ही समझ पाते हैं। इसीलिए उन्होंने परोक्ष रुप से यह कहा है, ...''विषय वस्तु की दृष्टि से तथाकथित नयी कहानी एक ऐसे वर्ग के कहानीकारों के व्यक्तित्व, चरित्र एवं जीवन दर्शन का प्रतिनिधित्व करती है।

.... जिनका आदर्श सम्त और कामु है, जो रहते हैं भारत में किन्तु ''लन्दन की एक रात'' या पेरिस के मध्याह्न का लेते हैं।''[2]

कुछ भी हो निर्मल ने सहज मानवीय अभिव्यक्ति जनभाषा के माध्यम से की है। जिसमें अंग्रेजी भी है, फारसी भी है और हिन्दी तो है ही। उनका कथ्यानुरुप गति को अपनाने में सिद्ध रहा है। इसीलिए अंग्रेजी का पुट जिसमें अन्तर्राष्ट्रीय प्रवृत्ति का द्योतक है तथा फारसी शब्दावली हिन्दुस्तानी की प्रतिछाया को ग्रहीत करता है और हिन्दी के जनसामान्य शब्द उन अर्थगर्भित

1- आधुनिक हिन्दी कहानी का परिपार्श्व, पृष्ठ 143

2- हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास, पृष्ठ 951

भावनाओं को उड़ेलते हैं जिनमें चेतन प्रवाह बहुत ही पारदर्शी रूप से प्रकट होता चला है।

इन मान्यताओं के घेरे में हम कह सकते हैं कि निर्मल का भाषा सम्बन्धी कोई एक भाषा के प्रति पूर्वाग्रह नहीं था।

उन्होंने तो अभूतभावों को मूर्तिरूप में प्रगट करने के लिये किसी भी भाषा से कहलवा ही दिया है।

कथ्य के अनुरूप भाषा के प्रयोग से अनुभूति और भाषा की अभिन्नता स्पष्ट होती गयी है।

उन्होंने यदि कहीं भी शुद्धतावादी आग्रह छोड़ा भी है तो इसलिए शब्दों को एक कृत्रिम अर्थवक्ता देने की बजाय जनसामान्य बनाने के लिये।

उन्होंने बहुत सारे चलते फिरते शब्दों को विन्यस्त करते हुये जमीन के आदमी से जोड़ा है।

जब कभी हम उनके भाषा सम्बन्धी प्रयोग धर्म पर विचार करते हैं तो एक ही बार धौधती है, कि वे कथ्य पर जोर देते हुये भाषा से बरबस कहलवा ही लिया करते थे।

अंग्रेजी वाक्य विन्यास का प्रयोग उनकी दृष्टि में आज की आधुनिकता से सटा हुआ है। उसे वे कैसे छोड़ सकते थे। क्योंकि उन्होंने तो उन्हीं भावों के दीप जलाना मंजूर किया था जिसमें परिवेश और परिस्थिति का आंकलन था।

निर्मल के उपन्यासों में अंग्रेजी वाक्य विन्यास का सीधा तो नहीं लेकिन परोक्ष रूप से बहुत कुछ प्रयोग है।

"वे दिन" उपन्यास में क्रिसमस टूरिस्ट के बारे में सोचते हुये एक जगह लिखा है...........

"क्यचा तुम इण्टरपरेट कर सकती हो- वैक से अंग्रेजी में?"

"क्या वे अंग्रेज हैं"

नहीं ....हैं तो आस्टियन, लेकिन उन्हें तो काम चलाऊ अंग्रेजी आती है। तुम्हें मुश्किल नहीं पड़ेगी।"

"मुझे इसका कोई अनुभव नहीं है," मैंने कहा।

"नहीं है, तो हो जायेगा..........वैसे ज्यादा काम इण्टरप्रेटेशन का नहीं है तुम्हें कुछ दिन उनके साथ रहना होगा।"[1]

इस उदाहरण में दो बातें स्पष्ट हैं पहली यह कि चैक से अंग्रेजी में व्याख्या कराने की अनिवार्यता पर अहसास कराया गया है और दूसरी वह जिसमें अंग्रेजी शब्द का बेहतरीन प्रयोग है, जैसे इण्टरप्रेट।

वस्तुतः यह सब अपने आप में कुछ वजनदार हैं, आकर्षक हैं, गम्भीर हैं, मनःस्थिति का परिचायक है।

व्यक्ति रहस्य का प्रकाश है और परस्पर मिलने जुलने का साधन साध्य भी है।

कथाकार भाषागत विवाद में न पड़कर सिर्फ दूरी को बांधे जाने वाली आत्मीयता का हिमायती है जो इण्टरप्रटेशन के माध्यम से एक रूप हो सकती है।

टूरिस्टों के साथ इण्टरप्रटेशन की सम्भावना से इंकार नहीं किया जा सकता है।

यदि इस शब्द के स्थान पर कोई अन्य शब्द का प्रयोग कथाकार करता है तो निश्चित मानिये उसका प्रभाव यह न होता। जो "वे दिन" उपन्यास के पूर्वार्द्ध भाग में कथ्यानुरूप चिंतन को आगे

1- वे दिन, पृष्ठ 15

बढ़ाने में हुआ है। कथाकार अंग्रेजी का समर्थक नहीं है वह परिवेशगत या परिस्थितियों जनित मनःस्थिति का अध्येता है। इसी तथ्य को इसी उपन्यास में उसने कह भी दिया है,................"सो इट इज फिक्सड।

अंग्रेजी बोलने का मौका वह हाथ से नहीं जाने देता था...........युद्ध के दौरान वह लंदन में रहा था।"[1]

उपन्यासकार ने आदमी की करीबी जमीन को तोड़कर उन निरंतर मंडराते भावों का परिशीलन किया है जिनमें निजता की पकड़ है और आगे-पीछे की परछाइयां हैं।

अंग्रेजी के दिलचस्प प्रयोग से वह स्कालर का दावा नहीं करता बल्कि उस कथ्यानुरूप चिंतन को आत्मसात करता है जिसमें शब्दों का संत्रास वेग व्यक्ति के पीछे पड़ा हुआ है।

"एक चिथड़ा सुख" उपन्यास में कथानक का धरातल कितना ही क्यों न भारतीय हो, फिर भी बिट्टी जैसे पात्र के तल्लीन मन को अंग्रेजी वाक्य ने सस्पर्श करके उसके अंदर की गहराई को उछाल ही दिया है, देखें......... "विल यू लैट मी गो"

किससे पूछ रही है- कौन है वहां? क्या यह उसका पार्ट है, रिहर्सल का एक टुकड़ा?"[2]

दरअसल परिवेश की सारी जिज्ञासा अंग्रेजी के हीं एक वाक्य में उभरकर सामने आ गयी है। बिट्टी का अंदर का सारा इजहार आइना बनकर प्रतिबिम्बित हो गया है। वह स्तब्ध भावों से घनी अनुभूति को हथेली पर रखकर मानो सब कुछ दिखा देना चाहती है।

इस वाक्य ने उसकी अभिव्यक्ति को डबडबाते हुए सूरज की छाया की तरह कुछ आभास दिला दिया है, बल्कि यूं कहें कि इस चमकीली फुसफुसाहट ने उसके चेहरे को सहला दिया है। इसीलिये उस परिवेश में उसका माथा चमक रहा था, चेहरे पर एक पीली सी शान्ति थी और एक तन्मय सी तल्लीनता जो किसी अदृश्य आवाज को सुनने में उखड़ आयी थी। भले ही वह अपने से बोल रही थी, लेकिन यह बोलना भी किसी से आदेश की कामना व्यक्त करता है। पेड़, घास, झाड़ियां सभी तो हैं। इसीलिये व्यक्ति के बाहर की दुनियां भी वक्ता को अपनी भीतर से कुछ उगलवा लेने के लिये मजबूर करती है। बिट्टी इसी तथ्य को आगे स्पष्ट कर देती है--"हम अभी आते हैं.....सिर्फ लास्ट ऐक्ट बाकी है।" बिट्टी ने कहा।[3]

"लाल टीन की छत" उपन्यास का एक परिवेशात्मक चित्र अंग्रेजी वाक्य प्रयोग से कितना कुछ पारदर्शी बन जाता है।

देखें......"अचानक पांव ठिठक गये।

रास्ता बंट गया था..........एक ऊपर को जाता था, दूसरा नीचे, बीच में एक पुराना घिसा-पिटा बोर्ड लगा था.......टू दा फाल्स" पता नहीं किस तरह इशारा करता था?"[4]

उपन्यासकार निर्मल ने नगरों, महानगरों, देश-विदेश के सांस्कृतिक स्थलों में रहने वाले वासियों और प्रवासियों का निरूपण करने में अंग्रेजी वाक्य का ही प्रश्रय ग्रहण किया है। अंग्रेजीकरण की प्रक्रिया से परिवेश का उभरा हुआ स्वरूप पाठक के मन-मस्तिष्क पर एक बार में ही बिम्ब बना देता है। कथाकार की भाषा का यह प्रयोग इस तथ्य को सूचित करता है कि वह हिन्दी और हिन्दुस्तानी के विवाद से ऊपर उठकर अंतर्राष्ट्रीय वैचारिक अवधारणा को समेटने में

1- वही, पृष्ठ 16
2- एक चिथड़ा सुख, पृष्ठ 78
3- वही, पृष्ठ 79
4- लाल टीन की छत, पृष्ठ 170

सिद्ध है इसीलिए उनके छोटे-छोटे अंग्रेजी के वाक्य जहां एक ओर परिवेश धर्म का इजहार करते हैं वहीं दूसरी ओर मन पर जमी उन परतों को उखाड़ते हैं जिनसे पद-पदार्थ का सम्बन्ध भलीभांति पहचाना जा सकता है।

दरअसल आज जरूरत इस बात की है कि भाषा वह प्रयोग में लायी जाये जिसमें सम्प्रेषणीयता हो।

बार-बार इस तथ्य को नकार कर कृत्रिमता से बोझिल भाषा को अपनाने वाले लेखक जन-जन के बीच दूरी कायम कर देते हैं।

निर्मल इस बात से बहुत सजग हैं इसीलिए उन्होंने पात्रगत चरित्र एवं परिवेशगत चित्रण दोनों को ही ऐसी मिट्टी से मूर्तमान किया है, जिसमें अपनी गंध है, अपनी सोच है और अपनी सौन्दर्य है। यह बात बहुत चरितार्थ है कि व्यक्ति की अपनी मौलिक सोच चलती-फिरती निजी भाषा में ही उद्भाषित कर पाता है फिर चाहे वह अंग्रेजी हो या हिन्दी।

भाषा का अभिव्यक्ति जनित स्वरूप तभी चिंतन को नये आयाम प्रदान करता है जब उससे आकांक्षा और आसती हो। यदि किसी वाक्य विन्यास को आश्रित रहित प्रयोग में लाया जाये तो न उसकी सार्थकता ही है और न सफलता। निर्मल अपनी इस दृष्टि से अपने तीनों उपन्यासों में बहुत सफल रहे। उनकी सुधात्मक भाषा अंग्रेजी के वाक्यों में इस तरह पिरोयी गयी है कि उसे कथ्य और कथ्यगत आवरण में अलग-अलग नहीं देखा जा सकता।

छोटे-छोटे अंग्रेजी के वाक्य इसीलिए उनके उपन्यासकार के मर्म और अनुभूत सत्य को उजागर करते हैं। निर्मल की कहानियों में अंग्रेजी भाषा के वैज्ञानिक अनुशीलन को हम अध्ययन की सुविधा के लिए पांच आयाम दे सकते हैं।

1- अंग्रेजी शब्दों का उपयोग

2- अंग्रेजी वाक्यों का प्रयोग

3- अंग्रेजी गीतों का प्रयोग

4- हिन्दी वाक्यों का अंग्रेजीकरण

5- अंग्रेजी शब्दों का हिन्दीकरण

अंग्रेजी शब्द उनकी कहानियों में नगरों के नामों, पात्रों के नामों और पद पदार्थों के नामों में प्रयुक्त हुए हैं। जैसे----प्राग, बैनेस, जर्मन, बांसल, बर्लिन, स्क्वायर, पब, बार, टैरिस, कारीडोर, पवेलियन, चैनल, सिमट्री, स्टीमर, आर्केस्टा, रेस्तरां, चैपल, पोर्च, सैण्डविच, लाइब्रेरी, मेट्रन, किण्डरगार्टन, लेन, मेनगेट, स्क्रोच, कैण्टीन, ड्राइवर, कालरबोन, सैण्डविचेज, वर्जिन, पिक्चर, एयर कंडीशन, पोस्टर, कम्पटीशन, ओवरएज, वैकेन्सीज, आफर, एफेयर, गिलेल, टाइम्स, लवर्स, ब्रदर्स, कनाट प्लेस, एविरियस, यूनीवर्सिटी, जैवर्स, ब्लीयर्ड, टेबिल लैम्पट आदि।

कहानीकार ने अंग्रेजी शब्दों को जहां एक ओर गद्य शैली में अपनाया है वहीं दूसरी ओर अंगरेजी के वाक्य पूरी तरह से अभिव्यंजना में प्रयुक्त किये हैं।

"हाऊ बण्डरफुल सीडी! निक्की ने हंसते हुए सीडी के कंधे झिझोड़ दिये।

सीडी लैट अस सैलीब्रेट टुनाईट।"[1]

+ +

1- परिन्दे, पृष्ठ 109

"इन ए वैक लेन ऑफ ट सिटी, देयर इज ए गर्ल, हू लव्ज मी,............ह्यूवर्ट हिचकियों के बीच गुनगुना उठता था।"[1]

+ +

"मे वी..........ए गिफ्ट।

उसकी आवाज एकदम तरल सी हो आयी थी।..........जैसे घूंट के साथ भीतर की कोई कड़ी पथरीली चीज घुल जाती हो।"[2]

वाट विल यू हैव, सनी?

....

ओ शट अप!

वॉन्ट यू सिट डाउन?"[3]

कहानीकार ने बहुत सारे अंग्रेजी के वाक्य पात्रों की मनःस्थिति के अनुरूप जगह-जगह अभिव्यक्त किये हैं। जैसे 'परिन्दे' कहानी में..........ज़ीसस सैड, आई एम दा लाइन ऑफ दा वर्ड, ही दैट फालो एट मी शैल नोट बॉक इन डार्कनेस, बट, शैल ही हैंव दा लाइट ऑफ लाइफ........................।

"एक शुरुआत" में- देयर इज डैथ इन इयर आल एराउण्ड.................टेरर-टेरर ऑफ एन लाइटमैंट।

"बीच बहस में"- आई एम ब्रेथलैस

...............लुक डोन्ट रन। माई ब्रेथ। इट इज रनिंग आउट............इट इन कम्स एण्ड गोज।

इन ढेर सारे वाक्यों में कहानीकार उन जीवनगत अनुभवों को व्यक्त करना चाहता है जिनमें धरती की सौंधी गंध है वातावरण की संसलिष्टी और व्यस्त जीवन की अन्तःतलाश है।

वस्तुतः विचारधारा और साहित्य का अंतःसंबंध भाषा के परिधान से प्रकट होता चलता है।

पात्रगत विभिन्न छवियों, विभिन्न मुद्रायें और विभिन्न रंग उपयुक्त अंग्रेजी के वाक्यों में भिन्न-भिन्न पहलुओं को समाहित किये हुए हैं। आज अनुभव के लिए किसी खास भाषा की तलाश नहीं होती बल्कि उपयुक्त उदाहरणों में पात्रों ने स्वयं के अनुभवों से अपने अनुरूप भाषा को साधन मान लिया है।

वर्मा ऐसे कहानीकार हैं जिन्होंने भावानुकूल और जीवन परक सूत्रों में भाषा को विराम चिन्ह दिये हैं।

इसीलिए यत्र-तत्र अंग्रेजी के छिटके हुए वाक्य यह स्पष्ट करते हैं कि अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर व्यक्ति के मन में उपजा हुआ विचार तात्काली किसी की भाषा को पकड़कर प्रकट हो सकता है। निर्मल की ढेर सारी कहानियां इसीलिए व्यक्ति के इतने निकट आ गयी हैं, क्योंकि उनमें बनावटीपन छूटता चला गया है, यद्यपि फालतू ब्यौरे से बचते हुए उन्होंने सहज सपाट भाषा को कहीं-कहीं अकारण ही अंग्रेजी वाक्यों में गूंथ दिया है। उपर्युक्त उदाहरणों में यह तथ्य भी झलकता है। कहीं-कहीं भाषा का रूखापन भी इतना अधिक ही बिखर गया है। जहां प्लीज-प्लीज-प्लीज कहकर पात्रगत मन सापेक्ष सौन्दर्य को दया की पात्रता ही प्रदान कर दी है।

1- मेरी प्रिय कहानियां, पृष्ठ 57

2- पिछली गर्मियों में, पृष्ठ 55

3- जलती झाड़ी, पृष्ठ 15

एक बात और अनुशीलन करने योग्य है कि उन्होंने कहानियों के नाम बड़ी ही विचित्र शब्दावली में प्रयुक्त करके भाषा का सुनहरा रंग भरकर अंग्रेजियत का परिचय दिया है। जैसे ''लवर्स'', ''वीक एण्ड'', ''पिक्चर पोस्टकार्ड'' आदि।

इन कहानी शीर्षकों से पाठकों के मन पर एक वाक्य क्या सारी शैलीगत विनयस्तता उभर तो आती है लेकिन आज भी सारा पाठक वर्ग लवर्स, वीक एण्ड शब्दों से नहीं जुड़ा है।

इसलिए उनकी बहुत सारी कहानियां कहीं-कहीं जन सामान्य से कुछ हटती हुयी जान पड़ती हैं।

अंग्रेजी वाक्य विन्यास का जहां निर्मल वर्मा ने अपनी कहानियों में प्रयोग धर्म का निर्वाह किया है, वहां अंग्रेजी गीत भी कहानियों में यत्र-तत्र देखने को मिल जाते हैं। जैसे............

''थ्री काइंज इन दा फाउण्टेन''............मैंने कहा।

आज वह रिकार्ड बजाओगे?'' उसने कहा?[1]

----- ------

कमरे में चाय की दुकान जाते हुए, ग्रामोफोन पर रिकार्ड सुने थे वह सड़क के बीचोंबीच ठिठक कर खड़ा हो गया................''वाई डॉन्ट यू बिलीव मी, आई लव यू सो मच।''[2]

प्लस प्लस

''इन ए बैक लेन ऑफ द सिटी, देयर इज ए गर्ल हू लव्ज मी''.........ह्यूबर्ट हिचकियों के बीच गुनगुना उठता था।''[3]

निर्मल इसी प्रकार हिन्दी से अंगरेजी और अंग्रेजी से हिन्दीकरण में भी विशेष आस्था बनाये हैं।

उन्होंने आज की भाषा की पहचान करते हुए परिवेश की तीखी सच्चाइयों को व्यक्त किया है।

इसीलिए उनकी भाषा प्रतीकात्मक बिम्बात्मक होने के साथ ही स्वाभाविक रही है।

निर्मल का कहानी पात्र, घर, नगर, देश से बिछड़कर प्रवासीय अनुभूतियों को भोगता रहा है। लम्बे अरसे तक अजनबी शहरों की गलियों में घूमने के कारण उसकी भाषा में बदलाव आया है, और यह बदलाव मुख्यतः अंग्रेजी वाक्य में फूट पड़ा है। उनका व्यक्ति निर्वासित होकर अकेलापन, अजनबीपन और अपरिचय के साथ-साथ जगह-जगह भटका हुआ है इसीलिए उसकी मानसिकता में भाषागत सहमा सा सन्नाटा है और अन्य देशों के बीच कांपता हुआ स्वर है।

जीवनगत टेढ़ी-मेढ़ी छायायें सच्चे मायनों में भाषा की बदलती आकांक्षा से ही प्रकट हो सकती हैं। निर्मल को हर ओर अनुभूत सत्य के तीखे कांटे ही नजर आते हैं। आधुनिक युग के तीव्र घटना संकुल जीवन में अंग्रेजी के चौखटे में कसा हुआ वाक्य ही काम का हो सकता है।

इस दृष्टि से कहानीकार ने पात्रगत उस भावना का इजहार किया है जिसे वह प्रत्येक क्षण जीता रहा है। उनकी भाषा भले ही वस्तुओं के अतिवादी दर्शन में जुट गयी हो फिर भी वह मौन रागात्मकता और बुद्धि दोनों से ही जुड़ी हुयी है। भावुकता के अतिरेक को कम करने के लिए निर्मल समय का अन्तराल डाल देते हैं।

उन्होंने अतीत से चिपकने का सदैव विरोध किया है। अंग्रेजी वाक्य के इस प्रयोग ने इस

1- परिन्दे, पृष्ठ 107

2- परिन्दे, पृष्ठ 111

3- मेरी प्रिय कहानियां, पृष्ठ 57

रहस्य भावना का अभिव्यंजन किया है- ''लैट द डैंड डाई'' कहकर कहानीकार पतझड़ के रूखे पार्क या पापड़ से पपड़ाये पत्तों का बार-बार अंकन करता हुआ कही कहना चाहता है कि समानियत का अतिक्रमण करना भी अनिवार्य है। निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि निर्मल ने अंग्रेजी वाक्यों का प्रयोग करके मन में गहराने वाले उद्दीपनों का अंकन किया है। खामोशी और सन्नाटे में अंग्रेजी के वाक्य से सीमा रेखा का निरूपण किया है, वेदना के साक्षात्कार में अज्ञात नियति का अभिव्यंजन किया है। अंतहीन अंधकार में बिखरे हुए जीवन आयामों को संकलित किया है। अजीब से बुझे हुये चेहरों में निर्णय का बल प्रदान किया है। इंद्रिय बोध के द्वारा वस्तुओं के मूल रूप को पहचाना है

वातावरण में खोयी हुयी आकांक्षा को नये ढ़ंग से जीवित किया है। समय सापेक्ष अनिवर्चनीय सुख और पीड़ा को अन्वेषित किया है। विश्वजनिन, सार्वजनिक भाषा को रूमानी बोधों से पहचाना है और यहां तक कि सहज मानवीय सौन्दर्य को वस्तुगत एवं आत्मगत दोनों ही पक्षों में अँग्रेजी वाक्य विन्यास से संवारा है।
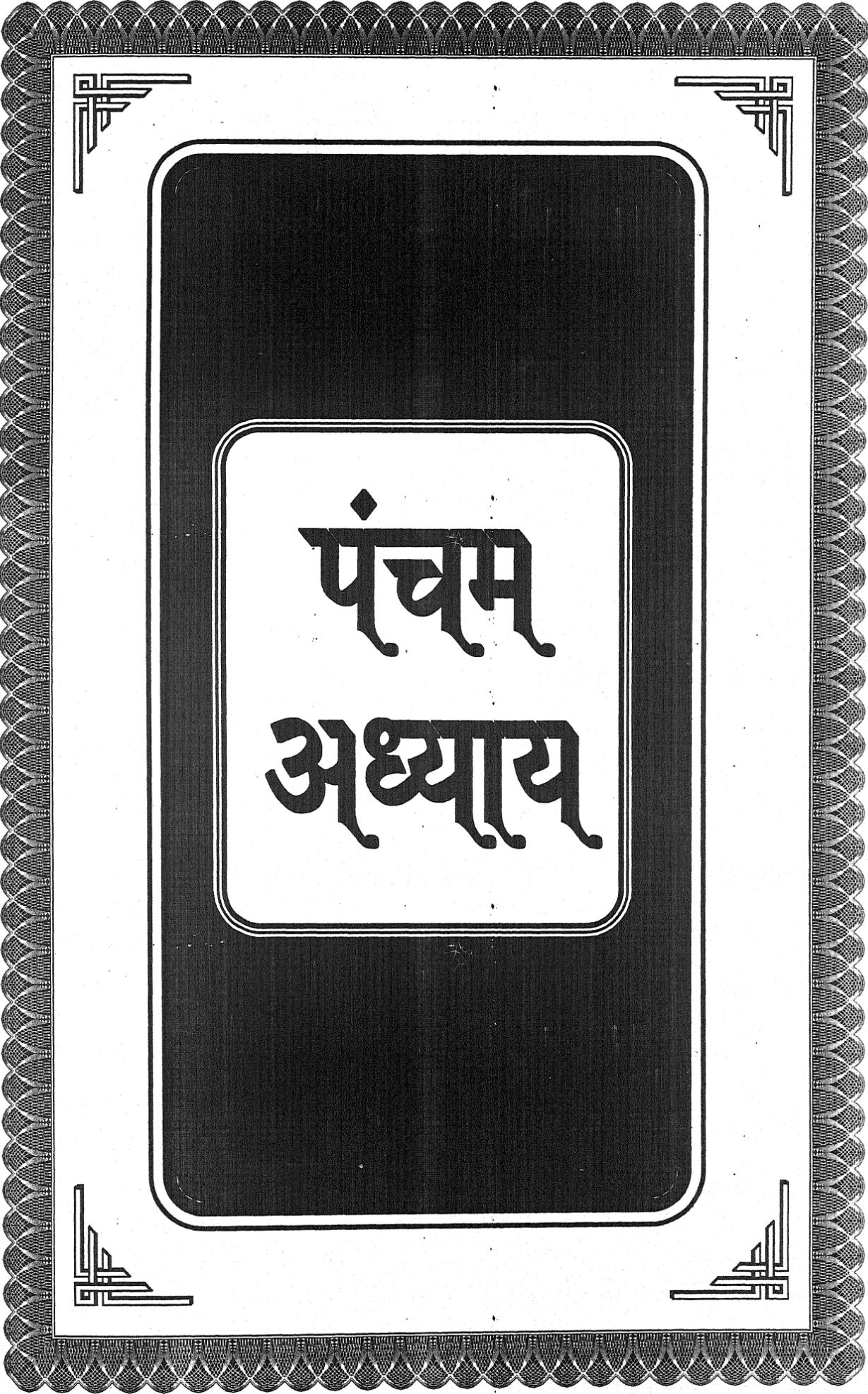
पंचम
अध्याय

::-::(पंचम अध्याय)::-::

निर्मल वर्मा के कथ्य और शिल्प ध्रुवांत

निर्मल वर्मा ने कथ्य और शिल्प सम्बन्धी अनुभूतियों को बहुत ही सूक्ष्म अभिव्यंजना से ग्रहीत किया है।

कथा का दृश्य शैल्पिक आवृत्ति के साथ इन तत्वों को समेटता चला है जो घटना या स्थूल का सांकेतिक अभूर्त स्वरूप रहा था। कथाकार ने नये शिल्प में वस्तु दृष्टि का लगातार योग बनाये रखा है इसीलिए कथ्यानुरूप शिल्प चयन स्वाभाविक प्रक्रिया के रूप में उजागर हुआ है और प्रतीत होने लगा है कि शिल्प बोध लेखकीय अनुभूति सामर्थ्य से जन्म लेकर पुष्ट हुआ है। उनके कथा कथ्य में शिल्प में अनेक सूक्ष्म एवं नवीन प्रयोग उसी कारण मिलते चलतें हैं जिन्हें रेखाचित्र, डायरी, डायरी एवं पत्र आदि प्रारूपों के प्रसंग में भी पढ़ा जा सकता है।

वस्तुस्थिति यह है कि कथाकार निर्मल वर्मा के नये शिल्प का प्रयोग चेष्टित होकर उतना नहीं है जितना वस्तु की आन्तरिक विवशता का परिणाम होकर है। अस्तु हम कथ्य और शिल्प के दो ध्रुवांत विभिन्न स्तरों पर बहुत ही सटीक प्रमाण के साथ अनुशीलित कर सकते हैं।

(क) राजनैतिक स्तर पर कथ्य और शिल्प की सृष्टिः-

निःसंदेह शताब्दियों के तमस को फोड़कर उगा स्वतंत्रीय रवि वैचारिक पुनर्जन्म के लिए वरदान सिद्ध हुआ है।

यह भी निर्विवाद सत्य है कि स्वतंत्रता प्राप्ति जितनी सुखद रही है उतनी ही विशेष प्रसंगों और संदर्भों को लेकर दुखद भी रही है। एक ओर स्वतंत्रता ने देश के व्यक्ति को वैज्ञानिक धरातल पर सोचने के लिए विवश किया है। व्यक्ति को नया जीवन जीने के लिए प्रेरित किया है और उसे उसके आत्मबल की अनुभूति भी करायी है, दूसरी ओर व्यक्ति को स्वस्थ मान्यताओं से आधुनिकता बोध ने उसे दिशाहीन बनाकर झटका दिया है, सम्बंधों के समाजवादी ढांचों को नकार दिया गया है और ऐसा लगने लगता है कि अच्छाई बुराई के साथ सारी दुनियां समानान्तर होकर आगे पीछे घूम रही है। निर्मल वर्मा ने स्वतांत्रयोत्तर परिवेश में रचनात्मक सांस ली है और कथा साहित्य के नये पुराने प्रतिमानों को मिलाकर एक दिशा प्रदान की है।

साहित्यकार कभी भी अपने परिवेश को नहीं नकार सकता है। वह परिवेश को ही सर्जन का प्रेरक तत्व मानता है। वह अपने आसपास के परिवेश से ही विषय चुनता है, फिर अपनी कला के

माध्यम से दुनिया को समेटता चलता है।

डा. रघुवर दयाल वार्ष्णेय ने कहानी के बदलते प्रतिमानों संदर्भ में ठीक ही तो लिखा है "गणतंत्र के उपरांत जो परिवेश उभर कर आया वह राष्ट्रीय नेताओं की उद्‌घोषणाओं, जनसाधारण की सम्भावनाओं के एकदम विरुद्ध है।

अब तो स्थिति यह है कि उन्होंने मुग्ध भाव से यह सारा उद्‌घोष किया कि वे अपने गुब्बारे दूसरे बच्चों के हाथ में थमाकर खुद जिम्मेदार जगह में रोजी-रोटी की फिक्र में चले जायें..........जिस आलोक मंजूषा को नयी पीढ़ी ने आदर भाव से ग्रहण किया उसमें एकदम अंधेरा था। उसके चटक गये शीशों में उल्लू बैठे थे। चारों ओर भूखे, बेसब्र, भ्रष्ट प्रजातांत्रिक खोल ओढ़े अत्याचारी लोगों की भीड़ थी। जिनके पास बड़ी-बड़ी फाइलें थीं वे भाग्यशाली थे। इस अंधेरे में टटोलते हुये बेसहारा लोग भी थे। चुप और असहाय थे। जिन कागजों में कहीं अन्न का दाना नजर नहीं आता था उनमें सूखते पेड़ और बौखलाती नदियां भी थीं।"[1]

निर्मल वर्मा ने भूख, गरीबी और बेकारी के राजनीतिक पहलू कथा साहित्य में कथ्य के आधार पर बनाये हैं बल्कि वे देशी गरीबी ही नहीं विदेशी गरीबी को और भी अधिक पास से उरेहने में सफल रहे हैं। "सितम्बर की एक शाम" कहानी के नायक की उम्र 16 वर्ष है, वह बेकार है। "पिक्चर पोस्टकार्ड" के पात्र सीडी और परेश एम. ए. करने के बाद बेकार है। कहानी का आरम्भ समाचारपत्र में अंकित रिक्त स्थान के पृष्ठ बदलने से होता है। सीडी रिक्त स्थानों को नोट करते-करते फाइलें बना चुका है। जैसे "रिकार्ड, धीरे-धीरे ऊपर उठने लगा है। जूक बौक्स के भीतर सितारे सी लाल बत्ती जल उठी है।"[2]

++++++ ++++++++++ ++++++++++++

"वह प्रतीक्षा कर रहा था......दोपहर..........भर। दोपहर बीत चली थी। शाम की प्रतीक्षा नहीं थी, लेकिन शाम घिर रही थी।.........................

वह सड़क के बीचोंबीच ठिठक कर खड़ा हो गया...........व्हाई डोंट यू लीव मी, आई लव यू सो मच।"[3]

दरिद्रता का एक पहलू वह भी है जहां आदमी इस निर्णय से बच जाता है कि भूख और सर्दी में से कौन सी वस्तु असहनीय है। उसके पास यदि दोनों ही हैं तो वह इनमें से सबसे पहले किसे चुनेगा। यह बात "अमालिया" कहानी में देखी जा सकती है। इस कहानी में तीन यात्री अजनबी शहर के अंधेरे में बासी हवा भरे चूहों सरीखी सीलन भरे बिस्तरों की दुर्गंध में रह रहे हैं। इतने दरिद्रता है कि वे अपनी आधी जली मोमबत्ती को अंधेरे जीने में बड़ी किफायत से जलाया करते हैं। राजनैतिक स्तर पर भुखमरी और बेकारी की ज्वलंत समस्याएं कथाकार को एक जगह नहीं दुनियां के बहुतेरे स्थानों पर देखने को मिलती हैं।

दरअसल "वे दिन" उपन्यास में पात्र के साथ की वार्ता युद्ध की विभीषिका और भुखमरी को बखूबी प्रकट करते हैं..........." तुम्हें मालूम है............तब मैं काफी छोटी थी.........हफ्ते गुजर जाते और हमें भरपेट खाना भी नहीं मिलता था।

1- हिन्दी कहानी- बदलते प्रतिमान, पृष्ठ 65

2- परिन्दे, पृष्ठ 110

3- वही, पृष्ठ 111

तम्बाकू और सिगरिटों के बारे में सोचना असम्भव था.............जब कभी महीनों बाद हमें चोरी-छिपे सिगरेट मिल जाती, तब हमारे सुख का ठिकाना नहीं रहता।" लड़ाई के आखिरी दिनों की वस्तुस्थिति का लेखक ने यहां ज़ायजा दिया है। इसी प्रकार "लंदन की एक रात" का नायक ऊपर से काफी सस्ते दिखने वाले एक रेस्तरां में आलू के चिप्स तथा टोस्ट का आर्डर करने के पश्चात मीनू देखता है। मीनू में इन चीजों के दाम उसकी जेब में पड़े पैसों से भी अधिक हैं। वह बहाने से वहां से भागता और अपनी संत्रस्त मनःस्थिति के कारण एक गली से दूसरी गली में भागता फिरता है।"[2] "छुट्टियों के बाद" कहानी में राज़नैतिक स्तर की विषमतावादी नीति पर करारा व्यंग्य लेखक ने किया है। एक गाड़ी में एक लड़का और एक लड़की दोनों ही बैठे हुए हैं। जब लड़की कुली को 15 नये फ्रैंक दे देती है तो बैठे लड़के को इस आर्थिक विषमता पर बड़ा ही ताज्जुब होता है और उसके मन में अंदर ही अंदर एक बेहूदा ख्याल जाग उठता है। इस ख्याल को जमाने की नयी तहरीर भी कह सकते हैं। इस ख्याल को ट्रेड यूनियन का भाषा का ताबीज भी बना सकते हैं। वह युवक सोचता है कि इतनी रकम में तो वह पेरिस में दो दिन और गुजार सकता है। वस्तुतः कथाकार ने कुंठा, घुटन, टूटन को जीवन के चारों ओर देखा और समझा है। वह राजनीति को नया रूप देने, आर्थिक दृष्टि से समृद्धि और समता लाने के लिए हर कथापात्र को छटपटाता हुआ देखता है, क्योंकि इस राजनैतिक परिवेश में व्यक्ति कुछ कर सकने में असमर्थ पा रहा है। सच्चे रूप में नयी चेतना भी असहाय होकर अब जूझ रही है। इतना ही नहीं, जीवन की जटिलता निजी अनुभूति को कचोट रही है। फिर निर्मल वर्मा ही क्या दुनियां का ऐसा कोई कलाकार नहीं जो ऐसे विषम राजनैतिक परिवेश में अपने आपको कसमसाता हुआ अनुभव न कर रहा हो।

हमारे देश के लिये स्वतंत्रता प्राप्ति एक महत्वपूर्ण घटना रही है। देश आजाद हुआ लेकिन विभाजन साथ में लाया। परिणामतः हर शहर में हत्या, लूटपाट और बलात्कार की घटनाएं घटने लगीं। इस प्रकार के संघर्ष और राजनेताओं के स्वार्थ देशवासियों की दुर्दशाओं के ज्वलंत प्रमाण है।

आज वही चक्र पुनरावृत्ति की दुहाई देने में जुटा हुआ है। निर्मल वर्मा ने भारत के युद्ध विभीषिका और विभाजन की रेखायें तो नहीं खींची लेकिन जीवनगत विसंगति और विषमता का यथार्थ अवश्य बन चुका है। उनका यह कथन आज का परिभाषा देने में सफलीभूत है।

........."सड़क और सिनेमाघर की दुनियाओं के बीच जो अन्तराल हमारे देश में है वह अन्यत्र कहीं नहीं। स्कूल से लौटते हुए भूखे-प्यासे बच्चे घंटों बसों की प्रतीक्षा में खड़े रहते हैं। चिलचिलाती धूप में उनके सूखे बदहवास चेहरे एक तरफ सिनेमा की फिल्मों में कार्न फ्लेक्स खाते चिकने चमचमाते चेहरे दूसरी तरफ इन दोनों के बीच तालमेल बैठाना मुझे असम्भव लगता है।"[3]

राजनैतिक स्तर पर जिस प्रकार हिन्दुस्तान और पाकिस्तान के विभाजन में नरसंहार का अनुभव किया गया उसी प्रकार निर्मल वर्मा को यूरोपीय देशों की युद्ध विभीषिका और भयावहता का ख्याल कथापात्रों के माध्यम से बार-बार आ जाता है। युद्ध का आतंक उनके पात्रों को बरबस आच्छादित कर लेता है। "ब्रेख्त और एक उदास नगर" कहानी में लेखक स्वयं ही यह लिखता

1- वे दिन, पृष्ठ 178 2- मेरी प्रिय कहानियां, पृष्ठ 116
3- बीच बहस में, भूमिका

है..........मैं दो बार लंदन और पेरिस जाते हुए जर्मनी के बीच से गुजरा हूं जब कभी मध्य यूरोप से गुजरता हूं मुझे उनका ठंडा स्पर्श महसूस होने लगता है। मैं पूर्वाग्रह ग्रस्त नहीं हूं, किन्तु आज भी किसी जर्मन को देखता हूं तो मेरे भीतर एक फिजूल सी बेमानी सी होने लगती है।''[1]

कथाकार देशिक, वैदेशिक राजनैतिक हलचलों को क़थापात्रों के माध्यम से व्यक्त करता रहा है।

हिन्दुस्तान और इंग्लैण्ड के नाम के साथ ही अंतर्राष्ट्रीय सोच विचार कैसा विचित्र बन गया है यह बात ''एक चिथड़ा सुख'' उपन्यास में देखी जा सकती है।.......''बिट्टी अगर हम स्टिनवर्ग के नाटक में सफल हो जाते हैं, तो दूसरे शहरों में भी जा सकते हैं तुम हिन्दुस्तान घूमना चाहती थी.......हिन्दुस्तान। बिट्टी चांदनी में हिलाती सेमल की फुनगियों को देखने लगी। जैसे हिन्दुस्तान कहीं उनके बीच उलझा है। इरा इंग्लैण्ड लौट रही है............उसने कहा।''[2]

''परिन्दे'' के डा. मुखर्जी ने वर्मा पर जापानियों के आक्रमण के समय मकानों को ताश के पत्ते की भांति ढहते देखा है। लंदन की उस गरम खामोश रात में यद्यपि बार बहुत दूर की चीज लगती है, अर्थहीन और हास्यास्पद, किन्तु हर बार वही आ भटकती है, बैगाटेन की उस गोली की तरह जो चारों ओर घूमकर फिर एक छेद में आ फंसती है।

जर्मनी में महायुद्ध के पश्चात पुरुष कहीं भी नहीं दिखायी देते हैं, चारों ओर स्त्रियां ही स्त्रियां हैं। कहा गया है..........''लड़कियों की कतार स्कूल से होस्टल जाने वाली सड़क पर नीचे उतरती जा रही है। उजली धूप में उनके रंग-बिरंगे रिबन हल्की आसमानी रंग की फ्राकें और सफेद पेटियां चमक रही हैं। सीनियर कैम्ब्रिज की कुछ लड़कियों ने चैपल की वाटिका से गुलाब के फूलों को तोड़कर अपने बालों में लगा लिया है। कन्टोन्मेंट के तीन-चार सिपाही लड़कियों को देखते हुए अश्लील मजाक करते हुए हंस रहे हैं और कभी-कभी किसी लड़की की ओर जरा झुककर सीटी बजाने लगते हैं।''[3]

कालान्तर में हिन्दी साहित्य ने मानव जीवन के समग्र विश्वास को अपनी रचना प्रक्रिया में आत्मसात किया है। राजनैतिक ध्रुवीकरण, औद्योगिकीकरण, मशीनीकरण तथा विदेशी संस्कृति के सम्पर्क से अधिक सम्भव हुआ है। आज हम देखते हैं कि जनजीवन मूल्यों की समसामयिक चर्चा भी राजनैतिक घेरे में फंस गयी है।

फलस्वरूप आज प्रत्येक क्षेत्र में मूल्यवरण की स्वतंत्रता पर बल दिया जा रहा है। युवा पीढ़ी के सामने पुरानी मान्यतायें नकार दी गयी हैं। सुख-सुविधाओं की पद्धति को सहारा मिला है। इस प्रकार आज मानव मात्र में मात्रभाव, अंतर्राष्ट्रीय साहचर्य और प्रजातंत्र सम्बन्धी मान्यताओं का बोलबाला भी वैज्ञानिक परिधि में राजनैतिक हो गया है। आज की वैज्ञानिक प्रगति और बौद्धिक उन्मेष के फलस्वरूप मानव मूल्यों के प्रति अधिक सजगता दिखायी दे रही है। इतना ही नहीं बड़े ही अजीब ढंग से राजनैतिक बैसाखी पर जीवन को तोड़मरोड़ कर सुविधानुसार परिभाषित किया जा रहा है। व्यक्ति-व्यक्ति से इकाईगत मूल्यवतः को दोहराने की हामी भरने में हिचक रहा है। ''लाल टीन की छत'' उपन्यास में मंगतू और काया की वार्तालाप परिवेशात्मक फाक्सलैण्ड की परिचर्चा में वर्णित हुआ है--''नाम भी उसका कितना अजीब था, फाक्सलैंड। बरसों

1- निर्मल वर्मा का कथा साहित्य (चीड़ों पर चांदनी) पृष्ठ 17

2- एक चिथड़ा सुख, पृष्ठ 115

3- परिन्दे, पृष्ठ 140

पहले मां के साथ वहां है करती थी। लम्बे, सुने, भाये भाये करते जंगल..........उनके बीच चाचा की कोठी पिछले महीने जब कभी वह मां से कहती..............फाक्सलैण्ड चलो तो वह हंसकर उसकी बात टाल देती।''[1]

मंगतू बदलते राजनैतिक परिप्रेक्ष्य को बहुत ही निराशा से और दर्द भरे चेहरे से परिवेश में बिखेरता हुआ काया के साथ बात करता चलता है। दरअसल जब आदमी बड़ा हो जाता है तब उसके पीछे आज के लोग ही बहुत बड़ी राजनैतिक गंध होती है। और वे अपने आप ही दिन-रात नाखूनों की तरह धरा पर खड़े होकर भी गगन को छूने वाले उत्तरोत्तर वृद्धि को प्राप्त करते रहते हैं। व्यक्ति के बेगानेपन और बदलते स्वरूप को निर्मल वर्मा ने यहां व्यवहारिक धरातल पर तथा साहित्य में अभिव्यक्ति दी है। सोच के स्तर पर कथाकार आदर्शों से बिल्कुल ही हटा हुआ है और वह ज्ञान-विज्ञान की नयी उपलब्धियों का अध्ययन करने के बाद नयी संवेदनाओं को सत्य मानने लगा है, इसीलिए आज हर व्यक्ति का आचरण बदला हुआ है, जीवन का नया पैटर्न उभरा हुआ है। ऐसा कहने में कथाकार को हिचक नहीं है। यह सूरत में सत्ता हथियाने की प्रक्रिया हर क्षेत्र में लागू है। फिर चाहे देशव्यापी दौड़ हो या अंतर्राष्ट्रीय स्तर का खेल जनसाधारण राजनीतिक के कुचक्रों से मानस पर अंकित आदर्श छवि में संदेह प्रकट करने लगा है। इस विक्रान्ति और जीवन की ठिठुरी पहचान आज हर व्यक्ति के गले से प्रतिबद्ध बनी हुयी है। चारों ओर भयाक्रान्ति है। कहीं से भी कोई सुलझा हुआ पारदर्शी रास्ता दृष्टिगत नहीं होता है। कथाकार ने वे दिन उपन्यास में स्वयं से कंडक्टर से बातचीत करते हुए अपने देश और चैकोस्लाविया के अंतराल को भावमुद्रा में इस तरह प्रस्तुत किया है........''कहां से आये हो? उसने दोबारा पूछा। इण्डिया से बहुत दूर है। उसने एक लम्बी सांस ली। मैं ऊंघने लगा, मैं जानता था, वह यही कहेगी।''[2]

शायद यह देश और शहर का अपना अलग-अलग राजनैतिक चक्र होता है। उसकी आवाजें और खामोशियां भी भिन्न-भिन्न होती हैं। उसकी चीखें और आहटें भी भिन्न होती हैं। लेखक ने प्रवास यात्रा में प्राग के इतवार दिन का चित्रण वहां की भौगोलिक स्थिति में तो किया है साथ ही अपने पराये राजनैतिक विभाजन और सांकेतिक चेष्टाओं में भी किया है। लेखक लिखता है, कि...............जहां पर इतवार को प्राग के गिरजों की घंटियां तिरती आती हैं तुम सोते हुए भी उन्हें सुन सकते हो। तुम उन्हें सूंघ सकते हो, उनमें चिमनियों का धुआं है, पतझड़ के सड़ते पत्तों की मृत्यु है.........नदी के बहते पानी की सरसराहट है दूसरे दिन शहरों में होते हैं...............इतवार अपना सा होता है..................पराये शहर में भी।[3]

लेखक के मन का यह विचार एक ओर बहुत रुवासा सा भी है तो दूसरी ओर बेहद नीरस। रिक्तता को लेकर जीवन दर्शन के गहन चिंतन में लिपटा हुआ भी है। क्रिसमस के दिनों की राजनैतिक उत्सवधर्मिता का लेखक ने बहुत ही सुगमता के साथ चित्रण किया है। कथाकार सिर्फ विदेशी यथार्थ से मुहावरे ही नहीं रटता बल्कि वह जीवन के कटुतिक्त यथार्थ को भी निर्विकार रूप से कहता चलता है। उनकी कहानियों में इस प्रकार के शून्यता बोध के कतिपय उदाहरण मिलते हैं। माया का मर्म कहानी के नायक की स्मृतियां सूखे पत्तों की भांति झरती जा रही हैं। वह उसके अतीतकालीन राजनैतिक वैभव की परिचायक है।[4]

1- लाल टीन की छत, पृष्ठ 80
2- वे दिन, पृष्ठ 76-77
3- वही, पृष्ठ 77
4- परिन्दे, पृष्ठ 31

वर्तमान में सारा दृश्य बेकारी, बेरोजगारी के उदास चेहरे को ओढ़े हुए है। मनुष्य के भीतर शून्यता बोध ने असर जमा लिया है। इतना ही नहीं उसे लगता है कि सारी दुनिया उससे दूर होती जा रही है। "पिक्चर पोस्टकार्ड" के युवकों को यहां तक विश्वास हो गया है कि वे शायद कुछ भी नहीं कर पायेंगे।[1] 'जलती झाड़ी' में प्रयुक्त खाली हाथ शब्द की आवृत्ति शून्यताबोध की बहुत बड़ी पहचान है। इस प्रकार कहानीकार आज के बेगानेपन अलगावपन और बदहवाल से झुकता हुआ बेकारी, रिक्तता के बोझ को कथापात्रों के माध्यम से ढो रहा है। वर्णन बहुत ही उपयुक्त है------ -आज कैसे हो- उसने पूछा मैं कुछ भी कह पाता कि मुझे लगा पीछे खड़ा छोटा लड़का बहुत ही विरक्त भाव से मुस्करा रहा है। आज भी खाली हाथ हो? खाली हाथ? मेरी आंखें अनायास अपने हाथों झुक आयीं- वे सचमुच खाली थे?"[2] "माया दर्पण" कहानी के बाबू फटे चिथड़े से दीवान के खिताब से जोंक की तरह चिपटे हैं।

अतीत से चिपकने की इस प्रवृत्ति ने राजनैतिक बदलाव का नया उद्भाव प्रस्तुत किया है। पिछली गर्मियों में कहानी के माता-पिता की व्यथा अतीत और वर्तमान के दोहरे संघर्ष को झेल रही है। "डायरी का खेल" बब्बू के धुंधलके मन का ऊबा हुआ राजनैतिक पहलू है। आज खाली जगह को भरती हुयी जगह का शून्यता का उद्घोष करती जा रही है।

कथाकार ने अतीत भविष्य और वर्तमान की शून्यता को सम्बन्धों, रुग्णता और बेकारी की समस्या में एक सत्य दोहराया है। निर्मल वर्मा की "डायरी का खेल" कहानी जिजीविषा का अनुपम उदाहरण है। "सितम्बर की एक शाम" संघर्ष और क्षमता बोध का प्रमाण है। "परिन्दे" का पात्र मुकर्जी का अद्भुत क्षमता है। वर्षों पहले अपने शहर रंगून को जलते देखा था।

एक-एक मकान ताश के पत्तों की तरह गिरता जाता था। युद्ध के दौरान उनके परिवार के सदस्य खत्म हो जाते थे फिर भी डा. मुखर्जी का यह दर्शन राजनैतिक मोड़ का परिवर्तन अध्याय है। किसी चीज को न जानना यदि गलत है, तो जान बूझकर भूल न पाता तो हमेशा जोंक की तरह उससे चिपके रहना यह भी गलत है। जिन्दगी काफी दिलचस्प लगती है और यदि उम्र की मजबूरी न हो तो शायद मैं दूसरी शादी करने में न हिचकता।"[3]

"जलती झाड़ी" कहानी में संघर्ष कम क्षमता का दर्शन अधिक है। जीवनगत सुदूर आशायें क्षण बोध का पाठ सटीक बनती चलती हैं। यह भी आज के बदलते व्यक्तिशः राजनीति का उपक्रम है। उदाहरण विचारणीय है----"जिन्दगी में जवाबदेही का लम्बा एकदम किस तरह आ जाता है जब हम उसकी बहुत कम प्रतीक्षा कर रहे होते हैं जैसे वह हमारे लिये न हो, तो किसी दूसरे के लिए आया हो, दूसरे के नहीं तो तीसरे के लिए, तीसरे के लिए नहीं तो चौथे, पांचवें और छठे के लिये। चाहे जिसके लिए हो हमारे लिए नहीं लेकिन वह है कि कांपते चीखते हाथों से पकड़ लेता है-------किन्तु हम ताकतवर हैं और अपने को छुड़ा लेते हैं और सोचते हैं कि यह दुःस्वप्न है अभी बीत जायेगा।"[4]

कथाकार ने राजनैतिक बदलाव के घेरे में इत्तफाक का सार्थक विवेचन मानसिक त्रासदी के साथ मानव मन के सत्य का विश्लेषण किया है। व्यक्ति जीवन को सोद्देश्य एवं सार्थक बनाने में अनवरत संघर्ष कर्म एवं क्षमता का परिचय देता है वह अतीत से भी जुड़ता है और वर्तमान में

1- परिन्दे, पृष्ठ 92
2- जलती झाड़ी, पृष्ठ 79
3- परिन्दे, पृष्ठ 158
4- जलती झाड़ी, पृष्ठ 85-86

भी आज के साथ सांस लेना चाहता है। इस दर्शन में मनुष्य का संरचनात्मक पक्ष जुड़ा हुआ है। राजनैतिक चिंतन कथाकार ने विश्वपरक दर्शन परिधि में भी यत्र-तत्र प्रस्तुत किया है। अस्तित्ववादी अवधारणा स्वतंत्रय को प्रबलता के साथ मान्य समझती है। निर्मल वर्मा ने ''डेढ़ इंच ऊपर'' कहानी में संत्रस्त स्वतंत्रता और सम्प्रक्त आनन्द को एक साथ बुना है। ''बीच बहस में'' वर्णित इस कहानी में कथाकार कहता है कि ''कभी-कभी ऐसा भी होता है कि आदमी जीता हुआ करीब-करीब मरने जैसी हालत में पहुंच जाता है-------पर मरता नहीं, लेकिन मरते हुए प्राणी की तरह उसकी सारी जिन्दगी घूम जाती है।

----मेरी गोराकुण्ड की तह सब चुके हुए मौके की तरह और आधे फैसले कांठ के घोड़े की तरह एक-दूसरे के पीछे भागते हैं। ''[1]

दरअसल प्रजातांत्रिक तरीके की भांति विदेशी संस्कृति में मनुष्य के जीवन के हर चुनाव को स्वतंत्रता मिली हुयी है। फलस्वरूप यहां का मनुष्य हर बार नये ढंग से चुनाव करता है यही उसके अस्तित्ववान होने का प्रमाण है। ''परिन्दे'' की लतीका ने कभी गिरीश नेगी का चुनाव किया था। गिरीश की मृत्यु हो जाती है इस नियमितगत विडम्बना से भले ही वह कुछ देर अवसन्न रही है लेकिन अवसर आने पर वह ह्यूबर्ट की ओर झुकती है। यह उसका आगामी चुनाव है। इसी प्रकार ''बीच बहस में'' बूढ़े पात्र की स्वतंत्रता नियतिवादी सिद्ध हुयी है। राजनीति भी आज अदृश्य नियति का पटल होती जा रही है जो साल दर साल खिलौनों की भांति कुछेक हिस्सेदार लोगों की गोद में खेल रही है। कथाकार का अस्तित्ववादी दर्शन मानव नियति का संकेतात्मक प्रमाण ''परिन्दे'' की लतिका पात्र में प्रस्तुत है------''लतिका को लगा कि यही बात उसने पिछले साल भी कही थी और शायद पिछले से पिछले साल भी। उसे लगा मानो लड़कियां उसे संदेह की दृष्टि से देख रही हैं मानो उन्होंने उसकी बात पर विश्वास नहीं किया। उसका सिर चकराने लगा---- वह थोड़ा सा हंसी। फिर धीरे से सर को उसने झटक दिया।''[2]

वास्तव में राजनेताओं की फिसलती वाणी मानव नियति का श्रृंगार बनती जा रही है। कथाकार परिवेश के समस्त दबाव के बीच निजी क्षमता का बोध पात्रों के माध्यम से कराता चलता है। यथार्थ से साक्षात्कार के भिन्न-भिन्न रूपों के पार्श्व में कथाकार संघर्षमय चित्रों को ही बटोरता है। डा. परमानन्द श्रीवास्तव इसी तथ्य को लेखकीय आत्मचेतना से आपूरित मानते हैं।''[3]

दरअसल कथाकार मात्र दर्शक ही न होकर वह जिन्दगी के अखाड़े में उतरा हुआ एक क्षमतावान प्रकृति पुरुष है। डा. देवीशंकर अवस्थी निर्मल वर्मा के कथा संचयन और राजनैतिक परिदृश्यों को एकत्व प्रदान करते हुए उपयुक्त ही तो कहते हैं। राजनीतिक एक व्यवसाय या आदर्श या प्रेरणा के रूप में नहीं बल्कि जीवन्त निर्मम स्थिति के रूप में जिसमें कास्ट्रेशन कैम्प है, नीग्रो सेंग्रीगेसन, तिल-तिल कर मार देने वाली खास हिन्दुस्तानी गरीबी है।[4]

''बीच बहस में'' का पिता बीमार है। सम्बन्धगत यथार्थ का निरूपण कथाकार ने आज के महंगाई भरे जमाने सनातन मूल्यों से मुक्त राहों का प्रसंगानुकूल व्यवहार किया.............है।

बीमारी चाहे कितनी असाध्य क्यों न हो अगर वह दूसरे की हो अपने साधन खुद जुटा लेती है और बीच के रिश्तों को कूड़े की तरह बुहार देती है।

1- बीच बहस में, पृष्ठ 50
2- परिन्दे, पृष्ठ 122
3- नई कहानी- संदर्भ और प्रकृति, पृष्ठ 130
4- लेखक के बही-खाते से, पृष्ठ 180

24 घंटे मां-बाप के रिश्ते को याद रखना असम्भव सा है इसलिए इस कहानी में बाप बेटे अस्पताल में बहस करते हैं।[1]

आज के नये दौर ने आधुनिकता वादी दृष्टि ही नहीं प्रदान की है बल्कि समय को व्यतीत करने के लिये एक वैज्ञानिक जीवनगत सोच भी दिया है। ''छुट्टियों के बाद'' कहानी की नायिका छुट्टियों के लिए एक प्रेमी की खोज करती है। इतना ही नहीं ''वीक एण्ड'' की नायिका अपने शरीर पर फर्क करते हुए बहुत स्पष्ट उद्घोषणा करती है ''इस दुनिया में मुझे किसी पर इतना भरोसा नहीं है, जितना अपनी देह में, देह की चाहना में। उसके सहारे वह जहां भी हो----वहां से मैं उसे खींचकर ला सकती हैं। उसमें जादू है, वह खुद अपने में जादू है।''[2]

देहात्मक बधों का यथार्थ अन्तर्मन की गहराई सच्चाई लिये हुए है और लगता है कि आज के जीवन चक्र ने राजनीति की भांति सोच और संवेदना के स्तर बदल दिये हैं। रंग भेद, छुआछूत, ऊंच-नीच आदि की कुत्सित भावनाओं को निर्मल वर्मा ने अपने कथा साहित्य में जहां-तहां प्रकट किया है।

डा. नामवर सिंह इसी दृष्टि से ''लंदन की एक रात'' कहानी को फासिस्टवादी कहानी करार देते हैं। उनका मत है कि ''लंदन की एक रात'' कहानी फासिस्ट खतरे की कहानी है। इसी आधार पर वह हिन्दी की एक विरल आधुनिक कहानी है।[3] एक युग यथार्थ से जुड़कर कथाकार ने राजनीतिक कुचक्रों की बात भी अपने कथा साहित्य में की है। ''अंधेरे में'' कहानी में विरेन चाचा के द्वारा लिखा गया इतिहास राजनैतिक ऊहापोहात्मकता का अनुपम उदाहरण है-----मुझे मालूम है------मां दिल्ली नहीं जाना चाहती। इसका कारण मुझे आज भी समझ में नहीं आता।.............एक बार मैंने कोई किताब खोली थी। उस पर छोटे-छोटे, टेढ़े-मेढ़े, नीले अक्षरों में वीरेन चाचा का नाम लिखा था..........कहते हैं रेस्ट हाउस का चौकीदार बड़ा काबिल आदमी है। ....इस तरह के इंटरव्यू तुम कितने वर्षों से ले रहे हो।''[4]

इन वाक्यों में कहीं भी मेल नहीं है, फिर भी बहुत साफ बातें हैं कि संश्लिष्ट जीवन आज के वातावरण में बढ़ेगा और बेतरतीब होता जा रहा है। ''अंतर'' की नायिका गर्भपात के पश्चात मानसिक रूप से अपने को बहुत हल्का महसूस करती है और बार-बार यही कहती है कि मुझे बहुत हल्का सा लग रहा है।''[5]

''धागे'' कहानी में आधुनिकता बोधीय सस्पेंस बार-बार उभारा जा रहा है। ''डेढ़ इंच ऊपर'' का पात्र अपनी पत्नी की मृत्यु और पुलिस की निर्ममता को बार-बार दोहरा रहा है। ''वीक एण्ड'' कहानी में परिवेश का निरूपण तो है ही साथ ही आधुनिकता के ख्यालों में जकड़ी महिला का भी चित्रण है। जैसे ''दूर स्टेडियम की लाल छत है,.............बच्चों की सी सफेद निरीह देह जो विवाहित होने के बावजूद कुंवारी जान पड़ती है..............विवाहित होने के बावजूद उसकी देह एकदम कुंवारी जान पड़ती है सफेद और निरीह।''[6]

''दो घर'' कहानी में एक ही गूंज अनुगूंज है। यहां कोई हिन्दुस्तानी नहीं.....................यहां कोई हिन्दुस्तानी नहीं आता।''[7]

1- बीच बहस में, पृष्ठ 48 2- वही, पृष्ठ 47 3- नई कहानी- पत्रिका, अप्रैल 1965
4- परिन्दे, पृष्ठ 67, 68, 69 5- मेरी प्रिय कहानियां, पृष्ठ 103
6- बीच बहस में, पृष्ठ 47 7- वही, पृष्ठ 56

कथाकार ने ऐतिहासिक कथावृत्त का भी कथानक में प्रश्रय लिया है। ''लवर्स'' कहानी में हुंमायू का मकबरा प्रेमियों का मिलन है।

यहां लड़की बर्फ और लड़का पतझड़ के रूप में खुले मन से प्यार करते हैं। विशुद्ध राजनैतिक भाव से तो नहीं फिर भी विश्व इतिहास बोध कहानीकार ने कथा सूत्र में हल्के से बांधने का प्रयास तो किया ही है---''यह दिल्ली है-.............हमारा शहर। बरसों से हम अलग-अलग घरों में रह रहे हैं........किन्तु आज सुबह हम दोनों अपने-अपने रास्तों से हटकर छोटे से कैफे में आ बैठे हैं, कुछ देर के लिये।''[1] कहानीकार जिन्दगी की टूटती भरभराती चीखें आज के भयावह जीवन में बुनता चलता है। ''माया दर्पण'' कहानी में इंजीनियर बाबू सीढ़ियां उतरते हैं तो सारा घर हिल जाता है। यहां घर हिलना जीवन का परिचायक है। युद्ध की विभीषिका ने सारे संसार को कुछ दिया है वह राजनैतिक दांव-पेंच की ही तो कहानी है। जैसे ''लड़ाई के दिनों में जो बैरक बनाये गये थे, वे अब उखाड़े जा रहे हैं.............आधी टूटी इमारतें कंकालों सी खड़ी थीं। सूखे रेत के कपा तीतरी धूप में मोतियों से हो।................सरकारी सुपरवाइजर मि. दास से लेकर बड़े ठेकेदार मेहेर चंद्र तक काम खत्म होने पर दीवान साहब के बरामदे में कुछ देर के लिए सुस्ताने आ बैठते हैं और है भी क्या इस उजाड़ बस्ती में।

..................ले देकर एक दीवान साहब का ही तो घर है, जहां दूर शहरों से आये प्रवासी भद्र लोग घड़ी-दो घड़ी हंस बोलकर जी हल्का कर लेते हैं।''[2]

स्वातंत्र्योत्तर जितने भी कथाकार हैं उन सब में भी निर्मल वर्मा ने राजनैतिक परिधि पर घूमता हुआ जीवन अपने सोच और संवेदना से अभिव्यक्त किया है। जनजीवन की सार्थकता पर किसी भी मुल्क में विचार नहीं किया गया बल्कि अवसरवादिता का स्वाथान्धिता, बेईमानी और भ्रष्टाचार ने जनजीवन में अव्यवस्था फैलायी है। इन विशेष कारणों से विश्व के लोग दिग्भ्रमित हैं। यद्यपि बौद्धिक चेतना से उनके मन में अपने को संवारने की समझ तो बढ़ी है लेकिन इस समझ में व्यक्ति आत्म केन्द्रित होता चला गया है। फलस्वरूप हर देश में हर तरफ एक संकट व्याप्त वह है ''वैयक्तिक और सामाजिक आचरणों के भिन्न-भिन्न मानदण्डों का। राजनीतिक दल छद्म की परिभाषा बन चुकी है जिससे नैतिकता का तो पतन ही हो गया है। डा. रघुवर दयाल वार्ष्णेय ने भारतीय जनजीवन से जुड़ी राजनीतिक पर करारा व्यंग्य करते हुए लिखा है-''चारों ओर अव्यवस्था, दायित्वहीनता, कार्य अकुशलता और व्यर्थ की नारेबाजी ने गांधी के रामराज्य को स्वप्न बना दिया है। देश में भाषावाद, प्रान्तीयता को लेकर झगड़े शुरू हो गये।''[3]

इन समस्त विसंगतियों को निर्मल वर्मा ने कथानक तो नहीं बनाया पर आर्थिक स्तर व व्यक्तिगत स्वतंत्रता की हल्की फुल्की विडम्बनाओं को अवश्य प्रस्तुत किया है। इस संकीर्ण राजनीति के प्रभाव से कोई भी साहित्यकार बच भी कैसे सकेगा इसलिए कथाकार वर्मा जीवन के चारों ओर उलझनपूर्ण परिस्थितियों को प्रकट करते चलते हैं। मानवीय यथार्थवाद नयी चेतना की कथात्मक अभिव्यक्ति तो सिद्ध हुआ है लेकिन आधुनिकता के मोहपाश में इतना अधिक जकड़ गया है कि साहित्य को भी संपूर्णता में न देखकर टुकड़ों में देखा जाने लगा है। महानगरीय सभ्यता, कस्बाई मनोवृत्ति, देशी-विदेशी रहन-सहन आदि कहानी के कथानक बनकर उभरे हैं।

1- जलती झाड़ी, पृष्ठ 17 — 2- वही, पृष्ठ 21-22

3- हिन्दी कहानी के बदलते प्रतिमान, पृष्ठ 121

परिवेशगत पहलुओं पर चित्रात्मक तरीके से विचार किया गया है। व्यक्ति व्यक्ति के बीच के सह संबंधों को परम्परा से हटकर रूपाचित किया गया है।

(ख) सामाजिक स्तर पर कथ्य और शिल्प की सृष्टिः-

समकालीन सामाजिक जीवन के संघर्ष और विकास की अनेक स्थितियों के विभिन्न पक्षों का चित्रण समकालीन हिन्दी तथा साहित्य में प्रभावकारी ढंग से छाया हुआ है। वर्तमान जीवन के परिवेश में नया स्वरूप ग्रहण करते हुए विभिन्न मानवीय संबंध कथा साहित्य में प्रतिपादित किये गये हैं। आधुनिकताबोध के कारण जीवन मूल्यों के उभरते हुए संकेतों की सार्थक अभिव्यक्ति कथा साहित्य में हुयी है। आज सामाजिक परिस्थितियों और संदर्भों का इतिहास निर्मल वर्मा के कथा साहित्य में बहुत सपाट तरीके से प्रस्तुत हुआ है। भारत में पश्चिम की वैज्ञानिक और तकनीकी सभ्यता के आयात से समाज के जीवन में बुनियादी और स्थायी परिवर्तन हुए हैं। इन परिवर्तनों पर सामाजिक परिप्रेक्ष्य में कथाकार वर्मा ने काफी भिन्न दृष्टियों में देखा और समझा है।

कथन है................"दिन पर दिन शहर की समस्याएं कठिन हो रही हैं। महानगरों में मकान कबूतर के दरबे जैसे हो गये हैं। वहां शोरशराबा, भीड़भाड़, पशुवत जीवन बढ़ता जा रहा है। अनेक आचार संहिताएं बदल रही हैं। नैतिक मानदंड बदल रहें हैं और लोगों की दिनचर्या बदल रही है। औद्योगीकरण ने वायुमण्डल को पूर्णतया दूषित कर दिया है। वास्तव में मनुष्य की आविष्कार प्रतिमा ने प्रकृति पर विजय प्राप्त कर ली है किन्तु साथ ही अपने विनाश के बीज भी बो लिये हैं। इस भीड़ में सभी दौड़े जा रहे हैं। कोई किसी के साथ नहीं हो रहा है। किसी को भी किसी की चिन्ता नहीं है।

परिचित होते हुए भी लोग अपरिचित से लग रहे हैं। सब अपनी परिस्थितियों में बंधकर रह गये हैं। मध्य वर्ग को अपनी उपेक्षा का ज्ञान होने लगा है। आज का नवयुवक असंतोष और अस्वीकार का प्रतीक बन गया है। नवयुवक साहित्यकारों की पीढ़ी ने स्वतंत्र भारत में जन्म लिया और जब से उन्होंने होश संभाला देश में भ्रष्टाचार का साम्राज्य ही देखा है। अतः नयी पीढ़ी के सामने न कोई आदर्श है और न कोई उच्च जीवन मूल्य ही।"[1]

ऐसी स्थिति में कथाकार निर्मल वर्मा ने आधुनिकता के संदर्भ में सामाजिक विद्रूपता और नगरीकरण की प्रक्रिया के आख्यान की अपेक्षा करना ही उपयुक्त है। युवा पीढ़ी को पश्चिम के सामाजिक जीवन में भौतिक सुखों के आकर्षण, उन्मुक्त यौनाचार तथा वैज्ञानिक एवं तकनीकी उपलब्धियों पर विवेकहीन विश्वास है। सामाजिक आचरण की नैतिकता का पतन हुआ है। औद्योगीकरण के साथ उपयोग भी बढ़ा है अतः अर्थ की महत्ता भी बड़ी है। परिणामतः महत्वाकांक्षाओं और मान्यताओं को भी केंद्रीभूत होना पड़ा है। आधुनिकता की चर्चित बातें साहित्य में विशेषकर कथा साहित्य में बहुत पनपी हैं। निर्मल वर्मा का कथा साहित्य आधुनिकता बोधी

1- हिन्दी कहानी बदलते प्रतिमान, पृष्ठ 122

परिप्रेक्ष्य में सामाजिक स्तर व्यक्ति इकाई और समष्टिगत भीड़ दोनों ही पक्षों में अनुशीलित किया जा सकता है उसमें व्यक्ति ने स्वयं आत्मिक सत्ता के रूप में अपनी चेतना को स्थापित कर लिया है और सामाजिक संरचना में प्रजातांत्रिक आधारभूमि पर स्थापित करने की उसने दलील दी है।

इस व्यक्तिवादी प्रवृत्ति के विकास के फलस्वरूप व्यक्ति और समाज के संबंधों का स्वरूप ही बदल गया है। डा. धर्मवीर भारती ने इस व्यक्तिवादिता की प्रवृत्ति कें संदर्भ में लिखा है........"वैक्तिवादिता असामाजिक अंध प्रेरणाओं से हमारे व्यक्तित्व में उदित होने वाली वह मनोवृत्ति है जो हमें व्यक्तिगत स्वार्थों की ओर उन्मुक्त करती है।"[1]

आज के बदलते परिप्रेक्ष्य में कथाकार ने प्रवासी जीवन के उन मुद्दों को हल्के से छुआ है जिनमें विदेशी दुनियां क्रिसमस की छुट्टियों में किस प्रकार उत्सवमय होकर पारस्परिक स्त्री पुरुष का भेद मिटाकर मिलती है। यह भी विदेशी सामाजिक रीति-नीति की कहानी है। जैसे- "कौन है ये? उसने पूछा? उसने कहा- ये स्टूडेन्ट है...........हर साल क्रिसमस की छुट्टियों में रात को इसी तरह घूमते हैं।

उन्होंने एक ब्लाइण्ड बालों वाली लड़की को अपनें कंधों पर बिठा रखा था। उसके हाथ में गिटार था और वह दूर से कोई स्पेनिश जिप्सी जान पड़ती थी। लड़के-लड़कियों ने उसे चारों ओर से घेर रखा था। अंधेरे में सिगरेटों की बिंदियां चमक जाती थीं।"[2]

कथ्य का सामाजिक धरातल मध्य वर्ग से बेहिचक जुड़ जाता है। कथाकार ने आज के जीवन को महत्वाकांक्षाओं को एवं लालसाओं को सामाजिक परिवेश की यातनाओं से गुजरता हुआ देखा है। आधुनिकीकरण की संक्रमण स्थिति से गुजरते हुए सामाजिक जीवन के विविध क्षेत्रों में परिवर्तन बहुत ही जोरदार धमाके के साथ हुआ है। प्रतिबद्धता के सवाल मोथरे पड़ गये हैं।

स्त्री पुरुष के मन में प्रेम के स्थान पर वितृष्णा पैदा हो गयी है। मुक्त आकांक्षाएं क्षत-विक्षप्त हो गयी हैं। स्त्री पुरुष वासनातृप्त तो होना चाहते हैं लेकिन दुराव की भावना चारों ओर है। इस भावनाओं में समाज निहित संस्कृति भी विरासत के साथ फीकी लगने लगती है। व्यक्ति चारों ओर आक्रोश का साम्राज्य समझकर आंखें फाड़-फाड़कर अपने को बचाना चाहता है। स्त्री पुरुष सहमे हुए जीवनगत बदहवासों को झेलते जा रहे हैं। "एक चिथड़े सुख" की कथावस्तु में लेखक ने लड़की के मनोवैज्ञानिक सत्य को उद्घाटित करते हुए नुमाइश की अन्तभूत भावना को उद्भावित किया है- नुमाइश के बीच बड़े मैदान में एक बैण्ड मास्टर बेंत घुमाता हुआ चल रहा था। पीछे बैण्ड बजाते हुए तीन तिलंगे जो ताश के जोकर जैसे दिखायी देते थे उदास और गमगीन धूप में लस्तम-पस्तम। वह ठहर जाता, सुनने लगता बिट्टी उसका हाथ अपनी हथेलियों में दबोच लेती, उसे घसीटने लगती। "जल्दी चलो-आंखें फाड़-फाड़कर क्या देखते हो?"[3]

दरअसल व्यक्तियों के चेहरे की झुर्रियां कुछ भेद बता देती हैं। बिट्टी का हथेलियों में दबोच लेना एक भय का संकेत है और ऐसा एहसास होता है कि यह एक सिम्बल है जिसे पाते ही व्यक्ति चलता ही नहीं दौड़ पड़ता है। इतने पिछले वर्षों की याद और नुमाइश के आलोक में टोहती पिघलती उदास आंखों की परछाई व्यक्ति को वर्षों के बाद और भी छू रही है, आश्चर्य है। सामाजिक मरुभूमि पर बहुत बड़ा सन्नाटा है। लोग सुखी भी हैं, दुखी भी। एक सुख के सुकून

1- मानव मूल्य और साहित्य, पृष्ठ 124　　2- वे दिन, पृष्ठ 141

3- एक चिथड़ा सुख, पृष्ठ 101-102

का थोड़ा सा स्मरण लेखक ने इसी उपन्यास में बिट्टी के द्वारा करवा ही दिया है।............"क्या बात है? बौना अचानक बिट्टी के सामने आ खड़ा हुआ तुम बहुत दुखी दिखायी देते हो बिट्टी इस बार न पीछे हटी, न हिली..................बौने की आंखों को देखा जो अन्तहीन उदासीन में डूबी थी............फिर वह धीरे से मुस्करायी, सुख क्या होता है?"[1]

कथाकार ने जिन्दगी के तनावपूर्ण दृष्टि को आज के वातावरण के भलीभांति पहचाना है। सुख और दुख का संघर्ष मानव मन के बीच नहीं है। अगर है तो मानव के मन में अनुकूल और प्रतिकूल परिस्थिति की सोच। व्यक्ति आज समाज से हटकर जितना सुखानुभूति का वर्णन करता है उतना ही समाज के बेबुनियादी ढर्रे से कहीं न कहीं जाकर दुखी हो उठता है। शोषण मूलक समाज से मध्य वर्ग का जीवन बहुत अधिक तनाव से ग्रसित है। जीवन का एंकातिक छोर आपाधापी में कचोट भरता हुआ दूसरे से प्रतिबद्ध हो जाना चाहता है। यही आज के व्यक्ति की मानसिक त्रासदी भी है।

सामाजिक दृष्टि से कथाकार सदैव शब्दों के माध्यम से अपनी संवेदनाएं पाठकों के बीच फेंकता रहता है जिससे उसके द्वारा निर्मित शब्द जलते हैं और अर्थ सुलगते हैं। इस बीच का विस्तार आगे चलकर उस दायित्व तक होता है जिसे सामाजिक चेतना कहा जाता है।

कथाकार निर्मल वर्मा ने सामाजिक स्तर पर अनेक चित्र अपनी कथायात्रा में उकेरे हैं। भूख और गरीबी से पीड़ित "लंदन की एक रात" का नायक कितना व्यग्र है, विचारणीय है। नायक ऊपर से काफी सस्ते दिखने वाले एक रेस्तरां में कुछ खाना चाहता है परंतु उसके पास उतने भी पैसे नहीं हैं जितने की एक टोस्ट और थोड़े से चिप्स के लिए उपेक्षित हो। इस दरिद्रता का अहसास कथाकार ने भलीभांति प्रस्तुत पात्र के माध्यम से कराया है। नायक की मानसिक स्थिति का सामाजिक जायजा इन प्रयुक्त शब्दों में दृष्टव्य है.................."उस क्षण भूख और निराशा के बावजूद हमारे मन में कोई खीज या कटुता नहीं था.........एक लम्बी बोझिल सी सांस उस अदृश्य और बेडौल भीड़ के ऊपर उठी और चन्द अश्लील अनर्गल गालियों में खो गयी। एक दूसरे की गंध जिसे हम आसपास खड़े सूंघ सकते थे। गालियों के बावजूद अपना सकते थे।.................अब अलग-अलग रास्तों पर छितराने लगी थी।"[2]

"लंदन की एक रात" का नायक विद्रूप सामाजिक भयावहता के कारण एक गली से दूसरी गली में दौड़ लगाता रहता है। उसकी संतृप्त मनःस्थिति एक ओर अपनी दरिद्र हालत में अटकी हुयी थी तो दूसरी ओर रेस्तरां के मीनू और बिल पर। कथाकार ने भुखमरी का अंतर्राष्ट्रीय चित्र प्रस्तुत कहानी में वर्णित किया है।

"जलती झाड़ी" की एक अन्य कहानी "पराये शहर में" की वेश्या एक विशालकाय स्त्री है। उसने सस्ती जारजट की लम्बी स्कर्ट पहन रखी है। ग्राहक के लालच में वह आदमियों की भीड़ में मकान की तरह खड़ी है। लेखक "पराये शहर में" किस तरह गलियां बदलता हुआ इधर-उधर होता रहता है इसी तथ्य का विचित्र चित्रण "जलती झाड़ी" कहानी में भी मिलता है। लेखक का मत है कि खासकर "अजनबी शहर में वहां हमें कोई नहीं पहचानता और हम किसी शर्म और झिझक के बिना एक रास्ता छोड़कर दूसरे रास्ते पर हो लेते हैं।"[3]

1- वही, पृष्ठ 105 2- जलती झाड़ी, पृष्ठ 98

3- जलती झाड़ी, पृष्ठ 73

इस सत्य तथ्य से यह स्पष्ट है कि हर व्यक्ति की बीच एक सामाजिक भय है व्यक्ति सामाजिक संसार से एक पल के लिये भी भूल नहीं पाता। इसी बेहद यथार्थ स्वरूप का चित्रण "पराये शहर में" कथाकार इस प्रकार करता है............"किसी ने सीटी बजायी और अश्लील सा इशारा किया............इसके साथ जाओगे? लड़के ने फुसफुसाकर कहा सिर्फ 500 लीरा...........तुम पूरी रात इसके साथ रह सकते हो। वह लड़का मेरे और निकट खिसक आया तीन सौ लारा सिर्फ एक घंटे के लिए।"[1] वेश्याओं की दरिद्रता और सामाजिक विद्रयता पर वर्मा जी की कलम खूब चली है जान पड़ता है कि लेखक अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर घिनौने सामाजिक दायरे को चित्रित कर देना चाहता है। इसे इसी क्रम में "इतनी बड़ी आकांक्षा" कहानी की जिप्सी लड़की भी एक फौजी के साथ तीन रातों से बराबर सो नहीं पाती। वह उसके साथ डान्स करती रही तथा उसे अहसास होता है कि मानो वह ड्यूटी निभा रही हो। इसी बीच लेखक ने फौजी और उस लड़की के संवाद का नाटकीय रूप आज के समाज की विकृत स्थिति की ओर इंगित करता है।........."कितने साल से फौज में? 10 महीने से। 9 महीने में आदमी हो जाता है, तुम 10 मही में ठीक से फौजी भी नहीं बन सके........धीरे से ....बेवकूफ जिप्सी ने छटके से अपनी बांह छुड़ा ली, ...फौजी खिसिलया गया, फिर बांह पकड़ी, इस बार इतने धीरे से मानो वह मक्खन हो..........छूते ही पिघल जायेगी।..........वाह रे ....बिना पिये तेरा साथ यों ही डोलती रहूंगी। इस बार वह हंसी भी और फौजी के कुछ निकट सट आयी थी।"[2]

समकालीन जीवन के संदर्भ और विकास के अनेक स्थितियों के विभिन्न पक्षों का चित्रण कथाकार ने "लाल टीन की छत" उपन्यास में प्रभावशाली ढंग से किया है। लेखक मानवीय सम्बन्धों का नगरीय और कस्बाई जीवन बड़े ही मार्मिक ढंग से छूता चलता है। उक्त उपन्यास का पात्र काया और लामा का संवाद इस इस स्थिति का जीवन्त उदाहरण है। ...."क्या है काया मैं यहां हूं तुम इसे रोक नहीं सकते? उसके बढ़कर लामा का हाथ पकड़ लिया ....काया उसे देखती रही फिर चारों तरफ देखा कमरे में कोई नहीं था।"[3] कथाकार परिवेशात्मक एकान्त और सामाजिक विदूरता का वैयक्तिक मनोवैज्ञानिकता के सहारे अनूठा उदाहरण देखता चलता है उपन्यास के पात्र यौन सुख के मामले में सामाजिक दायरे को नजरअंदाज करते चलते हैं। दरअसल जीवनगत परिभाषा की यह आज की वास्तविकता है कि आज केवल यौन सुख मात्र के लिये नहीं बल्कि आज के दौड़ते हुये जीवन की हर तरफ की चेष्टाओं में वह सिमटी हुयी कहानी है, जहां एक अकेली औरत रात दिन खाली कमरों में चक्कर लगाने का उपक्रण करती है। वहीं दूसरी ओर आज के व्यस्त बालजीवन जो रेस्तरां, होटल में काम करते हैं जीता जागता स्वरूप इसी उपन्यास में बड़े ही मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया गया है.........."नेपाली गोलमटोल चेहरा बहुत छोटे-छोटे बाल, सूखे सेब जैसे कपोल, जिनके बीच मैल की असंख्य परतें जमा थी। यह शायद वही पहाड़ी था जिसके बारे में वीरू ने उसे बताय था..................जल्दी-जल्दी एक प्लेट से दूसरी प्लेट में रोटियां ठेल कर वह लौट जाता था।"[4] समूचे होटल की व्यवस्था में यन्त्रवत काम करने वाला यह एक बल पुरुष ही था। कथाकार सामाजिक परिधि के उन दोषों की ओर इशारा करता है जिसमें घुटनहीनता, भय और कुंठा का स्थान बन गया है। कथाकार ने विदेशी संस्कृति

1- वही, पृष्ठ 70
2- पिछली गर्मियों में, पृष्ठ 106-107
3- लाल टीन की छत, पृष्ठ 154
4- वही, पृष्ठ 110

की झलक का व्यवस्थापरक स्वरूप अपने उपन्यास और कहानियों में यत्र तत्र दिया है विदेशी नायक-नायिका या मित्रवर्ग में जुड़ें पुरुष-स्त्री किसी भी तरह के समाज की परवाह किये बिना अपने आप में सन्तुष्ट बने रहते हैं। बीच बाजार में एक दूसरे से चिपटना लिपटना, एक ही स्लीपिंग किट में सड़क के किनारे सोना, सभी के सामने कपड़े बदलना, बिना विवाह के गृहस्थी जमाना आदि इसी तरह के विविध आयाम हैं जिन्हें कथाकार ने जगह-जगह निरूपित किया है।

'बीच बहस में' की कहानी छुट्टियों के बाद 'मार्था पैरिस प्लेटफार्म पर अपने प्रेमी से लिपट जाती है, गाल चूमती है, हाथ मिलाती है जैसे.........उसने बहुत कोमल झटके से लड़की का सिर अपने कंधे से हटा लिया, फिर उसके चेहरे को चूमा। हर जगह..........उसकी आंखों को, बालों को, गरदन के नीचे, ऊपर उसके होंठ यात्रा करते हुये मार्था के मुंह पर टिक जाते हैं, जैसे वह टर्मिनस हो और फिर दुबारा अपनी यात्रा शुरू कर देते हैं।'[1]

इसी प्रकार दो घर की नायिका भी बीच बाजार में अपने प्रिय का हाथ पकड़ लेती है इतने तक तो ठीक है लेकिन इसके आगे 'पिछले गर्मियों में' से 'इतनी बड़ी आकांक्षा' कहानी की नायिका शराब पीने के बाद इतनी अधिक उन्मुक्त हो जाती है कि वह अपने प्रिय से केबिन का दरवाजा बन्द करने के लिये कहती है और लिपट जाती है। 'अन्तर' के नायक नायिका जहां बाहर खुले स्लीपिंग किट में सोया करते हैं वहां यौन तृप्ति के लिये उन्मुक्त होकर भोग में लिप्त हो जाते हैं। और समाज जैसी चीज की परवाह नहीं करते लेखक लिखता है...........''वे बाहर सोते थे एक ही स्लीपिंग किट में...........होटल की जो बचत होती थी, उसे वे हमेशा बियर पर खर्च कर देते थे। और वह एक अधेड़ उम्र का आदमी नीली आंखों में बहती धारा को पहचानने लगता........।[2]

कथाकार सामाजिक विद्रयता का अच्छा उदाहरण, अमालिया कहानी में प्रस्तुत करता है। अमलिया का अरब दोस्तों के सामने जांघिया तक उतार देता है। विदेश सामाजिक विद्रपता का अनूठा उदाहरण तब और अधिक बन जाता है जब 'पिछली गर्मियों में' का महीप वियना, में बिना शादी किये एक लड़की के साथ रह रहा है। इसी प्रकार पिता और प्रेमी, कहानी में लड़की की शादी नहीं हुयी किन्तु बच्चा है।

''दो घर'' कहानी में बिना शादी के ही गृहस्थी बसा ली गयी है जिसमें पत्नी, बच्चे, घर सभी कुछ है यह सब समाज के दायरे का भीतर के भीतर का विद्रोह है। वर्मा के कथा साहित्य में सामाजिक जीवन की परिस्थितियों का दर्पण बनने के साथ ही भावी समाज की संरचना के संकेत वाहक का भी कार्य किया। इसीलिए उनका समग्र साहित्य न ही समाजबद्ध है और न ही समाज विमुख। वह कभी अलग खड़ा होकर समाज को झकझोरता है और कभी इसके साथ खड़ा होकर उसका श्रोत बन जाता है समाज के सन्दर्भ में इस विचित्र सी दिखने वाली विलगता और संलग्नता साहित्य की सार्थक भूमिका का परिचय मिलता है वर्मा के कथा साहित्य में मानव जीवन की अनेक गतिविधियों को सही या गलत दिशा की ओर उन्मुख तो नहीं किया फिर भी वास्तविक जीवन के आधुनिकता बोधीय सोपानों पर प्रकाश डाला है उनका भी वास्तविक जीवन के आधुनिकता बोधीय सोपानों पर प्रकाश डाला है उनका साहित्य व्यक्ति और समाज के यथार्थ का अनुभव एवं विवेक की अर्थवक्ता की खोज से जुड़ा है।

1- बीच बहस में, पृष्ठ 25

2- मेरी प्रिय कहानियां, पृष्ठ 104-105

उनके समग्र साहित्य में आज के सामाजिक जीवन की तीव्र उथल पुथल है यथार्थ ही नहीं गहरा एवं अनेक स्तरीय है समाज सापेक्ष विडम्बनाओं का इतिहास निर्मल वर्मा के कथा साहित्य में वहां और अधिक अप्रछिन्न हो जाता है। जहां विचित्र आधुनिकता बोधीय परिधान को पहन लिया जाता है।

कहीं-कहीं यह विद्रोहात्मक परिधान भारतीय संस्कारों में भी दिखायी देता है 'पिछली गर्मियों में' की नीता, नन्दी, गुल्लू भाई, बहन बेटी होकर भी एक साथ नृत्य करते हैं। यह विदेशी नैतिकता भारतीय स्वच्छन्ता के दायरे में आज समाती जा रही है 'वीक एण्ड' की नायिका रात भर बाहर रहती है और सुबह चोरों की तरह घर लौट आती है ताकि उसके पड़ोसी बाहर से देख न सकें इस प्रकार के आचरण विद्रोही शक्ल में भारतीय कहानियों के मध्य भी पाये जाते हैं।

कथाकार ने अधिकतर विदेशी नैतिकता की जानकारी देते हुये यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि प्रेमी-प्रेमिका के शारीरिक सम्बन्धों को भी सामान्य दृष्टि से देखा जा सकता है। सामाजिक स्थितियों और सामाजिक समस्याओं के सन्दर्भ में पश्चिम की वैज्ञानिक और तकनीकी सभ्यता ने भारतीय जीवन को झकझोर दिया है। समकालीन समाज में पश्चिमी करण की सहवर्ती प्रक्रियायें और नगरीकरण और औद्योगीकरण के रूप में अधिक चर्चित रही हैं इन दोनों में ही मनुष्य का लौकिक सुख छिपा हुआ है जिसके कारण हर स्थिति में स्त्री पुरुष की स्वतन्त्रता हर स्तर पर देखी जा सकती है।

डा. रामदरश मिश्र ने इस तथ्य पर गहराई से विचार करते हुये लिखा है, कि................''सामाजिक जीवन से व्यक्ति जीवन अलग हटकर स्वार्थपरता के अंक में डूबता चला गया परिणामतः व्यक्तिगत स्वार्थ उभरकर सामने आ गये जिससे जातिवाद, क्षेत्रवाद का खुलकर उपयोग होने लगा।''[1]

वास्तविक रूप में सामाजिक चेतना के विकास की प्रवृत्ति के विकास समाज से व्यक्ति की ओर होने लगे। आर्थिक राजनैतिक तत्वों ने इस प्रवृत्ति के विकास में पर्याप्त सहयोग दिया जिससे परिवेशगत असंगति विविध अन्तर्विरोधों में प्रकट हुयी हैं व्यक्तिवादी चेतना का विकास सच्चे अर्थों में पश्चिमी करण का बुनियादी स्वरूप है इस व्यक्तिवादी प्रवृत्ति के विकास के फलस्वरूप व्यक्ति और समाज के सम्बन्धों का स्वरूप बदलने लगा है। नगर समाज में जीवन के यन्त्रीकरण ने सम्बन्धों की रागात्मकता को संकुचित कर दिया है अतः व्यक्ति का व्यक्ति से सम्बन्ध, व्यक्ति का परिवार के अन्य सदस्यों से सम्बन्ध विच्छिन्न होने लगा।

यही सब निर्मल वर्मा की कहानियों में चिन्तित है व्यक्ति की स्वतन्त्रता के लिये विवाह संस्था का विरोध हर स्तर पर दृष्टिगोचर होता है। भोग, स्वच्छन्ता, अति वैयिक्ता की विचारणा ने लेखक के उन उभरे संकेतों को प्रकट किया है जिन्हें कहते और सुनते हुये आज भी झिझक होती है। ''पिछली गर्मियों में'' की कहानी ''पिता और प्रेमी'' में कहा गया है कि बहुत कम उम्र में भी बच्चे शायद अपनी मां के प्रेमियों को भांप जाते हैं। प्रेमियों को देखकर नहीं बल्कि अपनी मां का रुख देखकर।''[2]

लेखक इस प्रकार प्रेम और परिवार का चित्रण लगातार करता चलता है। 'इतनी बड़ी आकांक्षा' कहानी में मद्यपान और स्त्री का रूप इस प्रकार लेखक प्रस्तुत करता है............''पीने

1- हिन्दी कहानीः अन्तरंग पहचान, पृष्ठ 85 2- पिछली गर्मियों में, पृष्ठ 101

के बाद अपनी औरत भी पराई सी लगती है। इतनी पराई नहीं कि दिलचस्प न जाने पड़े। इतनी अपनी भी नहीं कि उसे नजरअंदाज किया जा सके।''[1]

कथाकार वर्मा ने सामाजिक विसंगतियों को मध्य वर्ग के अन्दर बखूबी स्वीकार किया है और भी है कि मध्यवर्गीय जीवन, मध्यवर्गीय मानसिकता कथाकार की संवेदना का प्रमुख केंन्द्र बना हुआ है जैसे विवाह अब केवल धार्मिक या सामाजिक कर्म न होकर स्त्री पुरुष की अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति का साधन बन गया है। पतिनत्व और मातृत्व नारी जीवन की चरम परिणति न होकर केवल एक सामाजिक अनिवार्यता रह गयी है।

नारी, पत्नी और माता होकर भी अपनी व्यक्तिगत और प्रतिभा के विकास के लिये सचेत हो गयी है। पारिवारिक सम्बन्धों में सबसे बड़े अन्तर नारीत्व विचारणा में हुआ है आज का पुरुष कितना ही आधुनिका क्यों न हो गया हो किन्तु उसकी पत्नी के रूप में नारी की परिकल्पना जहां एक और परम्परागत बनी हुयी है वहीं दूसरी और वह नारी को केवल अपने तक सीमित रखना चाहता है इधर नारी पर अस्तित्ववादी चेतना के फलस्वरूप पुरुष को सामान्य धर्मी देखना चाहती है। इस प्रकार स्त्री पुरुष का द्वन्द्व निर्मल वर्मा के कथा साहित्य में भरपूर है कथाकार निर्मल वर्मा ने नगरीय समाज का जीवन का बहुविधि चित्रित किया है।

वस्तुतः नगरीय समाज का जीवन बहुआयामी है। जटिल है और गतिशील हैं कारखाने, होटल, कार्यालय, सड़क, मैदान, आकाश से होकर घर की रसोई और सोने के कमरे में भी यन्त्र का मानव अस्तित्व पर प्रभुत्व जम चुका है। इस प्रकार उसका सारा सामाजिक जीवन कृत्रिम हो गया है।

''बीच बहस में'' की कहानी में ''दो घर'' की नायिका परिवेश का सूनापन और आज के आपाधापी परक परिवेश की झल्लाहट में अपने और अपने मिलने वाले पात्र का संकेत करती हुयी कहती है।

.... ''हम आमने-सामने खड़े रहें। वे हांफती रही। बन्द कमरे की स्मृति को खुली सड़क पर खोलो, तो सिवाय विस्मय के कुछ हाथ नहीं आता। ....मैं दो बार आपके घर गयी थी, -दोनों बार ताला लगा था। ....मेरे दिल में उनके प्रति जो रूखापन था............वह एकदम ऊपर सरक आया।''[2]

कथाकार युगानुरूप युग सत्य का संक्रमणशील व्यापार अपने कथानक में संवारता चला है। सामाजिक जीवन के नैतिक अनैतिक दोनों ही पक्ष समस्या मूल होकर प्रस्तुत हुये हैं सुधारवादी और पुनरुत्थानवादी प्रभाव से उनके कथानक समस्या का समाधान एवं यथार्थ की विषमता का विकल्प खोजती चलती है। यह और बात है कि इन कहानियों के समाधान मात्र वैयक्तिक तथा काल सापेक्ष रह गये हैं। स्त्री पुरुष सम्बन्धों का यथार्थ और सम्बन्धों से अद्‌भुत तनाव इनकी कहानियों का विषय बोध है। सामाजिक व्यवस्था की टूटती हुयी दीवारें इनके कथा साहित्य में जहां तहां दिखायी देती हैं व्यक्ति के मूल संघर्ष आज अद्‌भुत और अविश्वसनीय बनते जा रहे हैं। इसीलिए वैयक्तिक चेतना समाज के मध्य इतनी कुछ अस्तिंत्ववादी बन जाती है कि किसी भी नियति या धर्मवाद की दुहाई फीकी पड़ने लगती है। व्यक्ति इतना कुछ एकांकी हो गया है कि वह

1- वही, पृष्ठ 102

3- बीच बहस में, पृष्ठ 55

किसी भी तरह काल सापेक्ष होकर दिन व्यतीत करता नजर आता है। कहानीकार ने "वीक एण्ड" कहानी के मध्य में इस जीवनगत आयाम को दार्शनिक सन्दर्भ देते हुये लिखा है ...."मरतां कोई नहीं............दिन भी खत्म नहीं होता। दूसरे दिन घड़ी लौट आती है, जो पिछली रात जंजीर तोड़कर बाहर अन्धेरे में भाग गयी थी,............जैसे यह दिन रेलवे के डिब्बे में बन्द धूप में उनींदी उसकी आंखें जिन्हें वह अपने होठों में मूंद लेती अगर आस पास इतने लोग न होते। तथा वे जानते हैं कि जो आदमी उसके कन्धे पर सिर रखे ऊंघ रहा है, कल रात उसकी देह पर था। समुद्र सी उफनती देह पर एक अवश ढेले-सा उठता मरता हुआ...........मरता कोई नहीं।"[1]

कथाकार ने व्यक्तिवादी चेतना को सामाजिक जीवन व्यापक धरातल पर देखा है। जीवनगत बहुत सारे सन्दर्भ पुरानी लकीरों की भांति मनुष्य के चेहरों पर गढ़ जाती हैं। जिन्हें बार-बार धो देने पर मिटा नहीं पाता। इसके बावजूद वे लकीरें वर्तमान में अस्तितवहीन होती है और कहीं-कहीं तो प्रेम में कटुता का कारण भी यही रहता है। सामाजिक बाधायें जहां एक ओर हैं, व्यक्तिवादी प्रणय की प्रतिष्ठा भी है।

स्त्री-पुरुष की इस प्रकार की बहुत सारी समस्यायें इतनी अधिक सामान्य नहीं हैं, जितनी कि दूर से लगती हैं।

आज की सामाजिक समस्याओं के प्रति हर लेखक का विश्वास हिल गया है। समाज बनाम दिखावे और ढोंग, पाखण्ड के गलियारे बन गये हैं। आज का आदमी निजी आंतरिक आग्रह और बाहरी परिवेश के दबाव में जुड़ रहा है।

स्त्री पुरुष का सह सम्बन्ध सामाजिक प्रतिमानों पर बिल्कुल नहीं टिका है स्त्री पुरुष दोनों ही हर तरह की स्वतन्त्रता की हामी भरते हैं जिसे उनका पारिवारिक जीवन समान धर्मी होने के कारण विसंगतियों में जूझता रहता है। इस दोहरी मानसिक पीड़ा की शिकार केवल स्त्री ही नहीं पुरुष उससे भी कुछ ज्यादा है। कथाकार वर्मा ने बहुत सारे ऐसे कथ्य चुने हैं जिनमें जीवन का हल्का टिमटिमाता प्रकाश केवल रास्ता भर दिखलाया है और वह जीवन जिसमें दोनों ने ही जीने की लालसा प्रकट की थी, ओझल हो जाता है। 'कौवे और काला पानी' की कहानी 'सुबह की सैर' का पात्र निहालचन्द्र जीवित इसलिए है कि उनको लगता है कि जैसे उनकी चोंचें अखबार पर नहीं, उनकी नींद में सुराक भेद रही हों। चिड़ियों के पीछे चीलें आतीं और उन्हें खदेरकर बचे-खुचे टुकड़ों को दबोचकर गायब हो जातीं।

...............निहाल चंद्र लेटे रहते हैं आवाज को अपनी गति के पास आने देते न हिलते डुलते। दम साधकर दिल को ढांपे रखते।"[2]

कथायात्रा के समाज सापेक्ष अध्ययन करने पर हम कुछ निष्कर्ष इस प्रकार तय कर सकते हैं। सबसे पहले ऐसा कहने में हिचक नहीं है कि कथाकार ने सामाजिक यथार्थ को पूर्वाग्रहों से मुक्त होकर उन्मुक्त होकर स्वीकार किया है। दूसरी ओर उनकी यथार्थ के भीतर वे तमाम शक्तियां खुलकर अग्रणी हो जाती हैं जिनमें आज के सामाजिक वातावरण का निर्माण है और आज के मनुष्य के संस्कार का परिष्कार है लेखक ने, तीसरी ओर यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि मध्य वर्ग में व्यक्तित्ववादी चेतना ही प्रबल हो गयी है मध्य वर्गीय चेतना के तनाव,

1- बीच बहस में, पृष्ठ 37-38 2- कौवे और काला पानी, पृष्ठ 75

टकराव संघर्ष की स्थिति में निराशा, घुटन, आक्रोश, विद्रोह, निरोध आदि इसलिए उनके कथा साहित्य में अभिव्यक्त हुये हैं। कथाकार ने सामाजिक जीवन की असंगितयों, विसंगतियों, विषमताओं और जटिलताओं को जहां एक ओर उभारा है वहीं दूसरी ओर आज की व्यवस्था के स्वच्छन्दतावादी परिवेश के निर्माण की वकालत भी की है फलतः कथानक के परम्परागत आदर्श ढह गये हैं और आम आदमी का सामान्य जीवन भी यथार्थ की गन्ध में हर स्थान में लिपटा हुआ दिखायी देने लगा है। इतना ही नहीं आम आदमी की दमित, कुंठित, आर्थिक महत्वाकांक्षाओं की पीड़ा की भी पर्याप्त अभिव्यक्ति यही है। इसलिए एक स्वर में आज के आलोचकों ने स्वीकार किया है कि निर्मल वर्मा का कथा साहित्य न तो बाहरी यथार्थ की ही अनुभूति की कथा कहता है और न ही भीतरी परिवेश गत विच्छन्ता की कहानी उनके साहित्य में तो जीवन परिवेश के दबाव में बनते बिगड़ते मानवीय रिश्ते मूल्य और संवेदना सभी अभिव्यक्त हैं।

यथार्थता परिवेशगत जीवन और अनुभूति सत्य लेखकीय दृष्टि का एक अटूट रिश्ता उनके साहित्य में पंक्ति.......पंक्ति के मध्य विद्यमान है। लेखक को कल्पना का सौंदर्य इतना अधिक आनंद नहीं देता जितना कि सामाजिक जीवन चेतना का बोध। बने हुये हैं जैसे यौग भोगन लिप्सा, अनुभूति, भूख, बेकारी, सन्त्रास, उत्पीड़ा आदि कथाकार देशी-विदेशी सभी तरह के सामाजिक व संस्कृतिक उन्मेशों को एक साथ बटोरकर आगे बढ़ता रहा है उसका दृष्टिकोण जहां सामाजिक प्रतिस्थापनाओं के प्रति विद्रोही है। वहां आर्थिक स्वतन्त्रता का भी पक्षधर है।

(ग) साहित्यिक स्तर पर कथ्य और शिल्प की सृष्टि :-

कथाकार निर्मल वर्मा के समग्र साहित्य को अनुशीलित करने के बाद वहां एक ओर सामाजिक, सांस्कृतिक स्थितियों का सन्निवेश मिलता है वहां दूसरी ओर परम्परा से हट कर साहित्यिक स्तर पर कथागत एवं शिल्पगत नवीनता मिलती है। साहित्यगत इन दोनों आयामों को हम क्रमशः विवेचित कर सकते हैं। आज का कथा साहित्य परिवेश के समस्त दबावों के बीच में संघर्षरत है कारण यह है कि आज का व्यक्ति अपने कार्य व्यापारों का पुन्ज बन गया है। और कथा साहित्य इसी यथार्थ का आत्म साक्षात्कार कराता है। वर्मा जी ने जीवन का कटु और तिवृत्त यथार्थ का आत्म साक्षात्कार कराता है। वर्मा जी ने जीवन का कटु और तिवृत्त यथार्थ ही कथा साहित्य का वर्ण स्वीकार किया है। उनका यही दृढ़ मत है कि एक लेखक को समसामयिक समस्याओं और प्रश्नों से अपने को अलग नहीं रखना चाहिये।[1] यथार्थ से साक्षात्कार के भिन्न रूपों के पार्श्व में कथाकार ने बहुत अच्छी रुचि से आत्म चेतना के स्तर बुने हैं। "वे दिन" उपन्यास में परिवेशगत यथार्थ का जायजा लेते हुआ लेखक कहता है ....हम इन्हें, झूठे..........बसन्त, के दिन कहा करते थे। वे ज्यादा टिकते नहीं थे। लेकिन जब वे आते थे लोग आतुरता से उन्हें निचोड़ लेते थे उनकी आखिरी बूंद तक। शहर की सड़कें लोगों से भर जातीं ल्बेंकमैन्ट की बेन्चों पर बूढ़ी औरतें अपने-अपने पैरम्बुलेटर के समय ऊंघती रहतीं।"[2]

इस उपन्यास में लेखक ने महायुद्ध के समय झुलसे यूरोप के परिवेश का चित्रण मानवीय स्थिति के साथ किया है। वैसे इन पंक्तियों में मानवीय सम्बन्धों की उपमा है। और परिवेश की

1- नवभारत टाइम्स, नवम्बर 1986 (साक्षात्कार) 2- वे दिन, पृष्ठ 44.

बदलती चेतना भी है कथाकार कह देना चाहता है कि रिक्त स्थान पर एक बेढ़ंग रुक्षता ने जगह घेर ली है। उस जगह को सरसता में बदलने के लिये आदमी हर स्तर प्रयत्नशील है। जिसके कारण यह सौन्दर्य से परिपूर्ण क्षणों की तलाश करता नजर आता है।

वसन्त ऋतु का बदलना, परिवेश के परिवर्तन की एक खूबसूरत किन्तु यथार्थ कहानी है। यथार्थ के चौखटे में लेखक ने केवल परिवेश को ही नहीं देखा बल्कि व्यक्तियों के परस्पर सम्बन्धों और संवेदनाओं का उस फ्रेम में दायरा बनाया है। कथाक़ार कहता है ....,"एक उम्र में यह विचार भी बहुत रुआंसा लगता है कि कोई खाली-खाली सा होकर तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा है.........एक संग बहुत सुख सा भी होता है -बाद में लगता है कि तुम सबसे अलग हो तुम एकदम बड़े हो गये हो..........और यह असम्भव सा ....सा लगता है कि जिस घड़ी तुम सो रहे हो उस घड़ी तुम्हारी कोई बाट जोह रहा हो ....तुम्हें अचानक पहली बार अपनी अनिवार्यता का पता चलता है।"[1]

यथार्थ संवेदना के आत्मचेतना पर ये पंक्तियां उद्घृत होने से अधिक तीव्र और गहन हो गयी है। इस यथार्थ के पहलू में रूमनियत भी है और अस्तित्वबोधीय भी है। कथाकार बन्धनहीन स्वतन्त्रता की हामी भरता है और दूसरों की स्वतन्त्रता के लिये कुछेक बन्धन ही स्वीकार करता है इसलिए इस प्रकार का यथार्थ कटु जीवन के आयामों से जुड़कर रूमानियत में भी तिक्त होता चला गया है। अजनबी स्त्री पुरुष सम्बन्ध को यथार्थ के धरातल पर इस उपन्यास में बहुत अधिक बुना गया है। उपन्यास की कथागत सीमायें व्यक्तियों के आत्म चेतना में सटी हुयी है जिससे हर देश और हर व्यक्ति के अनुरूप का यह उपन्यास सहज हिस्सा बन गया है। इस उपन्यास की पात्र रायना इस बात का अनूठा उदाहरण है कि भीषण विपत्तियों और दुखों को झेलता हुआ भी इंसान के भीतर आशाओं का समुद्र सूखता नहीं बल्कि नये-नये स्थानों और नये-नये व्यक्तियों से सम्पर्क होने के पश्चात वह उत्तरोत्तर आशाओं से फिर भर उठता है। लेखक ने इंस कथानक को निस्सीम बनाते हुये मानवीय नियति की सर्वभौमिकता का नये आयाम और नये पहलु छुये हैं। "लाल टीन की छत" उपन्यास में कथाकार ने एक ऐसी लड़की का वर्णन किया है जो पहाड़ी पर रहती है और सच्ची झूठी स्मृतियों से खेलती रहती है। यद्यपि इस कथा परक खेल में बहुत बड़ा असहनीय सम्मोहन है जिससे वह कभी सोच में डूबकर तिलमिला उठती है। तो कभी देहात्म बोध के कारण बहुत अधिक उन्मुक्त हो जाती है। कथाकार ने उस पात्र में परिवेश का यथार्थ और यथार्थ का उन्मेष दोनों ही जुड़वां बना दिये हैं। देखें- "शुरू सर्दियों की वह रात काया को हमेशा याद रहती है। .... एक पुराने फोटो की तरह ....जिसकी आकृत्तियां, रंग सब फीके पड़ जाते हैं। लेकिन वह सांस घड़ी, वह मौका, वह दिन साफ पत्थर की लकीर ....सा चमकता है ....। वह सर्दियों की पहली शाम थी जब मंगतू ने सब कमरों में आग जलायी थी।"[2]

स्मृतियों के गर्भ में खेलती हुयी वह पात्र असीम सम्मोहन से और अज्ञात आशंका से उभयनिष्ठा हो जाती है और उसे अहसास होता है कि वह फोटो आज भी उसके सीने से फड़फड़ा रहा है। बाहर से भले ही धुंध चढ़ गयी हो लेकिन भीतर से वह फोटो मन मस्तिष्क में चिपका

1- वे दिन, पृष्ठ 79

2- लाल टीन की छत, पृष्ठ 54

हुआ ही है। पात्र की मानसिकता का यह कथ्यगत उदाहरण अनूठा ही नहीं है बल्कि परिवेश के यथार्थ को निस्छलता के साथ उगल रहा है। काया की देह एक दम शिथिल हो गयी थी लेकिन भीतर से उसे एक बहुत बड़ा झटका सा लगा था जब उसने अपने भीतरी परिवेश को सम्मोहन की दृष्टि से देखा था।

सम्बन्धगत यथार्थ के अनेक पहलू रूमानियत ढंग से इस उपन्यास की कहानी से जुड़े हुये हैं। जीवन का वह दुरूह हिस्सा जो केवल चेहरे के भाव मात्र से बाहरी दुनिया समझ लेती है लेकिन पात्र विशेष की यह दुनिया चेहरे से नहीं मन में गुंथे उस सूक्ष्म तार से समझती है जिसका एक छोर अतीत के गर्भ के भीतर बैठी तन्द्रा से जुड़ा हुआ हो। काया की हालत कुछ ऐसी ही है- 'बाहर अंधेरे में पानी बहुत बरस रहा है। बड़ा अजनबीपन है लेकिन वह आंखें फाड़-फाड़कर कुछ ताक रही है। तुम हवा में क्या ताकती रहती हो? बुआ का स्वर एकाएक बहुत कोमल हो आया। मैं कई दिन से तुम्हें देखती आ रही हूं....कभी-कभी तुम्हें देखकर लगता है, जैसे तुम आंखें खोलकर सो रही हो। .....वह चुप हो गयीं, किसी बहुत नीचे दबी बात को उखाड़कर....जैसे तुम सामने होकर भी कहीं और चली गयी हो।'[1] काया हताश मन से बड़े अजीब वातावरण को सहन करती चलती है। कभी-कभी तो उसे ऐसा लगता है कि वह समूची दुनिया से मुंह मोड़कर छुटकारा पा लेना चाहती हो। यह सब लेखक ने पूर्व के सम्बन्धगत यथार्थ की झांकी में निरूपित किया है और बताया है कि सम्मोहनपरक रिश्तों को व्यक्ति कभी भी दिल से निकाल नहीं पाता और अन्य रिश्ते जिनका ढांचा सहज, अर्थशास्त्र या संस्कृति से जुड़ा हो, कूड़े-करकट की भांति उछाल दिये जाते हैं। कथाकार ने अन्तर्मन के अतीत पर्व में मन के सुख को 'काया' पात्र में अन्वेषित किया है जो सपाट भी है और सहज भी। काया बड़े ही दुरूह चरित्र की लड़की है। पहाड़ियों पर रहकर उसके हृदयगत भावों को प्रवास का वातावरण नकारता ही चलता है। कथाकार ने ऐसे वातावरण की सम्बन्धगत यथार्थता पर बल दिया है। जीवनगत यथार्थ की झांकी जहां एक ओर मानवीय नियति पर टिकी हुयी है वहीं दूसरी ओर परिवेश के साथ भी। 'एक चिथड़ा सुख' नारी और पुरुष के जीवन की ऐसी कहानी समेटे हुए उपन्यास है जिसमें भावनाओं की गुंजार और वैचारिक दौड़-धूप का सामंजस्य खुलकर हुआ है। 'बिट्टी' पात्र इच्छा भरे नेत्रों से जीवन को बुनती चलती है। जीवन ऊहात्मक बन गयाहै। भावनाओं का प्रायश्चितपरक रवैया करवट बदल रहा है। उसकी आंखों में अजीब सी चमक कभी हो उठती है तो कभी तमाम चीजों को अपनी आंखों से बाहर बटोर लेना चाहती है। वह प्रसंग जब और अधिक सार्थक हो जाता है। जब ''बिट्टी'' धीरे से नित्ती भाई के चेहरे पर आंखें गड़ाकर कहती है ....''तुम क्या सचमुच उससे प्यार करते हो? तुम क्या सोचती हो? मैं सोचती हूं ....तुम कुछ करते क्यों नहीं हो? बिट्टी ....तुम्हें सब कुछ आसान लगता है। ....मुझे इतना मालूम है, वह कितना तड़पती है। तुमने ....तुमने कभी ....।''[2] इस प्रकार के सम्वाद से उनके चेहरे पीछे छाया में रंग जाते हैं। सहसा वे सिमटे हुये हो जाते हैं और फटी-फटी आंखों से अहसास करने लगते हैं कि न तो वे अपने भीतर हैं और न बाहर। सामान्य जिन्दगी उनके लिये दूभर हो गयी है। बिट्टी ने चारों ओर घूमता हुआ जीवन कुहासे में लिपट गया है वह जी भर कर जी भी नहीं सकती है। और भावहीन होकर रह भी नहीं सकती है उसकी आंखों में एक असाधारण सी चमक उमड़ आती है। और वह चमक ऐसी

1- लाल टीन की छत, पृष्ठ 112 2- एक चिथड़ा सुख, पृष्ठ 94

प्रतीत होती है जैसे कि देह के किसी ऐसे पर्दे को छानती हुयी आयी है। जिसने सारे जीवन में सिहर भर दी है। बिट्टी के जीवन की इस खुली किताब पर एक फ्रेम चढ़ा है। जिसमें कहीं भीतर के अंधेरे का टिमटिमाता प्रकाश भी है कथाकार बिट्टी पात्र के जीवन में भीतर उमड़ते उद्दाह को बूंद-बूंध उड़ेल लेना चाहता है। जिसके कारण बिट्टी के जीवन का वह सारा भाग जिसे उसने केवल सोच में ही जिया है खुद-ब-खुद खुल उठता है। भावनाओं की रंगीन तस्वीरें अजीब व्यंगात्मक तब बन जाती है जब वह नित्ती भाई को उदासी में घिरा हुआ पाती है बिट्टी के सरकते जीवन की कहानी बाहर के परिवेश में आकर कुछ ठिठक गयी है पीछे मुड़कर अपने इतिहास के पन्ने उलटना चाहती है पर मुड़ नहीं पाती है। परिवेश के साथ जीवन बनी हुयी बिट्टी का हौसला किस प्रकार हो गया है। विचारणीय है ...., "एक थरथराती सी कौंध उसकी शिराओं में लपकी, उसने आंखें मूंद लीं, मार्च की हवा, रिहर्सल की आवाजें डूबते सूरज की पीली चमक ....सब कुछ गुलेल की काली नोंक और गले के भीतर फंसी सांस पर थिर हो गया था ....क्या यह असली है?"[1] दरअसल उसने इतना ही जाना कि यह सब जीवन की रहस्य है जिसमें अगल-बगल के पिछवाड़े भी हैं, सामने का अंधेरा भी है और पीछे का प्रकाश ही।

कथाकार कहना चाहता है कि आदमी के लिये यह सब कितना अधिक अभिशाप है कि वह विस्मय से अजीब हरकतें देखता रहता है। और मुखौटा लगाकर सब कुछ छिपाता रहता है। कथाकार की दृष्टि एक बिट्टी पात्र में ही जागरुक है ज़िनके मन में बूंद-बूंद रिसती हुयी चिंतायें जलती बुझती टपक रही हैं। लेखक जीवन के उन सभी बुनियादी आयामों को नये स्वर प्रदान करना चाहता है जिनको आज तक अन्य कथाकारों ने बहुत दूर से अनछुये रुप में देखा है। "एक चिथड़ा सुख" उपन्यास कथा की दृष्टि से मनोवैज्ञानिक अनुभूत तथ्य को उभारने वाला उपन्यास भी है जो आज का है। और आगे का भी है निर्मल वर्मा की कहानियों में कथानक की दृष्टि से सौन्दर्य, प्रेम, वेदना, रहस्य, प्रकृति, विश्वास, अविश्वास जहां एक ओर वहां दूसरी ओर विसंगित व्यर्थता बोध, अकेलापन, अजनबीपन, संघर्ष, शून्यताबोध आदि सब कुछ है। कहानीकार वर्मा थोड़े शब्दों में पात्र का समूचा स्वरूप अन्तर सब कुछ स्पष्ट कर देता है 'लन्दन की एक रात' कहानी में प्रेम के सन्दर्भ को जीवन्तता प्रदान करते हुये कहते हैं कि प्रेमिकाओं के नेत्र सोती जागती उस गुड़िया से हैं, जो सिर पीछे होते ही मुंद जायेंगे तथा सीधे होते ही खुल जायेंगे।"[2] यह तथ्य केवल प्रेमिका के साथ ही नहीं है बल्कि अन्य जीवनगत सम्बन्ध के साथ भी है। कथाकार ने इस प्रकार के अलग-अलग पात्रों के आश्वासन भरे जीवन को आज की स्याही और तूलिका से रंग भरते हुये देखा है। 'इतनी बड़ी अकांक्षा' में जिप्सी लड़कियों की आंखें काली हैं। "पिता और प्रेमी" कहानी में बच्चों की आंखें नीली हैं ये सारे रंग स्थिर, स्निग्ध, शान्त, अबोध आदि भावों का अंकन करने में सिद्ध हैं। प्रेम वर्मा के कथा साहित्य में भाववाचक संज्ञा बनकर ही आया है। रुमानियत का अंश इसलिए बहुत अधिक बढ़ गया है। डा. सुरेश सिन्हा ने मुक्त विचार से इस धारणा की पुष्टि की है। "निर्मल का मूल स्वर रोमांटिक है, उन्होंने एक दो अपवादों को छोड़कर प्रेम कहानियां ही लिखी हैं। ट्रेजडी यह है कि इन सारी प्रेम कहानियों में कथा एक ही है केवल नाम और सन्दर्भ हर कहानी में परिवर्तित होते गये हैं।"[3]

1- वही, पृष्ठ 68
2- जलती झाड़ी, पृष्ठ 114
3- हिन्दी कहानी का उद्भव और विकास, पृष्ठ 595

रूमानी प्रेम प्रसंगों के अनेकानेक रूप उनकी कहानियों में मिल जाते हैं। 'दहलीज' कहानी में शम्मी भाई की उपस्थिति मात्र ही रूनी का दिल धौंकनी की तरह धड़कने लगता है। वे मेज के नीचे अपना पाव उसके पांव पर रख देते हैं।''[1] लवर्स के नायक को यह सोचना अच्छा लगता है कि वे दोनों एक ही शहर में रहते हैं।[2] बौद्धिक झुकाव आज के व्यक्ति की सहज प्रवृत्ति। आज की कहानी में व्यक्ति की रागात्मकता का अनुभव ही बौद्धिक अनुभव की निष्पति है।

''पिछली गर्मियों में'' कहानी में कहानी के पात्रों को यह बात अच्छी लगती है कि वे घरों में बाहर सड़क पर चल रहे हैं''।[3] इस प्रकार की यथार्थ संवेदना पात्र विशेष की आत्मचेतना पर भिन्न-भिन्न प्रकार से गुजरती है ''बीच बहस में'' कहानी ''वीक एण्ड'' की नायिका को यह बात आश्चर्य युक्त कर देती है कि वे एक के बाद दूसरे दिन भी साथ रह रहे हैं।''[4] अनुमति की समग्रता का सार्वभौमिक सत्य नहीं हुआ करता। ''परिन्दे'' में संकलित कहानी ''तीसरा गवाह'' की नीरजा की यथार्थ सम्वेदिता विभिन्न स्तरों पर उद्घाटित होती है। वह प्रेम और सहानुभूति के होते हुये भी कोर्ट रूम में बिताये गये दस मिनट में ही अपना निर्णय बदल देती है।''[5] कहानीकार वर्मा ने अपनी कहानियों में विविध धर्मी विविध रंग कथानक को लेकर भरे हैं स्त्री-पुरुष के सह सम्बन्ध पर जहां उनकी लेखनी जमी है। कहानीकार भाव सम्वेदित हृदय को खुले पृष्ट प्रदान करता है फिर वे चाहे अन्दरूनी हों या बाहरी। सबसे बड़े मजे की बात तो यह है कि प्रेम-प्रसंग के बदलते, घिसते, फिरते सम्बन्धों को कभी लेखक ने जान दे दी तो कभी शमशान घाट पर उन्हें ले जाकर आग भी लगा दी है लेखकीय तटस्थता द्रवित दोनों ही भावों से एक जैसी ही रही है कत्यात्मक सूत्र भिन्न होते हुये भी प्रमाता वर्ग को बरबस अपनी ओर आकृष्ट करके ऐसा बन्धनमय बना देते हैं कि वह सोचने लगता यह सब मेरा ही है, मेरे लिये ही है। निर्मल वर्मा के कथा साहित्य में अनेक सूक्ष्म एवं नवीन प्रयोग मिलते हैं। वैसे वर्मा के कथा साहित्य में शिल्पगत ऐसा प्रयोग नहीं है। जिसे कथा आन्दोलन प्रतिमान माना जा सके। वस्तुतः कथाकार कथानकर का तानाबाना बुनता चलता है, शिल्प प्रयोग उसका प्रतिपाध नहीं बनता। महेंद्र भल्ला ने तो ठीक ही लिखा है...........''सार्थक है। वह अनुभूति जो कथाकार ने आपके साथ-साथ इसी क्षण में प्राप्त की है। बिना कार्य कारण श्रंखला में बंधी घटनाओं और रंग-बिरंगे चरित्रों के मायाजाल की दृष्टि किये बिना पाठक पर कोई एहसास जताये और बिना अपने कंधों पर सारे जहां के दर्द की झूठी लाश उठाये,...........किसी एक वाक्य किसी एक घटना, किसी एक चरित्र अथवा किसी एक उपक्रम से उसका रचनात्मक संगठन नहीं हुआ इसीलिए वह अपने समूचे रूप में ही सार्थक है। उसका एक-एक रेशा महत्वपूर्ण है।''[6]

शिल्पगत जटिल अनुभूति को वर्मा ने संश्लिष्ट कर इस प्रकार गूंथा है जिसे 'वे दिन' उपन्यास में स्त्री पुरुष के सम्बन्ध के बीच भली भांति देखा जा सकता है कथाकार जटिल मनःस्थिति को चारों ओर से बिखराव फैलाव के आग्रह में लाकर खड़ा कर देता है। उदाहरण विचारणीय है............''एक जिये हुये क्षण की बासी छाया-सी, जिसे हम ने छोड़ सकते हैं, न दोबारा पकड़ सकते हैं। रायना ....उसका मुंह उठाकर मैंने अपनी तरफ कर लिया। वह अजीब निरीह आंखों से मुझे देखती रही। उस क्षण मैं उसे कुछ कह नहीं सका,............उस सुख के बारे में भी

1- जलती झाड़ी, पृष्ठ 90
2- वही, पृष्ठ 8
3- पिछली गर्मियों में, पृष्ठ 118
4- बीच बहस में, पृष्ठ 35
5- परिन्दे, पृष्ठ 45
6- समकालीन कहानीः दिशा और दशा, पृष्ठ 175

नहीं, जो मैं अपने लिये छीनता रहा था, बिना चिन्ता किये हुये कि वह इस दौरान कितनी खाली होती गयी है।''[1]

कथाकार ने अपने बिखराव और अलगाव को इस लघु प्रसंग में इतना दुरूह रूप दिया है कि शिल्पगत प्रयोग अपने आप में बौना हो गया है। कथाकार रचनात्मक पक्ष की अपेक्षा तो नहीं करता लेकिन अनुभूति खुद-ब-खुद इतनी सजग हो उठती है कि मामूली शब्द गहरे होकर मनःस्थिति उद्घाटन करने लगती है। उपन्यासकार वर्मा शिल्प वैभव के प्रति मौन नहीं हैं। उन्होंने शब्द सुलगते हुये देखे हैं और अर्थ चिन्गारी लिये हुये।

इन शब्द-अर्थ प्रसंगों को 'एक चिथड़ा सुख' उपन्यास में भलीभांति देखा जा सकता है। -- ''बिट्टी'' के शब्द चुक जाने के बाद भी होंठों के बाहर फिसलते जा रहे थे- कमजोर, शिथिल, बेमानी लेकिन एक लीक में बंधे हुये। अपने बवंडर में घूमते हुये, दोहराते हुये............डोंट टच मी, डोंट टच मी।''[2]

बिट्टी के फड़फड़ाते होंठों की भाषा और धड़कनों भरे हृदय की धधकती ज्वाला ने इन अंग्रेजी के लघु वाक्यों के प्रयोगों से स्पष्ट कर दिया था कि वह ना उम्मीद रखती है और न दूरस्थ झाड़ियों में अपने को उलझाना चाहती है गहरी अनुभूति क्षण भर के लिये भले ही उन्हें विचित्र कर दिया हो लेकिन इतना अवश्य था कि वे कहीं भी अटक नहीं रहे थे। इस प्रकार के वाक्य विन्यास से लेखक ने स्पष्ट कर दिया है कि जीवन जितना दुरूह है उतना उसका प्रयोग भी वैसे शब्दों के प्रयोग बल पर स्पष्ट नहीं हो पाता मन की बात शब्दों से हूबहू बांधी नहीं जा सकती फिर भी इस उपन्यास के हर पात्र ने प्रयास किया है कि जीवनगत गुत्थी को नये अर्थ देकर सुलझाया जाये। कथाकार वाक्य विन्यास, शब्द प्रयोग को कोई मौलिक देन नहीं मानता। वह प्रयुक्त पात्रों के माध्यम से कहलवा ही देता है कि आज के जितने टेढ़े-मेढ़े रास्ते हैं उतने ही शब्दों के प्रयोग भी इस दृष्टि से कथाकार को बहुत सफलता मिली है। हिन्दी में डायरी शैली के माध्यम से पात्रगत अनुभूति को अभिव्यक्ति दी गयी है कथाकार वर्मा ने तो इस शैली में अंग्रेजी वाक्य के प्रयोगों के आधार पर और अधिक बलपूर्वक भीतरी मन की उकलाहट को उड़ेल दिया है जो बात शिष्टतावश हिन्दी भाषा से बाधित नहीं हो पाती उसे अंग्रेजी के प्रश्रय में कथाकार ने बांधा है। कथाकार की सार्थकता उसके शिल्प पर अधिक निर्भर करती है उस शिल्प की सार्थकता कथानक के उद्देश्यपरक दृष्टि की अपेक्षा रखती है इस प्रकार कथानक और शिल्प की सह सम्बन्ध रेखा सोद्देश्य ही है 'लाल टीन की छत' उपन्यास में दृष्टि में एक ऐसे शैल्पिक संयोजना की कहानी है।

जिसमें एक लड़की के इर्द गिर्द सारी झूठी और सच्ची स्मृतियां घूमती रहती हैं। शिल्पगत प्रयोग बहुत बड़ी बारीकी से एक हल्की छुअन को लेकर कथानक से जुड़ता रहता है। शब्द, स्मृति मूर्तरूप कैसे धारण कर लेती है इस विन्यास भाव को उपन्यासकार ने भली भांति संवारते हुये लिखा है............''वह आगे बढ़ी तो सामने शीशे के नीचे वे शब्द अब भी लिखे थे, जो वह बहुत पहले से देखती आयी थी ....अटैन्शन प्लीज, स्टैप्स ए हीड। सिर्फ दो सीढ़ियां उतर का ड्राइंग रूप आता था पहले जब आती थी, तो पंजों पर खड़े होकर शीशे में अपना चेहरा देखती थी इस बार सीढ़ी से उतरते ही वह दिखायी दिया उसका अपना चेहरा, और न जाने क्यों वह उसे बहुत बदला सा दिखायी दिया...........पिछले दिनों से अलग, जैसे दो बहुत उदास आंखें उसकी तरफ

1- वे दिन, पृष्ठ 180 2- एक चिथड़ा सुख, पृष्ठ 120

घूर रही हों।''[1] लेखक ने काया की मनःस्थिति का और असमंजस से भरे हृदय का बदलता हुआ भाव पहचाना है। लगता है कि काया के समक्ष धुंध छा गयी है और उजाला मिट गया है।

जहां उसे देखती है स्मृतियों के कारण भारीपन ही नजर आता है उसे अहसास होता रहता है कि वह कथा भी मन मस्तिष्क की याद को वर्तमान के झोंकों से बुहार नहीं पायेगी। इसीलिए हर पल बहुत अजीब सा और बढ़ेगी पहचान लिये हुये उससे भूत भविष्य की कुछ बातें कहता रहता है। शिल्प तो इस चुने बने अधबुने शब्द प्रयोग से काया का भीतरी संसार ठहर सा गया है। और उसे अनुभूति होती है कि किसी ने अपने हाथों से बहते पानी को रोक लिया है और हाथों के ऊपर छलछलाता वह पानी नीचे गिरता जा रहा हो।

काया 'लाल टीन की छत' उपन्यास की विशिष्ट पात्र है वह मन के डूबे हुये हिस्से को हल्के-हल्के शब्दों के माध्यम से परिवेश में उरेहने का प्रयास करती है। और वह पहाड़ी की जिन्दगी में अपने ढहते हुये वर्षों को पुनः समेट कर फिर से अतीत में खो जाने की पहल करती है और कह भी देती है............''जब लम्बे अरसे बाद आधी जिन्दगी शहरों में गुजरा कर, मैं दोबारा उस पहाड़ी स्टेशन में आयी, तो हमारा मकान वैसा ही खड़ा था जैसा मैने बरसों पहले अपने बचपन के दिनों में देखा था ....वहीं 'लाल टीन की छत' वही उजाड़ छज्जा, वही सीढ़ियां जो मिस जोसूआ के अहाते में उतरती थीं। कुछ भी नहीं बदला था।''[2]

इस प्रकार की घुलती-मिलती स्मृतियों के कारण काया बिल्कुल निश्चल शान्त होकर वर्षों बाद भी अपने पूर्व को विस्मृत नहीं कर पाती। यद्यपि लम्बे अरसे का फीका उजाला उसके चेहरे पर उभर आया था। भीतरी तह में वह अजीब सी असहाय सी मूर्ति बन बैठी थी फिर भी जिन्दगी की पुनरावृत्ति में वह क्षण उसे पूर्ण दिशा की ओर फिर खींच ले गया। पिछली स्मृतियों की परतें एक-एक होकर उभरती गयीं और वह स्थिर आंखों से बिल्कुल शान्त चेहरे पर लिखी इबारत को पढ़ने में जुट गयी। उपन्यासकार ने परिवेश का और काया की मन की स्थिति के सह सम्बन्ध पर कहीं भी धुंध नहीं चढ़ने दी बल्कि उसने अतीत और वर्तमान के फड़फड़ाते सामंजस्य को परिवेश से जोड़कर अमर बना दिया है। शिल्प के द्वारा सूक्ष्म मनःस्थितियों को पकड़ने में, अभिव्यक्त करने में, उभारने में उपन्यासकार को विशेष सफलता मिली है।

कहानीकार निर्मल वर्मा से उपन्यासकार निर्मल वर्मा से कहीं और अधिक बढ़कर है शिल्प की दृष्टि से उन्होंने छोटे-छोटे कथानक के माध्यम से दृश्य जग घटनाओं से स्थान दिया है। लघु प्रसंग, व्यक्ति विशेष का चरित्र और जीवन का अन्तर विरोध जितना कथानक की दृष्टि से उजागर हुआ है उतना ही शिल्प की अभिनव प्रयोग से बिखरी गुथी अनुभूतियां उजागर हुयी हैं। डा. देवीशंकर अवस्थी ने कथानक और शिल्प का समंजन नये कहानीकार के बीच देखते हुये ठीक ही तो लिखा है। ....नया कहानीकार चौखटों से मुक्त होकर उन सूखे और कठोर नामहीन चीजों को छूने का प्रयास करता है। जो पकड़ के बाहर है।''[3]

वर्मा पात्रगत अनुभूति को कहानी विधा में बड़े ही मार्मिक ढंग से हल्के शब्दों में प्रयोग के माध्यम से व्यक्त करते चलते हैं। घटना या परिस्थिति का संकेत अत्यन्त अमूर्त ढंग से दिया जाता है। फिर कहानीकार ने एक हरी अनुभूतियों को संशलिष्ट अनुभूतियों को जगह-जगह जोड़ दिया है। कहानी का नया शिल्प का प्रयोग सचेष्टित होकर उतना नहीं है जितना कि कथावस्तु की

1- लाल टीन की छत, पृष्ठ 103 2- लाल टीन की छत, पृष्ठ 123 3- नई कहानी: संदर्भ और प्रकृति, पृष्ठ 179

आन्तरिक व्यवस्था का परिणाम होकर। इस दृष्टि से वर्मा का कहानी शिल्प कोई कृत्रिम प्रक्रिया सिद्ध नहीं हुआ। वह कहानी के अन्दर का हिस्सा बन गया है.............देखिये ....''वही बंगला था'' अलग कोनों में पत्तों से घिरा हुआ ....मौन की अथाह गहराई में डूबा हुआ है। ....बहुत बरसों पहले एक रिकार्ड के नीचे छतरी से आ रही है। ....ताश के पत्ते घास पर बिखरे हैं।''[1] 'दहलीज' कहानी का यह अग्रभाग जीवन परिवेश का एक नमूना है रूनी को इतने वर्षों के बाद भी लगा कि वह बंगले के सामने खड़ी है और सब कुछ वैसा ही है जैसा कि कभी वर्षों पहले था बसंत का खुष्क नरम मिला हुआ हवा का रूप सांय-सांय करता हुआ आज भी बह रहा है लान के उपन की ओर फुनगियां फिर एक-दूसरे से उलझ रही है। आदि-आदि। रूनी ऐसा सोचकर प्रतीकात्मक दृष्टि से खुद-ब-खुद उलझती जा रही है। कुछ क्षणों के लिए वर्तमान के तेज हवा के झोकों में खो जाना चाहती है। रूनी का यह दिन वर्तमान, एक साथी एक ही जमीन के उगे हुए एक ही वृक्ष की टहनी में कांप रहा है। कभी उसे साथ संसार खामोश दिखायी देता है। कभी उसे हर वनस्पति के होंठ फड़कते नजर आते हैं। इसी तथ्य को कहानीकार ने शैल्पिक दृष्टि से नये आयाम प्रदान करते हैं। लिखा है कि ''और तब रूनी ने अपनी पलकें उठा लीं, छत की ओर एक लम्बे क्षण तक देखती रही, उसके पीछे चेहरे पर एक रेखा खिंच आयी...................मानो वह एक दहलीज हो।''[2]

इस तरह का सहमा, संकुचित कथानक प्रयोग विधि से कथाकार को बहुत भाया है। शब्द कितना अधिक मूर्त रूप धारण कर लेता है यह भी कथाकार की मौलिक सूझ-बूझ है ''दिल्ली, इस एक शब्द में कितनी स्मृतियां छिपी हैं--- शिमला---कालका की सांप बलखाती टेढ़ी-मेढ़ी लाइन, लम्बी-लम्बी अंधेरी सुरंगें और रेल के डिब्बे की खिड़की से बाहर हवा में फिसलती वारें।''[3]

कहानीकार निर्मल वर्मा ने मन के सूक्ष्म स्तरों के अनुरूप ही शब्दों के सूक्ष्म प्रयोग कथानक में पिरोये हैं। वस्तुतः विचार और भावना अमूर्त प्रतिस्थापना है जिसे अमूर्त अर्थ सन्निहित में ही समझाया जा सकता है। अर्थ संकोचन, वैविध्य अवधारणा से अधिक सटीक तब बनते चलते हैं। जब पात्रगत सतरंगी तार मन की छुअन को लेकर प्रस्तुत हुए हो। कहानीकार निर्मल वर्मा की हर कहानी में विशेषता कदम-कदम पर है। इसी विशेषता के प्रयोग विधि से कथाकार मनःस्थिति को बारीकी से पकड़ने में सिद्ध हस्त हो सका है। डा. नामवर सिंह ने बहुत ही विलक्षण ढंग से कथाकार के मन तत्व को एक सूत्र में बांधते हुए लिखा है कि......................''संगीत का सा प्रभाव उत्पन्न करने की सामर्थ्य निर्मल वर्मा की कहानियों में है।''[4]

कथ्य के अनुरूप के भाषा के भिन्न-भिन्न रूप निर्मल वर्मा की कहानियों में मिलते हैं वही प्रयोग अजनबीपन की अनुभूतियों को गहराते हुए वातावरण को साकार बनाते चलते हैं। इतने पर भी अंग्रेजीकरण की प्रक्रिया नगरों, महानगरों, देश-विदेश में रहने वाले लोगों की दिलचस्पी की याद दिलाती है। भाषा का परिधान लेखक की अनुभूति को साकार बनाता चलता है और भाषा का इंगित स्वरूप धुंधलके को हटाता हुआ सही मायने में फ्रेम को तैयार करता है। दो-चार उदाहरण दृष्टव्य हैं................... ''क्या यह अजीब बात नहीं है कि जब हम कभी मौत, यातना या दुर्घटना की बात सुनते हैं या सुबह अखबार में पढ़ते हैं, तो हमें यह विचार कभी नहीं आता

1- मेरी प्रिय कहानियां, पृष्ठ 11
2- मेरी प्रिय कहानियां, पृष्ठ 19
3- वही, पृष्ठ 81
4- परिन्दे, पृष्ठ भाग

कि ये चीजें हम पर हो सकती हैं या हो सकती थीं।''[1]

++++ ++++ ++++

गाड़ी ठहरने पर हमने सब सामान जल्दी-जल्दी नीचे उतार दिया। मार्थो ने बड़ी लड़की के दोनों गालों को चूमा, मुझसे हाथ मिलाया और फिर वह खुद भी नीचे आयी। काफी देर तक वह अपने सामान के बीच खोई सी खड़ी रही, जैसे उसकी आंखें कुछ टटोल रही हों।''[2]

+++++ +++++++ +++++ ++++

एक पागल इच्छा हुयी कि उन्हें कमरे में जैसे का तैसा छोड़कर भाग खड़ा हो। किसी को पता भी न चलेगा, वह कहां चला गया? लड़की थोड़ी-बहुत जरूर हैरान होगी किन्तु वर्षों से वह उससे जैसे ही अचानक मिलती रहती थी और बिना कारण बिगड़ती रहती थी। यू आर ए कमिंग मैन एण्ड ए गोइंग मैन।''[3]

उपर्युक्त उदाहरण में सहज मानवीय संवेदना की गिरावट और भाषा की हकलाहट के साथ ही समूचे वातावरण को पात्रगत संवेदनाहीन बनाया गया है।

कहानीकार अंग्रेजी के वाक्य प्रयोग द्वारा रही सही संवेदना को और भी फिसल जाने देता है। दरअसल की चीत्कारपूर्ण भयावहता व्यक्ति से व्यक्ति को संवेदनाहीन बनाती जा रही है। परिवेश की जीवंतता व्यक्ति के मन की जीवंतता का प्रयोग परक उदाहरण बन गयी है। देश-विदेश के सांस्कृतिक पहलुओं को कहानीकार ने इन्हीं आधारों पर एक सूत्र में पिरोने का प्रयास किया है। भावनाओं की करवटें, विचारों की तन्द्रा, मन में उन दरवाजों को खटखटाती हैं जिनमें उसकी बसी संवेदना शून्य होती जा रही है। वर्मा की कतिपय ऐसी कहानियां हैं जिनमें शब्दों में सही अर्थ देने के लिए भाषा के अमाल बढ़ाये हैं। अर्थ चिंगारी लेकर जहां सम्बन्धों के फ्रेम जोड़ते रहे है वहां चौखटों में फंसी तस्वीरें फासायी संवाद के रार पैदा करती रही हैं। भाषा का वह पक्ष जिसे कथाकार ने बहुत अधिक नजदीक देखा है उसे रूमानियत की भाषा कहा जा सकता है। कथाकार की किसी भी कहानी के कथ्य में प्रवेश करके जब पाठक भीतर उतरना चाहता है तब उसे रूमानियत प्राणधारा का सहारा लेकर ही बहना पड़ता है। फिर चाहे वह कहानी ''लवर्स'' हो या फिर तीसरा गवाह।

कहानीकार भाषा शिल्प के माध्यम से कुछ कह सुनने में तब सिद्ध हो जाता है जब अनुभूति की उंगली पकड़कर भाषा के इशारे की ध्वनि वह अपने से जोड़ लेता है। हम ऐसा कहने में भी विश्वास करते हैं कि कथ्य और शिल्पगत ध्रुवांत कथाकार की समान्तर ही होकर चले हैं। यदि कथ्य विशेष को कहानीकार ने जटिल रूप दिया है तो वहीं दुरूह शिल्प का प्रश्रय भी ग्रहण किया है। कथाकार की भाषा इसीलिए सोच और संवेदना के आधार पर निर्मित हुयी है। इतना ही नहीं वर्मा जी के कथाकार से एक सवाल और जूझने लगता है कि कहानी का कथानक विशिष्ट है अथवा उसका शैल्पिक आवरण। यहां इस सवाल के उत्तर में यह तथ्य उभर कर आता है कि कथ्य और शिल्प भिन्न-भिन्न न होकर एक-दूसरे के पूरक ही हैं। जहां कथ्य निर्जीव सा लगने लगता है वहां शिल्प उसमें सजीवता प्रदान करता है, और जहां कथ्य सजीव है। वहां शिल्प कैसा भी हो कहानी सजीव और जीवन्त बनी रहती है।

1- पिछली गर्मियों में, पृष्ठ 38 2- बीच बहस में, पृष्ठ 32
3- कौवे और काला पानी, पृष्ठ 164

(घ) युग धर्म स्तर पर कथ्य और शिल्प की सृष्टिः-

स्वातंत्र्योत्तर साहित्य में युग धर्म स्तर का और उससे जन्मे परिवेश का खुलकर प्रयोग किया गया है। समकालीन सामाजिक बोध और सामाजिकता का बदलता स्वरूप कथा साहित्य में उभरा ही नहीं है बल्कि समग्र क्रान्ति के साथ उसके मेरू में जुड़ गया है। व्यापक रूप में युग बोध जीवन के सभी पहलुओं से सम्बन्धित होता है। जैसे राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक स्तर आदि कथा साहित्य में समकालीन बोध विभिन्न कोणों में जन्मा है। स्वतंत्रयोत्तर भारत में सबसे अधिक आदि कहीं मूल विघटन हुआ है तो वह युग बोध के स्तर पर अर्थ मूल है।

स्वतंत्रता के बाद का नवयुवक अपनी मानसिक तृप्ति के लिए बहुत अधिक परिवर्तन करना चाहता है। वह अपनी महत्वाकांक्षाओं की वजह से सामाजिक स्थितियों के प्रति तटस्थ नहीं है उसमें स्वतंत्र देश के एक स्वतंत्र नागरिक की सम्पूर्ण महत्वाकांक्षाएं हैं जिसके कारण वह हर स्थिति से जुड़ने की संभावनायें एवं प्रबलताओं पर जोर देता है। युग स्तर पर पीढ़ी दर पीढ़ी समाज सापेक्ष मूल्यों परिवर्तित हो जा रही है। इतना ही नहीं एक ही परिवार की दो पुश्तों के पारिवारिक बोध में अन्तर आ गया है जिसके कारण दो पुश्तों में मानसिक संघर्ष की तीव्रता दिन-प्रतिदिन तीव्र होती जा रही है। हर पहलू पर युगानुरुप कुछ घटनाएं घटित हो रही हैं जिसका तत्कालीन प्रतिक्रियात्मक प्रभाव पड़ रहा है।

डा. भगवानदास वर्मा ने युग बोध पर गहरी दिलचस्पी दिखाते हुए ठीक ही तो लिखा है-------''नयी पीढ़ी का बेटा अपने बाप के प्रति कृतज्ञता बोध से भीगी भावनाओं का इजहार नहीं करता। वह अपनी स्वतंत्रता पर विश्वास रखता है। अपने लिए अपने मार्ग का चुनाव किसी दूसरे पर नहीं छोड़ता। इतना ही नहीं नयी पुश्त का लड़का हो या लड़की अपनी जिन्दगी की दिशा स्वयं निश्चित करते हैं विवाह जैसी गम्भीर घटना में वह किसी भी दखलंदाजी बर्दाश्त नहीं करता। पुरानी और नयी पीढ़ी में यह फर्क है।''[1]

आज समकालीन परिवेश से सामाजिक मूल्यों में बहुत बड़ा फर्क आ गया है। इन्हीं वजहों से आज का कथा साहित्य भी वस्तु तथा शिल्प भी संश्लिष्टता के बल पर प्रगति तथा प्रयोग के क्षेत्र में नये स्तरों की खोज कर रहा है।

कथाकार निर्मल वर्मा आज के बहुमुखी दुरुह एवं जटिल जीवन की विभिन्न परिदृश्यों में अपने कथा साहित्य के भीतर समेटते गये। उन्होंने जीवनगत सत्यों को अनुभूति के माध्यम से पूर्णत्व तक पहुंचाना चाहा है इसीलिए उनके समग्र साहित्य में जीवन का सच्चा पैटर्न दिखायी देता है जो परिवर्तित संदर्भ में परिवेश बोध को मानव मूल्यों में जोड़ रहा है। आज न केवल भारत में बल्कि समूचे विश्व में झंझापात घटनाओं ने जनजीवन के सीधे रास्ते से व्यक्ति को भटका दिया है। चातुर्दिक दिशाओं में फैली हुयी यह भटकाव संस्कृत लेखकों को भी मूल उत्स से हटकर विस्तीर्ण एवं संकीर्ण झमेलों में उलझाती रही है। कथाकार वर्मा इस दृष्टि से उन अगुवा कथाकारों में गणमान्य है, जिन्होंने परिवर्तित तरीकों में व्यक्ति के इतिहास को नये पृष्ठ प्रदान किये हैं। इसी कारण उनका कथा साहित्य व्यष्टि और समष्टि, मन और बुद्धि पूर्व और पश्चिम, परम्परा और

1- कहानी की संवेदनशीलता- सिद्धान्त और प्रयोग, पृष्ठ 211

प्रयोग रूमानियत और यथार्थ आदि का युग स्तरों पर सामंजस्य लिये हुए है। इतना ही नहीं उनके मन की वह संवेदनाशील जगह जिसमें असुरक्षा ने स्थान बना लिया है उसमें भी यांत्रिक बना दिया गया है।

बेडौल, बेहूदे, भयावह, इमारत की तरह आज का भटका हुआ व्यक्ति हर चौराहे पर खड़ा किसी अज्ञात से दिशानिर्देश की अपेक्षा कर रहा है। इस अनिवार्य जीवनगत विसंगतियों में कथाकार का पात्र कहीं फटे-चिथड़े स्वर्णिम अतीत से अपने को लपेटता है तो कहीं किशोर रूमानियत भविष्य की आकांक्षा कर उधार किये हुए धागों में जीवन पट बुनने का कार्य करने लगता है।

''एक चिथड़ा सुख'' उपन्यास की पात्र बिट्टी के मन में बैठी खामोश आवाजें सांय-सांय करती संघर्ष की आपत्तियां उसके जीवन संसार को रौंदती ही जा रही हैं उसे आगे पीछे सब कुछ एक चौखटे में जकड़े हुए मुखौटे ही दिखायी देते और उनसे वह मुक्त होने के लिए लगातार छटपटाती रहती। भटकते जीवन का प्रतीकात्मक बिम्ब है।

युगबोध उपन्यासकार ने इस प्रकार दर्शाया है- ''बिट्टी का सिर कुछ टेढ़ा सा हो जाता है और गर्दन की नसें चमकने लगती हैं जैसे वह भी अल्मोड़ा और रानीखेत के जंगलों में चली गयी हो, हन्टर साहब के पीछे-पीछे चारों तरफ सिर्फ पेड़ दिखायी देते हैं। पेड़, घास और झाड़ियां और पैरों के नीचे पत्ते चरमराने लगते हैं और उसके नीचे सब कुछ दब जाता है। नल का बहता पानी, साबुन और मैल की गंध पिटते कपड़े की कराहट..........सिर्फ हवा सुनायी देती, हवा और घास और अंधेरे के बीच चार पैर और दो चमकती आंखें।''[1]

वर्मा ने अकेले अभिशप्त पात्र बिट्टी के संसार की विसंगतियों का चित्रण किया है। खामोश आवाजें, सांय-सांय करती हवा की ध्वनियों, पतझड़ के टपकते पत्ते पथराये भावहीन सम्बन्ध व्यक्ति को अकेले में अधिक निगलते रहते हैं। आदमी सन्नाटे की दृष्टि में खुद की कांपती आवाज को भयावह बना लेता है। बिट्टी पात्र भी बाहर का संसार जी लेना चाहती है परंतु भीतरी संसार ने उसको एक तीखी नशीली गंध में लाकर खड़ा कर दिया है। जिससे वह छुटकारा भी पाना चाहे तो नहीं पा सकती और ऐसा एहसासती है कि अतीत की खूंटी पर टंगा हुआ तस्वीर का रूप उसे बाहर की दुनिया को न सुनने के लिए कानों में रुई के फाहे भर देता है। वह बीते हुए नहीं बल्कि सिर्फ याद को बस याद को जी भर रहा है। इस मानसिकता से जीते हुए पात्र की मनःस्थिति का अंदाज उपन्यासकार ने पूरे उपन्यास में कदम-कदम पश किया है। बिट्टी कभी वर्तमान में पुराने बासी अवशेष के चिन्ह उरेहती है तो कभी पुराने स्मरण को घटना मानकर हल्की सी रिलीफ महसूसती है। उसके व्यक्तित्व का युगबोध विचारणीय है।..........................''उसकी इलाबादी कजिन सूखे बालों का जूड़ा और पीला माथा मूसी हुयी जीन्स पर खद्दर का कुर्ता ढीला-ढाला सिर्फ आंखें कुछ बदल जाती हैं, किसी क्रूर गोपनीय रहस्य से चमकती हुयी.............बिट्टी का स्वर उसकी पीड़ा को लबालब अपनी चीख में उड़ेल लाता है।''[2]

यह बिट्टी के मन की तस्वीर का वह रूप है जिसे उसे अपने में ही नहीं आत्मीय लोगों में भी दिखायी दे रहा है। उसके चेहरे पर स्मृति का टंगा हुआ एक पुराना फोटो है जो बालिस्त भर की देह में एक अजीब कंपकंपी पैदा करा देता है। उसका अपना दिल जो उसकी छाती की दीवार

1- एक चिथड़ा सुख, पृष्ठ 16

2- वही, पृष्ठ 99

से टकरा रहा है उसे छटपटाने के लिए मजबूर करता है। इस तरह की अहात्मक जिन्दगी का दृश्य केवल इसी उपन्यास में न होकर ''लाल टीन की छत'' में भी अधिक उकेरा गया है। काया पात्र की चक्करदार जिन्दगी का आंशिक रूप इस तथ्य का अनूठा उदाहरण है------

''आंखें मां की देह के परे उठ आयी, खिड़की के परे, जहां धूप में पहाड़ खड़े थे और देर तक उसे पता नहीं चल सका कि वह उसकी देह है, जो हिल रही है या हिलता हिल्स, की पहाड़ियां हैं जो आंसुओं के बीच कांप रही हैं।''[1]

काया का जीवन सांप की कुण्डली मारकर लाल टीन की छत से लेकर पहाड़ियों तक एक जैसा ही बैठा है उसकी जीवन की मुट्ठी दबी हुयी है जिसके कारण चिपचिपी हथेलियों में अतीत की यादें रसमग्न होती जा रही हैं। थोड़ा सा भी साहस नहीं है कि वह अपनी मुट्ठियों को खोल सके और उत्सुकता से बाहर के संसार को जगह दे सके, उसे अपने जीवन में अजीब सा भ्रम बना हुआ है कि वह कुछ भी न तो बदल सकती है और न ही अपने बदलते स्वरूप का अंदाज ही कर सकती है, उसकी मानसिकता में डबडबाते आकांक्षाओं के गीले-गीले बिन्दु रूप ढलते जाते हैं। जो उसकी सामाजिक जिन्दगी के युग स्तरीय साक्ष्य हैं।

''वे दिन'' उपन्यास में कथाकार ने युग स्तर पर मानवीय सम्बन्धों की उपमा का एहसास कराया है। अजनबी स्त्री पुरुष के सह सम्बन्धों की यह गाथा एक ओर कितनी सहज होती है और दूसरी ओर समाज की सीमाओं में कितनी तीखी होती है इस तथ्य का जीताजागता उदाहरण प्रस्तुत है............''मुझे जुलाई अगस्त की वे रातें याद हो आयीं जब यूनीवर्सिटीज के छात्र अपनी लड़कियों के साथ बाग के अंधेरे कोनों में बैठे रहा करते थे बीचोंबीच चैख की काली मूर्ति चुपचाप खड़ी रहती तो लोग शराब और बियर की बोतलों को मूर्ति के ''पेडेस्टल'' पर छोड़ जाते हैं फिर देर रात में गरीब बूढ़ी औरतें प्रेतनियों की तरह बाग में घुस आती थीं और खाली बोतलों को अपनी स्कर्ट की लम्बी जेबों में ठूंसकर अंधेरे में गायब हो जाती थीं।''[2] लेखक प्रस्तुत अंश में दो तरह के जीवन चित्र प्रस्तुत करता है। पहली तरह का जीवन उछाह लेते हुए युवक-युवतियों के रूमानियत का जीवन है जिस पर अभी उजले प्रकाश में बसंती हवा का फैलाव किया है वह जीवन एक ओर गरम है, उज्वल है, कोरे पन्ने सा सफेद है और सुखद स्वप्न की भांति विस्मयकारी भी है। युवक-युवतियां आज इसको ज़ी भरकर निचोड़ लेना चाहती हैं वे जीवन के सारे दरवाजे खोलकर युग स्तर पर उगते हुए विचारों को जोड़ देना चाहती हैं। उनके चारों ओर सरसराता हुआ सफेद आहट से भरा आज चक्कर लगा रहा है। दूसरी ओर लेखक ने उस गरीबी भुखमरी के युग स्तर पर वर्णन किया है।

जो गरीब बूढ़ी आंखों के माध्यम से उजागर हुआ है। आज का जीवन कुछ भी हो ऐसा हो गया है बड़ी विस्मयता है वही वक्त किसी के लिए अत्यंत कलात्मक है तो किसी के लिए जीवन जीने की दुरूरता से ढंका हुआ है। कहानीकार निर्मल वर्मा कहानी साहित्य में युग स्तर पर रूमानी मूल प्रवृत्ति को प्रश्रय देते हुए आगे बढ़ते चलते हैं।

कथाकार का व्यक्ति अपने रूमानी व्यक्तित्व से दूसरे को आकर्षित करता हुआ भिन्न प्रवृत्तियों का भी आत्मसात करता चलता है।

''एक शुरुआत'' कहानी के रुग्ण व्यक्ति ने अपने हाथों से कोमलता का कचूमर निकाल

1- लाल टीन की छत, पृष्ठ 87 2- वे दिन, पृष्ठ 45

दिया है। अनाकर्षण इस कहानी में ही नहीं ''धागे'' कहानी के निखिल पात्र के जीवन की कठोरता और कोमलता के द्वंद्व के बीच में बहुत कुछ मिलती है। उदाहरण स्मरणीय है......................। ''आधी रात को सहसा मेरी आँख खुल गयी थी शायद खिड़की के सामने झूले की रस्सी की परछाई को देखकर मैं डर गयी थी।..............मैं करवट बदल कर लेट जाती हूं.............मैंने अपना एक हाथ शैल के तकिये के नीचे रख दिया और मैं धीरे-धीरे उसके पास खिसक आती हूं मैं चाहती हूं कि उसके देह की गरमाहट अपने में खींच लूं।''[1]

''बीच बहस में'' संकलित कहानियों ''छुट्टियों के बाद'' कहानियों में एक अजीब सा युग बोध है। इसका पात्र युवक हंसता भी रहता है और उदास भी रहता है। वैसे वह हंसमुख और दिलेर भी है, परन्तु भीतर से बहुत टूटा हुआ और उदास है। इस अद्भुत सामंजस्य का मूल आज के युग में हर व्यक्ति के साथ में जुड़ा हुआ है। व्यक्ति अपने खालीपन और निराश मन से भीड़ में भी अकेले को ही पाता है। कहानीकार को इस निराश को परिवेश में गतिमान सिद्ध करता हुआ यहां तक कह देता है कि.......................''जाते हुए उसका चेहरा एकदम सुन्न सा पड़ गया था लेकिन के लड़के चेहरे पर वीरानगी थी वह आखिर तक उसकी खाली जगह के आसपास मंडराती रही मुझे लगा कि वह खाली जगह काफी दूर तक हमारे साथ-साथ चलेगी।''[2] आज के युग स्तर पर आदमी के वेशभूषा कुछ एकांगी होती जा रही है। कथाकार ने पात्रगत वेशभूषा का एक अजूबा, अपने किस्म का एक हिस्सा बनाते हुए अभिनव रूप दिया है।

''डायरी का खेल'' मैं बिट्टू का श्रृंगार कुछ अपने ही ढंग का है। बिट्टू हल्के आसमानी रंग का ब्लाउज और उन्नावी साड़ी पहने हुए है खुले हुए बाल संभाल रखे हैं और पाउडर तथा कुमकुम की बिन्दी से बिट्टू का चेहरा निखर आया है। इस तथ्य का जहां कहानीकार ने जिक्र किया है वह बिट्टू के समानधर्मी अन्य लड़कियों की बात छेड़ते हुए लेखक ने आज के जीवन व्यवहार की बात कह दी है।

................................''सब लड़कियों का कभी न कभी ब्याह होता है, बिट्टू का भी ब्याह होगा। बिट्टू की बात याद आयी फिर बहुत सी बातें याद आयीं..........................एक के बाद एक वे सिलसिलेवार, प्याज के छिलकों सी एक दूसरे को छीलती हुयी................तब अचानक मैं चौंक सा गया, दरवाजे पर एक धुंधली सी छाया दिखी, जो परदे की ओट में स्तब्ध ठिठकी खड़ी थी।''[3] कथाकार जीवनगत धुंधलके में घिसटता चला जा रहा है। कभी-कभी सुनहरे भविष्य की आशा में उसके चेहरे पर चमक आती है।

और कभी कुछ बिगड़ जाने जैसा अनुभव करने पर उसके चेहरे पर तांबे जैसी पीली रेखायें उभरने लगती हैं। सचमुच आज का दुरुह जीवन लड़की की शादी के संदर्भ में कुछ-कुछ ऐसा ही हो गया है। आज का व्यक्ति रेती के ढेर बटकखा करके कुछ असूबों से भविष्यों भवनों का निर्माण कर रहा है और उन पर बड़ी हिचकिचाहट के साथ छाया के निर्मित सूखे तिनके बिखेर रखे हैं जो लड़की को निरस्त करने के बाद एक ही हवा के झोंके से दूर-दूर तक फैलते और ढहते चले जाते हैं। वस्तुतः व्यक्ति निराशा में घिरते अंधेरे और उतरती धूम के बीच मटमैला होकर यथार्थ की जमीन पर संज्ञाहीन हो जाता है।

1- पिछली गर्मियों में, पृष्ठ 22-23
2- बीच बहस में, पृष्ठ 23
3- परिन्दे, पृष्ठ 23

आज का युग इन जीवंत संदर्भों में बहुत कुछ टेढ़ा-मेढ़ा है। व्यक्ति उन परम्पराओं और मर्यादाओं को एक क्षण जी भरने के लिए खोजने की चेष्टा करता है जो व्यर्थ है लेखक बिट्टी जैसी तमाम लड़कियों की कथा व्यथा को अपने संग राही के रूप में पाता है वह लिखता है कि............

"याद करने पर बिट्टी से जुड़ी कुछ बातें, कुछ घटनायें याद आती हैं...................कुछ दिन, कुछ घड़ियां, बिखरे से क्षण, जो मैंने और बिट्टी ने एक-दूसरे के संग जिये थे।"[1]

लेखक को जब वही बिट्टो जो श्रृंगार के प्रतिमूर्ति थी झुर्रियों वाला चेहरा याद आने लगता है। बदलते जीवन प्रतिमानों के साथ ही कहानीकार ने प्रेमानुभूति की चिरंतरता को समाकलित किया है। उनकी अनेक विधि कहानियों का मूल स्वर रोमांटिक है लेकिन यह रोमा पुराने बलिदान-बादी चौखटों से भिन्न है, बल्कि प्रेम संदर्भ वैयक्तिक सुख का पर्याय है। उनके लिए प्रेम कहीं समस्या बना है तो कहीं मुक्त भोग, डा. देव कथुरिया ने तो वर्मा की कहानियों के प्रेम विषयक दृष्टिकोण को युगबोधीय ही माना है।"[2]

आज के अनिवार्य जीवन में प्रेम विषयक दृष्टिकोण को आकर्षक का पहला सोपान नहीं कहा जा सकता है। 'पिक्चर पोस्टकार्ड' कहानी का परेश पात्र मसूरी में किताब घर के सामने खड़ा था। दो लड़कियों को देखता सारी शाम बिता दिया करता था। लड़कियों से परेश का परिचय और पारस्परिक निर्विकार भाव कहानीकार इस प्रकार वर्णित करता.................."यह है प्रभा यह परेश......................................नीलू ने कहा।

हाउ डू यू डू? प्रभा ने कोल्ड कॉफी में डूबी स्टाक से क्षण भर के लिए मुंह हटाकर मेरी ओर देखा........................कैसे पेपर हुए शायद अगले साल फिर आना पड़ेगा

+ +

परेश, थोड़ी से पी लो, अच्छा एक घूंट। परेश क्या तुम प्रेम करते हो?.............................यू आर केजी...................परेश, तुम्हारी उम्र क्या है?........................परेश, क्या तुम अभी तक वर्जिन हो?"[3] इतना स्वच्छंद प्रेम के देहात्मक बोध का साफ नजरिया अन्य कहानीकारों में नहीं मिलता है। स्वच्छंद प्रेम का शारीरिक रूप इतना ही नहीं "लवर्स" कहानी में बहुत अधिक नग्नता के साथ चित्रित हुआ है। कहानी के आरम्भ और अन्त में अर्द्धनग्न युवती पत्रिका की बात कर कहानी उस नग्नता को दोहराते जाते हैं।.........................मैगजीन के कवर पर लेटी एक अर्द्धनग्न और गोरी युवती का चित्र वह चित्र दुकान पर बैठे लड़कों को दिखाते हैं और आँख मारकर हंसते हैं। लड़के को इस नंगी स्त्री में कोई दिलचस्पी नहीं है, किन्तु ग्राहक ग्राहक है और उसे खुश करने के लिए वह भी मुस्कराता है।

+++ ++++++ +++++++ ++++++ ++++++ +++++++

वही कवर है, जो अभी कुछ देर पहले देखा था। वही बीच का दृश्य है जिस पर अर्द्धनग्न युवती धूप में लेटी है। क्या दाम है मैंने पूछा। लड़की ने मुझे देखा और दाम बताया और मुस्कराते हुए सीटी बजाने लगा।"[4] जहां वर्मा ने स्वतंत्र प्रेम को नग्नवादी दृश्य में चित्रित किया है वहां

1- परिन्दे, पृष्ठ 30
2- हिन्दी कहानी साहित्य में प्रेम एवं सौन्दर्य तत्व का निरुपण, पृष्ठ 358
3- परिन्दे, पृष्ठ 96-102
4- जलती झाड़ी, पृष्ठ 7-20

दूसरी ओर प्रेम का भावात्मक धरातल भी गहराई से परिभाषित किया गया है। "अंधेरे में" कहानी का स्वच्छंद प्रेम भावात्मक धरातल ही है यहां गुप्त किन्तु स्वच्छंद प्रेम के माधुर्य का सांकेतिक चित्रण है। एक ओर एक अत्यंत संस्कृत महिला की स्नेहमयी संस्कृत मुद्रायें हैं तो दूसरी ओर वीरेन बाबू के क्रियाकलाप द्वारा नारी के प्रति प्रेम की शिष्ट संयमित संवेदनाओं की भी सूक्ष्म अभिव्यंजना है।"[1] कथाकार "अन्तर" कहानी के स्वच्छंद प्रेमी-प्रेमिका का जहां उठते-बैठते चित्रण करता है वहां "पिता और प्रेमी" के प्रेमी-प्रेमिका का आश्वस्त भरा हृदय भी टटोलता है और इन कहानियों में परस्पर विश्वास भरी दृष्टि है। इस दृष्टि में बोझिलता नहीं है चमकीलापन है। एक हल्का धुला सा आलोक है। आज प्रेमी-प्रेमिका परस्पर सरसरी दृष्टि से एक-दूसरे को भीतर तक छू लेना चाहते हैं। "अन्तर" कहानी के प्रेमी-प्रेमिका चलते-फिरते, खाते-पीते, उठते-बैठते एक-दूसरे के बहुत करीब आ जाना चाहते हैं। देखिये............................"वह बिस्तर तक झुक आया। उसने उसके भूरे बालों को चूमा.............फिर होठों को। कमरे की गर्मी के बावजूद उसका चेहरा बिल्कुल ठण्डा था वह चूमता रहा। वह तकिये पर सिर सीधा किये लेटी रही। तुम अब सुखी हो। उसका स्वर बहुत धीमा था।"[2]

कहानीकार ने स्त्री-पुरुष के मध्य आर्य मध्यकालीन प्रेम नहीं देखा है। उसने तो जीवनगत देहात्मक बोध का प्रेम सर्वोपरि सिद्ध किया है। देश-विदेश के प्रेमी-प्रेमिकाओं के संदर्भ का उसके सामने स्पष्ट दृष्टिकोण है।

इसीलिए डा. मधु सन्धु ने रूमानी प्रेम में आस्था का जिक्र करते हुए लिखा है.................."निर्मल वर्मा की कहानियों में न तो मध्ययुगीन सरीका आध्यात्म प्रेम है और न संतति निर्मित होने वाला स्त्री पुरुष का शास्त्र सम्मत संयोग है, न यह रीतिकाल जैसा स्त्री-पुरकुष का ऐन्द्रिक पर्व है। यह प्रेम न तो पूर्व प्रेमचन्द्र युग की तरह रहस्य रोमांच से भरा है न ही इसमें प्रेमचन्द्र-प्रसाद युग जैसा प्रेम का उदात आदर्श रूप है। यह प्रेम न तो किसी समर्पण या त्याग के लिए है, न दुष्टों का हृदय परिवर्तन करने के लिए ही। प्रेम की पारस्परिक धारणा यहां मजाक का विषय हो गयी है। उनके पात्र मात्र रसिक है न मात्र प्रेमी, इसीलिए कोई भी आध्यात्मिक अथवा नैतिक ग्रन्थि निर्मल के पात्रों में नहीं दिखलायी पड़ती। वे उन्मुक्त भाव से खुलकर मिलते हैं यह प्रेम का युग स्तर मौलिक विवेचन है।"[3]

वस्तुतः प्रेम तत्व जहां प्रछन्न भाव विचार के प्रश्रयं से देखा जाता है वहां उसमें मुखौटापरक जिन्दगी को ओढ़ लिया जाता है। आज का युग इन ओढ़ी हुयी चादरों को यथार्थ जीवन में उतार फेंक देना चाहता है। निर्मल के कथा पात्र कहीं भी संदिग्ध स्त्री-पुरुष नहीं लगते। वे यथार्थ हैं उनमें भूख है, प्यास है, कामना है, वासना है, लिप्सा है, आतुरता है, छटपटाहट है, बेचैनी है, व्याग्रता है, प्यार है, घृणा है, द्वेष है, आदान है, प्रदान है, रूप है, विद्रूप है, सारा संसार समाया हुआ है। जान पड़ता है कि वे जिस धरातल पर खड़े हैं वह आज का है, अभी का है और उसे वे जिन्दगी से जोड़े हुए हैं। कथाकार निर्मल वर्मा ने कहानियों में व्यक्ति सापेक्ष विविध आयामों को बखूबी समेटते हुए आज की मूल्यहीनता पर गहराई से विचार किया है। व्यक्ति आज अकेलापन, अजनबीपन और अपरिचय जैसी प्रसंगत स्थितियों में बहुत कुछ उलझा हुआ है। परिवेश के

1- मेरी प्रिय कहानियां, पृष्ठ 61 2- वही, पृष्ठ 110
3- कहानीकार निर्मल वर्मा, पृष्ठ 61

उखड़ने पर व्यक्तित्व हर स्थल पर अजनबी हो जाता है, बल्कि यूं कहिये परिवेश के अलगाव और बेगानेपन से उनके मन की स्थिति बहुत अधिक समस्यामूलक बन जाती है, यह उपयुक्त ही है। वैसे अकेलेपन का बोध है तो बहुत पुराना लेकिन आज का अकेलापन वैचारिक स्तर पर मध्यम युग के अकेलेपन से बहुत भिन्न है।

मध्यम युग जहां आत्मस्तर का अकेलापन वहां आज का अकेलापन पूंजीवादी गिरफ्त में कुछ अजनबी और अवैयक्तिक ही हो गया है। कमलेश्वर ने भी इसी सत्य को दोहराते हुए लिखा है कि..................''हम अभिशप्त हैं................अति परिचित होने के लिए इसलिए हमारे देश की मानसिकता अति परिचय से ऊबी हुयी है और इस अति परिचय का परिणाम है अपरिचय की ऐच्छिक मनोदशा इसलिये हमारे अपरिचय अति परिचय की देन है।''[1]

कथाकार निर्मल वर्मा हर स्तर पर भीड़ के अकेलेपन को स्वीकारते चलते हैं। उनकी अकेलेपन और अजनबीपन में डूबी कहानियां आज आदमी की सम्पूर्ण विवशताओं को उजागर करती है। ''बीच बहस में'' संकलित कहानियां अपने देश वापसी का जिक्र कर देना यहां उपयुक्त ही है...............''सामान संजोने के बाद लड़के ने पसीना पोंछा पूरी बर्थ में अकेला था, इसलिए वह मेरे साथ ही बैठ गया। दोनों लड़कियों के सामने वह अकेला सा पड़ गया था।''[2]

कहानीकार कह देना चाहता है। व्यक्ति अजनबीपन से आच्छादित परिवेश में अकेले ही जीता है। इस प्रकार का अन्तराल हर देश में हर जगह है। व्यक्ति खुली आवाजों को न तो गांठ में बांध सकता है और न किसी के लिए उन्हें और अधिक तेज सम्प्रेषित कर सकता है। हर देश में इतना कुछ खुलापन होने के बावजूद भी कुंठायुक्त प्रदर्शन चिपका हुआ है। हम एक मकान से दूसरे मकान में झांक भी नहीं सकते हैं क्योंकि डर है कि पड़ोसी की लुब्ध पपड़ाई आंखें दूर अकेलेपन में न फेंक दें। कुछ बातें यूरोपीय देश में यहां से विपरीत हैं। जितना भारतीय व्यक्ति अपने सगे-सम्बन्धियों से देह और आत्मा छिपाकर मिलता है वहां ऐसी प्राइवेसी नहीं है इसलिए कहानीकार ने इस अकेलेपन की छाप का जायजा कुछ अधिक दिलचस्पी से लिया है। आज व्यक्ति एक अन्तहीन ऊब और बिसात की सूखी परतों के नीचे अपने अदृश्य को एक-दूसरे से छिपाता चला जा रहा है। शायद आधुनिक तड़क-भड़क में यह सब कुछ युग स्तर पर अनिवार्य हो गया है। वैसे जितना वह दिल से सुना है सही मायने में उतना ही बाहर से भी अजनबी है। दूधनाथ सिंह ने भीड़ के अकेलेपन को स्वीकारते हुए अजनबीपन और अकेलेपन की दुहाई नयी कहानी के कथ्य में अवश्यमेव सिद्ध कि है...............''क्या हम घर के एकान्त कोने में जब बिल्कुल अकेले नहीं होते हैं लेकिन ज्यों ही हम टकरा जाते हैं हम अकेले रहना शुरू कर देते हैं। अपने को खोना शुरू कर देते हैं।''[3] लेखक ''परिन्दे'' कहानी में जूली की आँखों का निरीह भाव भांपते हुए कहता है...........''शायद जूली का यह प्रथम परिचय हो, उस अनुभूति से, जिसे कोई भी लड़की बड़े भाव से संजोकर संभालकर अपने में छुपाये रहती हैं, एक अन्य अनिर्वाचनीय सुख जो पीड़ा लिये है, पीड़ा और सुख को डुबोती हुयी उमड़ते ज्वर की खुमारी........................जो दोनों को अपने में समा लेती है एक दर्द, जो आनंद से उपजा है और पीड़ा देता है।''[4]

निर्मल ने इस प्रकार के ढेरों कारण अपनी कहानियों में यत्र-तत्र समझे हैं तथा उन्हें

1- नई कहानी की भूमिका, पृष्ठ 126
2- बीच बहस में, पृष्ठ 21
3- ज्ञानोदय, अप्रैल 1966
4- प्ररिन्दे, पृष्ठ 149

अकेलेपन के ही क्षणों में हर जगह गूंथे हैं। ''जलती झाड़ी'' का पात्र सोचता है कि इस शहर में वह अजनबी है। यदि आज रात वह यहां से चला जाये तो होटल के मैनेजर और पुलिस के अलावा किसी को कुछ पता ही न चलेगा।''[1]

''एक शुरुआत'' कहानी में लेखक को वियना से दूर होते हुए रात बहुत लम्बी लगने लगती है। कारण है..........................उसके संग बहुत कुछ जो दूर हो गया है।''[2]

इतना ही नहीं असुरक्षा की भावना से भी आज का आदमी अकेला है।

''परिन्दे'' में संकलित कहानी ''अंधेरे में'' की पात्र बच्ची अपने को असुरक्षित महसूस करती है मां कहीं गयी हुयी है पिता उसके उतने निकट नहीं हैं इसलिए वह अपने मन की बात किसी से कह भी तो नहीं पाती।

वह निराश से भरे स्वर में चारों ओर का खोया हुआ वातावरण देखती चलती है उसकी हर चेष्टा में अनिश्चित अर्द्ध सोये स्पर्श हैं उन्हें चेतन पक्ष में कभी भी छुआ तक नहीं जाता जिस प्रकार खिड़की के बाहर नीले-नीले जंगल हैं, ऊंची-ऊंची पहाड़ियां हैं, पेड़ों के घने झुरमुट हैं उसी प्रकार सारा संसार गुमसुम बीहड़ जैसा ही है।[3]

आज संत्रास की भावना ने व्यक्ति को बहुत अधिक अपनी दुनिया की ओर ढकेल दिया है। ''एक शुरुआत'' कहानी का नायक तपेदिक का रोगी है, इसीलिए वह विगत 6 वर्षों से बेल्जियम में रह रहा है। वर्ष में एक दो बार अपने घर वालों से मिलने लंदन आता है। उसके चारों तरफ एक अजनबी खामोशी छायी हुयी है। वह सोच ही नहीं पाता कि उसका सही घर बेल्जियम है या लन्दन। यद्यपि उसके मन-मस्तिष्क में लंदन का सारा परिवेश जुड़ा हुआ है।''

जैसे- ''लागर....................क्षण भर के लिए लगा, जैसे ये लंदन के बीते दिनों की अन्तिम, आत्मीय विदा हो। ....लन्दन की गरम, पगली रातों के संग लागर का तीखा रंग जुड़ा है।''[4] व्यक्ति भय, मृत्यु के अस्तित्व को स्वीकारता हुआ अपनी जिंदादिली को रौंदता चला जाता है। वह सोचता है कि वह अकेला ही नहीं आज के जुड़ते सम्बन्ध कुछ दिनों के बाद कूड़े की तरह बुहार दिये जाते हैं। 'माया दर्पण' कहानी में बाप बेटी के मध्य अलगाव चित्रित है। तरन जानती है कि वह अकेली रहेगी किन्तु बाबू की छाया से बंधी हुयी और बाबू का अकेलापन हमेश जिन्दगी भर उससे जुड़कर रहेगा। इस अकेलेपन की परिवेशगत गहराई का कहानीकार ने सम्बन्धों के आधार पर ही निरीक्षण नहीं किया है बल्कि अनाकर्षण होकर व्यक्ति कितना भी अधिक अकेलापन महसूसता है उदाहरण दृष्यव्य है --''चेहरे का आकर्षण, चाहे जैसा हो, वह जानती थी कि उसमें नहीं है। उसके लिये अब मन क्लान्त नहीं होता। वर्षों पहले सड़क पर चलते हुये कोई ओर देखता, तो तन मन सिहर उठत था। वह दौड़कर वापस आती थी, और घण्टों आइने के सामने खड़ी रहती थी। क्या देखते है लोग उसमें।''[5] इस प्रकार के विचित्र प्रश्न व्यक्ति के मन में तब उठते हैं जब उसमें से दृष्टियों का जोड़ है और इन प्रश्नों का उत्तर पाने के लिये व्यक्ति का दिल घण्टों धौंकनी जैसा चलता ही रहता है लेकिन वही तरन लोगों की दृष्टि बोध से अलग हट गयी हो।

आज का व्यक्ति कुछ नये ढंग से सोचने लगा है इसलिए उसका चिंतन स्वतंत्र ही नहीं बल्कि वैज्ञानिक भी है। ''परिन्दे'' की लतिका ने कभी गिरीश नेगी को चुना था परन्तु गिरीश की मृत्यु

1- जलती झाड़ी, पृष्ठ 81 2- वही, पृष्ठ 49 3- परिन्दे, पृष्ठ 63

4- जलती झाड़ी, पृष्ठ 45 5- वही, पृष्ठ 25

के बाद वही ह्यूवर्ट की ओर आकर्षित हो जाती है। यह सोच व्यक्ति को संवेदना से छुटकारा दिलाती है। कहानीकार लिखता है--- "मि. ह्यूवर्ट अंग्रेजी धुन गुनगुनाते ऊपर आ रहे थे। सीढ़ियों पर अंधेरा था..............गुड ईवनिंग डाक्टर, गुड ईवनिंग ....थैन्कयू मिस लतिका ......यहां अकेली क्या कर रही हो मिस लतिका? ....आज इस वक्त ऊपर कैसे आना हुआ?"[1] इस प्रकार की चर्चित ओर सम्बन्ध बढ़ाती हुयी जिन्दगी आज के अस्तित्ववादी बोध का ही तो परिणाम है। 'पिछली गर्मियों में' के. सी. ने अरुणा को छोड़ कर विदेश के मुक्त प्रेम का चयन किया। वह परिवार और समाज के प्रति लापरवाह है, उसे अपने कार्य और क्षमता पर पूरा भरोसा है। इस प्रकार की प्रवृत्ति आज व्यक्ति के युग स्तर पर निर्णय लेने के प्रति सजग है। मानवीय वैचारिक स्तर पर व्यक्ति संघर्ष का पुजारी बन गया है। 'सितम्बर की एक शाम' का एक बेकार नायक लड़-झगड़कर घर से भाग जाता है। रेस्तरां के बाहर सरकारी क्वार्टर के सामने छोटे से घास के मैदान पर लेटे-लेटे उसके अन्दर अद्भुत क्षमता उत्पन्न होती है उसे लगता है।--------'उसकी जिन्दगी की गांठ अतीत के किसी सप्रेत से नहीं जुड़ी है, इसलिए वह मुक्त है, और घास पर लेटा है। सारी दुनियां उसकी प्रतीक्षा कर रही है कि वह उसे अर्थ दे, उसकी बाट जोह रही है--------सांस रोके।[2]

इस प्रकार का बोध शायद आधुनिकता बोध का सबसे प्रबल धनात्मक चिह्न है। आज का व्यक्ति अपने लिये अपने विचारों के लिये संघर्ष करता हैं भले ही वह कुचक्रों के दबावों से असफल हो जाये। 'जलती झाड़ी' में संघर्ष एवं क्षमता का कहानीकार ने खुलकर जिक्र किया है............"जिन्दगी में जवाब देही का लम्हा एकदम किंस तरह आ जाता है, जैसे वह हमारे लिये न हो, किसी दूसरे के लिये आया हो।"[3]

लेखक का मनतव्य वहां उस संघर्ष की ओर इंगित करता है जिसे व्यक्ति ने अपनी क्षमता से पहचाना है।

यथार्थ बोध आज के कथा साहित्य का प्राण है। निर्मल की तमाम कहानिंयां यथार्थ संवेदिता पर ही जुड़ी हुयी हैं। आज बेकारी, दरिद्रता, गरीबी आदि ने व्यक्ति को ईश्वरीय आस्थाओं से अलग कर ठोस धरातल पर लाकर खड़ा कर दिया है। व्यक्ति में निहित विसंगतियों का संसार उसे बहुत देर तक धोखा नहीं दे सकता।

"कुत्ते की मौत" कहानी का नायक नन्हे दस वर्ष पहले बी. ए. पास करके भी बेकार है। उसकी हर श्रद्धा की आशा उसे भविष्य के जीवन की ओर अनिश्चित अंधेरे में धकेलती जाती है। नन्हे को दस वर्ष पहले के अपने जीवन की सुखद कहानी भी अब सालने लगी है।..........

जैसे "किस वर्ष और किस डिवीजन में नन्हे ने बी. ए. पास किया (अखबार का वह पन्ना आज भी रजिस्टर में रखा है, जिसमें नन्हे का रिजल्ट निकला था और नन्हे के नाम के नीचे पेन्सिल की रेखा खींची गयी है) + + + बस इतना ही ....।

फिर उन्होंने नींद की गोलियां पानी के साथ निगल लीं।[4]

निर्मल वर्मा की कहानियों में कुछ ऐसे अछूते संसार हैं जिन्हें उन्होंने पहली बार कथा संसार का विषय बनाया है जैसे मादक द्रव्यों का सेवन, विदेशी परिवेश का आंकलन, रिश्तों का

1- परिन्दे, पृष्ठ 123
2- वही, पृष्ठ 11
3- जलती झाड़ी, पृष्ठ 85-86
4- जलती झाड़ी, पृष्ठ 53

बेगानापन और आत्मीयता का नाटकीयपन आदि कथाकार इन आयामों में युग स्तर पर गहराई से विचार करता हुआ दिखलायी पड़ता है आज के व्यक्ति की संश्लिष्ट मनःस्थिति मनःस्थिति अबूझ पहले बनी हुयी हैं। वह चलता कहीं है और सोचता कहीं है। इस प्रकार की गतिविधियां निर्मल के पात्रों में जगह-जगह पर मिलेगी। व्यक्ति न तो परिवेश से अपने को बचा पा रहा है और न ही परिवेश में ही अपने को समा पा रहा है।

अलगाव और प्रतिबद्धता की स्थिति उसके मन हृदय पर छायी हुयी है। कभी उसका संसार उसे अपना ही लगता है तो कभी जटिलता के कारण यह संसार उसे बहुत दूर धक्का देकर उसे सोचने के लिये विवश कर देता है निर्मल के कथापात्र इसलिए आज भी जिरह के विषय बने हुये है क्योंकि उनमें अन्तर्राष्ट्रीय युगबोध है, पारम्परित मान्यताओं से अलगाव है, उन्मुक्त काम वासना से लगाव है, जीवन परक उद्यम आवेग से जुड़ाव है। कहा जा सकता है कि युग विशेष की संकीर्ण या विस्तीर्ण सभी दृष्टियों यदि एक जगह समझनी हो तो निर्मल के कथा संसार में पंक्ति-पंक्तिबद्ध होकर बैठी मिल जायेगी।

षष्ठ अध्याय

::-::(षष्ठ अध्याय)::-::

उपसंहार :-

(क) प्रभाव सृष्टि एवं प्रभाव दृष्टिः-

हिन्दी कथा साहित्य की परम्परा में प्रेमचन्द्र, प्रसाद, जैनेन्द्र, इलाचन्द्र जोशी, अज्ञेय, उपेन्द्र नाथ अश्क, यशपाल आदि विशिष्ट कथाकार एक ओर जहां कथा साहित्य में पूर्व सम्बन्ध को बनाये रखे हैं, वहां दूसरी ओर कमलेश्वर, राजेन्द्र यादव, मोहन राकेश, मन्नू भण्डारी, विष्णु प्रभाकर, अमर कान्त, गिरीराज किशोर, फणीश्वरनाथ रेणु, मार्कण्डेय, शिव प्रसाद सिंह, कृष्णा सोबती, भीष्म साहनी, रघुवीर सहाय, रमेश बख्शी आदि कथाकारों के मध्य निर्मल वर्मा का कथ्यानुरुप चिन्तन और रूमानियत निजी प्रभाव सृष्टि और दृष्टि से विलक्षण है। डा: लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय निर्मल वर्मा की गणना उन भारतीय लेखकों में करते है, जो अपनी प्रेरणा के स्रोत विदेशों में खोजते हैं, भारतीय जीवन पद्धति जिनके लिये नगण्य है, उपेक्षणीय है, उन्हें वर्मा ने उपेक्षित ही रखा है। वार्ष्णेय का मत है, कि वे अपने को भारतीय कहने में संकोच करते हैं। प्राग वासियों की तरह आधुनिक होने में विश्वास रखते हैं।" -1

वस्तुतः प्रभावसृष्टि की दृष्टि से वर्मा का कथा जगत में अन्यतम स्थान है। कथा की चाहे विषय वस्तु हो या फिर शिल्प वस्तु हो, दोनों में ही लेखक को सफलता मिली है, इतना अवश्य रहा है कि लेखक ने स्थूल संसार को हू-ब-हू तथ्य बना लिया है। यदि वह स्थूल को आत्मसात करके सूक्ष्म अभिव्यंजना करता, तो निश्चित ही मानवीय भाव संवेदना के धरातल पर खरा उतरता। लेकिन इस दोष दृष्टि के बावजूद भी कहानीकार का कथ्यगत तथा शिल्पगत, चिन्तन परक स्वरुप को हम साम्प्रतिक कह सकते हैं। हिन्दी कथा साहित्य सच्चे मायनों में प्रेमचन्द्र काल से उदीप्त हुआ है। प्रेमचन्द्र ने कहानी जगत की मूल संवेदना को मानवीय संवेदना से मिला दिया है। तत्कालीन समाज अपनी समस्त विसंगतियों के साथ कहानीकार की सहानुभूति के लिये उभरकर सामने आया है। निम्न, मध्य, और उच्च वर्ग के विविध आयाम प्रेमचन्द्र के कथ्य के आधार रहे हैं। उन्होंने नर-नारी व्यथा, सामाजिक विद्रूपता सम्बन्धी समस्याओं को उपन्यास और कहानियों में बखूबी निरूपित किया है उनकी ऐसी अनेक कहानियां और उपन्यास हैं, जिनमें कलात्मक प्रौढ़ता तो है ही, साथ ही कथ्यात्मक मानवता वादी उत्क्रान्ति है, यथार्थ है, आदर्श है। 'पंच परमेश्वर' से लेकर 'कफन' तक और 'गबन' से लेकर गोदान तक उनके कथा साहित्य में युग सत्य के हस्ताक्षर है। प्रेमचन्द ने देशकाल अथवा वातावरण की यथार्थता पर बहुत ध्यान दिया था। इसलिए उनके वर्णन में कहीं भी अस्वाभाविकता नहीं आयी है। सेवा सदन का पात्र पदम सिंह समकालीन आर्थिक विसंगतियों का शिकार होकर कहता-- "मैं जाता हूं घोड़े को लौटा देता हूं और कोई दोष लगा दूंगा। सदन को बुरा लगेगा इसके लिये मैं क्या करूं। ....उन्होंने निश्चय किया कि घर में सज्ञनता दिखाने की आवश्यकता है। किन्तु हम

1- सेवा सदन, पृष्ठ 57 2- जलती झाड़ी, पृष्ठ 63

बाहर वालों की दृष्टि में मान-मर्यादा बनाये रखने के लिये घर वालों की कब परवाह करते हैं।'-[1]

ऐसी ही समस्यायें निर्मल वर्मा की कहानियों में भी युगानुरूप बहुत अधिक उभरी हैं। ''पराये शहर में'' की कहानियों में वेश्या आदमियों की भीड़ में मकान की तरह खड़ी रहती है। ''इतनी बड़ी आकांक्षा'', एक जिप्सी लड़की की क्या व्यथा है।'' -[2]

इसी तरह 'डायरी का खेल' की चाची को बिट्टी के विवाह की चिंता है। धार्मिक धरातल पर प्रेमचन्द ने छुआछूत की जिस समस्या को, 'सद्गति', जैसी कहानियों में दर्शाया है, वैसी ही समस्या का अन्तर्राष्ट्रीय स्वरूप ''लन्दन की एक रात'' कहानी में मिल जाता है। इस कहानी में अंग्रेज एक-एक नीग्रो को चुन-चुन कर अलग करते जाते हैं।'' -[1]

प्रेमचन्द ने देश प्रेम का युगानुरूप चित्रण किया है इस प्रेम का विस्तृत और आतुर रूप निर्मल वर्मा की ''दो घर'' कहानी में देखा जा सकता है, जिसमें प्रवासी जीवन भर स्वदेश जाने के लिये छटपटाता रहता है।

ऐतिहासिक कहानियों और उपन्यासों में प्रसाद का अन्यतम स्थान है। उनके कथा साहित्य में दो प्रवृत्ति विशेष के लक्षण दिखायी देते हैं --गुप्त प्रेम कथायें जैसे 'आकाशदीप', ऐतिहासिक कथायें जैसे ''सिकंदर की शपथ।'' उपन्यास साहित्य की दृष्टि से प्रेमचन्द इन्हीं दोनों प्रवृत्तियों से आपूरित हैं। इस प्रकार उनके समग्र कथा साहित्य में भावना का भीना और झीना स्वरूप है। कंकाल, तितली, जैसे उपन्यासों में प्रसाद ने सामाजिक विषमता के साथ ही व्यक्ति के पृथक अस्तित्व और एकान्त भावनाओं का चित्रण किया हैं। 'कंकाल' में घटनाओं की प्रचुरता है, कथावस्तु शिथिल है फिर भी कथानक की नवीनता और विचारों की निष्पक्षता अनुभूति को गहरायी देती रही है।'' [2]प्रसाद की कहानियां ऐतिहासिक एवं वर्तमान जीवन के दोनों ही यथार्थ आदर्श पहलुओं को समेटे हुये है। 'विराम चिह्न' कहानी में हरिजनों के मन्दिर- प्रवेश की समस्या है।'' [3]सलीम कहानी में हिन्दू-मुस्लिम द्वेष की समस्या है।'' [4]

निर्मल वर्मा कथाकार हैं, इसीलिए प्रसाद के प्रेम और सौन्दर्य से भी बढ़कर प्रेम की गंध और वासना की आग दोनों को ही अपने कहानियों में स्थान दिया है। प्रसाद की दुनिया जहां केवल काल्पनिक है वहां निर्मल वर्मा की दुनिया ठोस यथार्थवादी है। 'आकाशदीप' का बुद्ध गुप्त पत्थर जैसा हृदय लेकर चम्पा के सम्पर्क में आकर चन्द्रकान्त मणि की तरह पिघलने लगता है, वहां निर्मल वर्मा की 'दहलीज', 'परिन्दे', 'अंधेरे में' आदि कहानियां सन्तरण की भांति अपने प्रिय के सामीप्य को प्राप्त करने के लिये तैरती और उतराती दिखायी पड़ती है।'' ''जूली की वेदना'', ''रोहतगी साहब की प्रतीक्षा'', ''परिन्दे'', आदि कहानियों में प्रसाद की भांति प्रकृति चित्रण और संगीतमय प्रेम का निरूपण है। वर्मा थोड़ा सा हटकर रूमानियत के सन्दर्भ में 'लवर्स' की बौद्धिकता और केशी के नेत्रों की पथरीली भावहीन उदासी 'एक शाम खामोशी' की भांति अनुभूत करते हैं, जिससे संगीत और मादक द्रव्यों का जुड़वा भाई जैसा संगोपांग समन्वय सृजित हो उठता है। जैनेन्द्र की रचना पद्धति पूर्वोत्तर कथाकारों से भिन्न है। मनोवैज्ञानिक शैली से कथाकार ने सुनीता, कल्याणी, त्यागपत्र जैसे उपन्यासों में मानवीय गत्यात्मक मूल्यों को अर्थवत्ता प्रदान की

1- वही, पृष्ठ 105
2- कंकाल, आमुख
3- आकाशदीप, पृष्ठ 22
4- इन्द्रजाल, पृष्ठ 63-120

है। इस दृष्टि से ''त्यागपत्र'' जैनेन्द्र का महत्त्वपूर्ण उपन्यास है। उपन्यास का पात्र प्रमोद वृद्धावस्था में अपनी बुआ मृणाल के प्रति कर्तव्य पालन न कर पाने के कारण पश्चात्ताप व्यक्त करता है। ''प्रमोद के अतीत चिन्तन में मृणाल का व्यक्तित्व उभर आता है।'' [1]

जैनेन्द्र ने माननीय संवेदना से जहां कथा-वस्तु का निर्माण किया है, वहां 'मास्टर जी' जैसी कहानी में जीवन बोध को बहुत नजदीकी से देखा है। उनकी ''एक रात'' जैसी कहानियां जीवन के कुछेक घण्टों पर आधारित होकर भी सम्पूर्ण व्यक्तित्व की उपस्थिति करती है।

निर्मल वर्मा जैनेन्द्र जैसी अहिंसा के समर्थक नहीं हैं। उन्होंने 'वे दिन' उपन्यास में बहुत ही बारीकी से वातावरण को उतारकर कथावस्तु का मूल आधार ही बना दिया है। 'वे दिन' उपन्यास में यह तथ्य मनोवैज्ञानिक भी है और यथार्थ भी जैसे.......उसने चुपचाप अपना पैकेट मेरे पास फेंक दिया। मैने सिगरेट जलायी और अपनी देह को रगड़ने लगा। एक नशीली सी झुरझुरी मेरे पैरों और जोड़ों में फैलनी लगी............मुझे बचपन से अपनी देह अच्छी लगती रही है, जब उस पर कुछ न हो। मैं धीरे-धीरे छूता हूं उन अंगों को जो दिन भर कपड़ों से छिपे रहते हैं।'' [2]

वर्मा की रूमानियत भरी कहानियों में स्त्री पुरुष के उन सम्बन्धों का जिक्र है, जिनमें व्यक्ति जिन्दगी भर खो जाना चाहता है। देह छुअन और मन की धड़कन रूमानियत को चार चांद लगा देती है।

उदाहरण दृष्टव्य है --''मैंने छुआ नहीं एक लम्बे क्षण तक उसे अपने हाथों पर वैसे ही पड़े रहने दिया--मेरे हाथ उसके नीचे दब गये हैं ....मीनू की स्निग्ध शान्त आंखों और मेरे कांपते हाथों के बीच केशी का अधबुना स्वेटर एक लम्बे पल तक बिना हिले डुले पड़ा रहता है।'' [3]

अज्ञेय प्रयोगवादी कथाकार हैं। उन्होंने मनोवैज्ञानिक प्रयोगों का आग्रह कथा-विधान में स्वीकार किया है। 'विपथगा' कहानी संग्रह की जितनी भी कहानियां हैं, वे सब मानवीय अन्तर्जगत की कहानियां हैं। उनकी कहानियों में एक ओर आत्मसंघर्ष प्रधान्य है,तो दूसरी ओर प्रगाढ़ अकेलेपन की कसक है। कोठरी की बातें कहानी में जिस कोठरी का मानवीयकरण किया गया है, वह कोठरी कहती है--''अपने प्रगाढ़ अकेलेपन में मैने एक शक्ति पायी है। मैं आत्मायें पढ़ती हूं।'' [4]

अज्ञेय के कथा साहित्य में वेदना स्वर मुखरित हुआ है, इसीलिए व्यक्तिवादी सत्य कथावस्तु में स्थापना पा सका है। 'अपने-अपने अजनबी' और 'शेखर-एक जीवनी' उपन्यासों में अज्ञेय ने मनोवैज्ञानिक विश्लेषण का परिचय दिया है। फ्रायड और एलडर के मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों का 'शेखर एक जीवनी' उपन्यास में भरपूर प्रयोग किया गया है। इधर निर्मल वर्मा 'एक चिथड़ा सुख' जैसे उपन्यास में वातावरण के व्यवहारवादी सिद्धान्त का प्रश्रय लेकर आत्म-मुखरता का एक अभिनव आयाम बुन सके। 'मैं' पात्र का यह कथन विचारणीय है- '' मैं सचमुच बचकर निकल गया''। वे बातें कर रहे थे, मुझे भूल गये थे। मैं अकेला छूट गया था।मैं धीरे-धीरे सरकता हुआ कमरे के दूसरे छोर तक चला आया। एक दरवाजा दिखायी दिया-आधा खुला हुआ। भीतर झांका, तो कोई नहीं था..........................कोठरी से सटा बाथरूम था। बत्ती खुली थी-और उसकी रोशनी में टब की सफेद चिकनी तह चमक रही थी। एक कमोड और कुछ

1- परिन्दे, पृष्ठ 63-120 2- त्यागपत्र, पृष्ठ 45 3- जैनेंद्र की प्रतिनिधि कहानियां, पृष्ठ 123
4- वे दिन, पृष्ठ 119 5- पिछली गर्मियों, पृष्ठ 112

बाल्टियां-हां, पीछे एक खिड़की खुली थी, जहां से कनाट प्लेस के पिछवाड़े की गलियां दिखायी देती थीं।'' [1]

इलाचन्द्र जोशी जैसी समर्थ मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार ने 'परदे के रानी', 'संन्यासी', 'प्रेत और छाया' आदि उपन्यासों में मानवीय सुगम-सहज इतिहास को काम क्रीड़ा पर आधारित करके अनुशीलित किया है। उपन्यासों के पात्र बाह्य रूप से साधारण किन्तु मानसिक रूप से असाधारण व्यक्तित्त्व वाले हैं। इन उपन्यासों के अतिरिक्त कथा साहित्य में जोशी ने मनोविज्ञान के विविध रंग बड़ी सतर्कता के विविध पात्रों में भरे हैं। 'फिडनेटड' जैसी कहानी में मातृस्नेह वंचिता मनमोहनी का विचित्र व्यवहार, फ्रायडन भाई-बहिन की छाप लिये हुये हैं। सैक्स सम्बन्धी कुंठा और घुटन और विक्षिप्तियां उनके विविध पात्रों में कदम-कदम पर मिलेगी।

भाव तत्त्व और चरित्र विश्लेषण की कहानी जोशी जी की निजी शर्त है मध्य वर्ग ह्रासोन्मुख जीवन से सम्बन्धित आचार-विचारों पर उन्होंने चिन्तन किया है। डा. लक्ष्मी नारायण लाल ने दो वाक्यों में ही उनके कथा का समाकलन करते हुये लिखा है................जोशी जी की कला में अपना एक स्वतन्त्र छन्द है, गति है। इनकी अपनी विशिष्ट धारा है, जिसे कभी भुलाया नहीं जा सकता।'' [-1]

निर्मल वर्मा मनोविश्लेषण वादी कहानीकारों में से तो नहीं हैं फिर भी हिन्दी कहानी को कथ्य के क्षेत्र में प्रौढ़ता दी है। वह चेतन, अचेतन और अवचेतन के मन की प्रक्रियाओं से सम्प्रक्त हैं। 'तीसरा गवाह' कहानी में रोहतगी साहब गिरजा से विवाह न हो पाने की पीड़ा को जीवन भर शराब पी-पीकर भुलाते रहते हैं।'' [-2]

''लवर्स'' हिन्दी प्रेम में हताश हो अर्धनग्न चित्रों वाली पत्रिका खरीदता है। ''धागे का कैदी'' अतीत को भुलाने के लिये मद्यपान करता है। इन नायकों के अतिरिक्त, नायिकाओं की मनःस्थिति का चित्रण भी वर्मा जी ने मनोयोग से किया है लवर्स कहानी की नायिका का अहम बहुत ही प्रबल है। अहम रक्षण हेतु वह निन्दी से मैत्री तो रख सकती है, किन्तु पत्नी के रूप में भोग्या बनकर उसे रहना स्वीकार नहीं।'' [-3]

''अंधेरे में'' कहानी में बच्चों के स्वप्न अचेतन मन की अभिव्यक्ति है। इस प्रकार मनोविश्लेषण वादी कथाकारों की पंक्ति में निर्मल जी का अपना स्थान है। उपेन्द्र नाथ अश्क जैसे गम्भीर कथाकारों से भी निर्मल वर्मा प्रभाव सृष्टि एवं दृष्टि को समायोजित कर लेते हैं।

जहां अश्क की कथा विधान रेखा, कटु आलोचना व्यंग्य के लिये सपाट है वहां निर्मल वर्मा भी व्यंग के कुशल कारीगर हैं। 'वीक एण्ड' की मार्थी पात्र अपने मंगेतर से बौद्धिक प्यार की अपेक्षा करती है। 'माया दर्पण', 'पहाड़', 'जलती झाड़ी' आदि कहानियां इन अपेक्षाओं की प्रतीकात्मक बुनियाद हैं। तत्त्वतः दोनों ही कथाकार मूल संवेदना का बिम्ब लिये हुये हैं। कथाकार यशपाल भी शिल्प प्रयोग में विचार धारा के अग्रणी हैं। उनके कथा साहित्य में परिष्कृत विचारों, चिन्तन प्रधान दृष्टिकोणों की अभिव्यंजना है। इधर निर्मल मार्क्सवादी विचार धारा के अग्रणी तो नहीं लेकिन राजनीति के प्रवाह को नकार नहीं पाते 'लन्दन की रात' कहानी में अनेक राजनैतिक स्तरीय चित्रण हैं। आर्थिक सन्दर्भों में उन्होंने बेकारी, भुखमरी को कहानी का बिन्दु बनाया है।

1- जलती झाड़ी, पृष्ठ 6
2- जलती झाड़ी, पृष्ठ 98
3- फूलों का कुरता, पृष्ठ 36
4- उखड़े हुए लोग, पृष्ठ 32

उदाहरण देखिये..........''हम सबके हाथों में एक-एक थैला था जिसमें हमने रात की ड्यूटी के कपड़े और खाने का सामान बांध रखा था। हम में से किसी के लिये भी यह विश्वास करना कठिन था कि हमें अगले ट्यूब से वापस लौट जाना होगा.................उस क्षण भूख और निराशा के बावजूद हमारे मन में कहीं भी कोई खीझ या कटुता नहीं थी।'' -1

यशपाल मात्र समस्या ही नहीं देते उनका समाधान भी करते हैं। 'कर्म फल' और 'फूल की चोरी' कहानियों में आर्थिक वैषम्य की समस्या है।'-2 स्वतांत्र्योत्तर कथाकारों में मुख्य कथाकार हैं--राजेंद्र यादव, निर्मल वर्मा, मोहन राकेश, कमलेश्वर, नागार्जुन, धर्मवीर भारती, कृष्णबलदेव, वैध, भीष्म साहनी, रमेश बक्सी, ऊषा प्रियंवदा, मन्नू भण्डारी, कृष्णा सोबती, अमरकान्त, फणीश्वरनाथ रेणु, शिवप्रसाद सिंह, मार्कण्डेय, शैलेश मटियानी, हरीशंकर परसाई, महीप सिंह, दूधनाथ सिंह, रविन्द्र कालिया, श्रीकान्त वर्मा, नरेश मेहता, सुधा अरोड़ा, प्रयाग शुक्ला आदि। राजेन्द्र यादव स्वतांत्र्योत्तर कथाकारों में मध्यवर्गीय स्त्री-पुरुषों के सम्बन्धों को ''उखड़े हुये लोग'' उपन्यास में बखूबी वर्णित करते हैं। वह आधुनिक सामाजिक चेतना के सशक्त कथाकार हैं।

इस उपन्यास में छूटे हुये थके हारे लोग हैं।वे निराशा और कुंठा से ग्रसित हैं। प्रासंगिक कथा सूत्रों में इन्हें भलीभांति देखा जा सकता है।स्वदेश महल लाते समय रिक्शा वाला शरद नेता भैया से कहता है ''....हां जी वो कोठी रही नेता भैया की, वो जिस पर झण्डा लगा है, वो जिनका बड़ा लम्बा चौड़ा कारोबार है। साब आदमी बहुत शरीफ हैं। हमेशा मुस्कराते ही रहते हैं और बिना हाथ जोड़े बात नहीं करते। तभी तो उनकी इतनी बरक्कत है।''

वस्तुतः है क्या, नेता भैया मानवीय संवेदना से रहित हैं। भयंकर स्वार्थी, कामी और धूर्त हैं। माया देवी के प्रेम का इन्होंने अपने लाभ के लिये शोषण किया। उसे रखैल रखा और यही नहीं उसकी लड़की पदमा को भी अपनी वासना का शिकार बनाने की चेष्टा की। इस प्रकार स्वतांत्र्योत्तर समाज के एकाकीपन और व्यक्तिगत मूल्यों का जिक्र यादव ने बहुत किया है। ''जहां लक्ष्मी कैद है'' कहानी में सेक्स की अदम्य इच्छा का वर्णन करते हुये यादव कहते हैं कि ''.........ले तूने मुझे अपने लिये रखा है, मुझे खा, मुझे चबा, मुझे भोग।'' -2

पिता से पुत्री का यह कथन भोग की प्रबल इच्छा का उदाहरण है। निर्मल वर्मा ने सैक्स सम्बन्धी पुरानी धारणाओं का परित्याग करके अनेक प्रकार के यौन सम्बन्ध स्थापित करने की बात कही है। प्रेम, सैक्स, घुटन, उदासी, चीख, भय, आतंक आदि विभिन्न आयाम निर्मल वर्मा की कहानियों के कथ्य हैं। पिछली गर्मियों में 'पिता और प्रेमी' 'उनके कमरे' आदि कहानियां इस कथन की पुष्टि करते हैं। मोहन राकेश द्वारा रचित उपन्यास और कहानियां मानवीय सम्बन्धों की अर्थहीनता को उजागर करते हैं। 'अन्धेरे बन्द कमरे' उपन्यास में मधुसूदन पात्र के दस वर्षों की कथा है। इस कथा सूत्र के विस्तार को उपन्यासकार ने जहां एक ओर महानगरीय परिवेश दिया है, वहां दूसरी ओर स्त्री पुरुष के सहज सम्बन्धों का उल्लेख किया है। नीलिमा से विरक्त होकर हरवंश इंग्लैण्ड गया और लन्दन पहुंचने पर एक पत्र में उसने अकेलेपन को इस प्रकार व्यक्त किया.........मैं अपने को बहुत अकेला महसूस करता हूं क्यूं? यह अकेलापन पांच हजार मील की दूरी के कारण नहीं है और न ही शारीरिक प्राप्ति के अभाव के कारण ही है। यह अकेलापन वर्षों

1- जहां लक्ष्मी कैद है, पृष्ठ 33

2- अंधेरे बन्द कमरे, पृष्ठ 144

से मुझे अन्दर ही अन्दर कीड़े की तरह खा रहा है, और खाता जायेगा, जब तक कि तुम सच मुच ही मेरी मित्र न बन सको। समझकर ही लिख रहा हूं हालांकि वह कौन हो सकता है, इस प्रश्न का मुझे कोई उत्तर नहीं मिलता।

निर्मल वर्मा ने परिन्दे कहानी को इसी सूक्ष्य वेदना के तार से बुना है 'परिन्दे' कहानी में पियानो के संगीत के स्वर रुई की छुई मुई रेशों से अब तक मस्तिष्क की थकी मांदी नसों पर फड़फड़ा रहे हैं। इस रिक्तता और पारस्परिक अलगाव में डूबी हुयी कालगत सत्य का निरूपण लेखक ने किया है। ....''लतिका और आर्म चेयर पर ऊंघने लगी है।'' डा. मुखर्जी का सिगार अंधेरे में चुपचाप जल रहा था। .... लतिका के समूचे शरीर में झुरझुरी सी दौड़ गयी, मानो अनजाने में किसी गलीज वस्तु को छू लिया हो। उसे याद आया कुछ महीने पहले उसे ह्यूवर्ट का प्रेम पत्र मिला था।भावुक याचना से भरा हुआ पत्र, जिसमें उसने न जाने क्या कुछ लिखा था, जो कभी उसकी समझ में नहीं आया। ....उसकी उम्र अभी बीती नहीं है। अब भी वह अपनी ओर दूसरों को आकर्षित कर सकती है।' [1]

कमलेश्वर स्वतांत्र्योत्तर कथासाहित्य के सशक्त हस्ताक्षर हैं। ''मांस का दरिया'' कहानी में उन्होंने वेश्या जीवन का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया है। इसे नंगे जीवन का नंगा चित्र कहा जाये या नंगे जीवन पर झीना पर्दा।'' [2]

जिन्दगी की सच्ची तस्वीरों को उतराने का काम कमलेश्वर ने किया है। उन्होंने जीवन पर किसी प्रकार का पर्दा नहीं डाला है चाहे वह 'खोई दिशायें' हों, या 'राजा निरवंशिया'। उनके उपन्यास साहित्य में वैयक्तिक सौन्दर्य चेतना का चित्रण बिल्कुल खुले आयामों को लेकर हुआ है। धर्मवीर भारती आधुनिक सामाजिक संवेदना के नये कहानीकार हैं। ''गुनाहों का देवता'', ''सूरज का सातवां घोड़ा'' जैसे उपन्यासों में जहां एक ओर मानवीय भावनाओं को छुआ है,

वहीं दूसरी ओर अपनी कहानियों में मानवीय आस्था, विश्वास, संघर्ष-क्षमता को प्रदर्शित किया है। कथाकार इतना अधिक भावुक मन लेकर कथासूत्र को पकड़ता है कि पात्रगत अकेलेपन की गहराई प्रमाता को बरबस खींच लेती है। ''गुनाहों का देवता'' उपन्यास इस दृष्टिं से दृष्टव्य है। सुधा, चन्दर के प्रति समर्पिता है। वह अपने मानस में और किसी दूसरे को हल्की सी छाया के रूप में भी बर्दास्त नहीं कर पाती। वह बार-बार यही कहती है..........चन्दर सचमुच मुझे अपने आश्रय से निकालकर ही मानोगे।'' [3]

निर्मल वर्मा ''सितम्बर की एक शाम'' कहानी में बड़ी खामोशी के साथ वातावरण में स्वच्छ पहलू के साथ जीवन की मार्मिक गांठ को खोलते हुये कहते हैं.........जैसे वह अभी जन्मा है उसकी जिन्दगी की गांठ अतीत के किसी प्रेत से नहीं जुड़ी है.........सारी दुनिया उसकी प्रतीक्षा कर रही है कि वह उसे अर्थ दें। [2] अभिप्राय यह है कि जहां भारती की सुधा विवाह मण्डप के नीचे बैठकर अतीत की गोद में वर्तमान को जन्म देकर दुनिया की निर्मम प्रतीक्षा के लिये व्यग्र हो उठती है, उसी प्रकार वर्मा की पागलपन मनःस्थिति हर काल के बदलते परिप्रेक्ष्य में पुर्नजन्म जैसी अभिनव यात्रा करने की ओर उन्मुख होती है।

भीष्म साहनी जैसे कथाकार ने एक ओर पारंपरिक मान्यताओं को झंझोरा है, तो दूसरी ओर

1- परिन्दे, पृष्ठ 126
2- मांस का दरिया, पृष्ठ 115
3- गुनाहों का देवता, पृष्ठ 131
4- परिन्दे, पृष्ठ 111

मानवीय सम्बन्धों की सहजता को नये अर्थ प्रदान किये हैं। 'चीफ की दावत' कहानी में साहनी की मौजूदा हालत बहुत ही विसंगति पूर्ण है। पदोन्नति के लिये चीफ की दावत व्यंग्यात्मक है। बड़े आदमी के कंधे पर हाथ रखकर बतियाना त्रिलोकी पात्र को बहुत बड़ी घटना लगता है। और इससे पति-पत्नी के नीरस जीवन में नये जीवन का संचार होने लगता है। 'कुन्ती' पात्र चीफ साहब से मिलकर नये सपने संजोने लगती है। निर्मल वर्मा की कहानी 'इतनी बड़ी आकांक्षा' में फौजी युवक और एक महिला विशेष के सह सम्बन्धों की कहानी है- "कुछ पियोगी उसने धीरे से कहा। इतने धीरे से नहीं कि महिला नहीं सुन सके। इतने ऊंचे में भी नहीं कि उसके साथी को पता चल सके औरत ने सिर हिलाया, मुस्कराई लेकिन कहा कुछ नहीं फौजी को आशा बंधी।'[2]

रमेश बक्सी ने नागरीय बोध को लेकर व्यंग्य भरी कहानियां लिखी हैं 'किस्सा एक शुतुरमुर्ग का' व्यंग्य भरी कहानी है। इस कहानी में अविवाहित लड़की की भीरुता और प्रवृत्ति का चित्रण अनूठा है। आज भी हर लड़की शुतुरमुर्ग होती है। उसकी उम्र 25 वर्ष है, उसके पंख देखने भर के होते हैं। वे डरपोक और कायर होती हैं। लेकिन जब शुतुरमुर्ग का पोस्टमार्टम होता है, तो कई कठोर चीजें उसके पेट से निकलती हैं आज भी यह शुतुरमुर्ग लड़की पत्थर सी भारी भरकम और कठोर चीज विवाह को ही पचा गयी है। [3]

निर्मल वर्मा के उपन्यास साहित्य में महिला जगत के विभिन्न आयाम दर्शाये गये हैं। देखें- "तुम स्वार्थी लड़की हो, कायर हो, तुम हमेशा से स्वार्थी रही हो। ------नहीं-नहीं-यह नहीं, यह बिल्कुल नहीं। क्या यही वह 'चीज' थी जिसे वह आत्मा कहती थी, लहूलुहान देह पर चमड़े के कालर से लिथड़ी हुयी आत्मा। उषा प्रियंवदा ने स्वतांत्र्योत्तर भारतीय समाज में संयुक्त परिवारों के विघटन की बात कही है। पुरानी पीढ़ी और नयी पीढ़ी के वैचारिक स्तर की विभिन्नता की बात कही है। 'वापसी' कहानी का नायक गजाधर बाबू एक रिटायर्ड अफसर है। वह रिटायरमेन्ट के बाद सब कुछ होने के है बावजूद भी अपने परिवार में समायोजित नहीं हो पाता है। आश्चर्य है कि अनेक घर के किसी भी पात्र को उनके प्रति प्रेम और आदर नहीं है। उनके घर से जाने पर किसी को दुःख नहीं, आपत्ति नहीं, आंसू नहीं, रुदन नहीं, केवल एक दृष्टि है जो उनके चले जाने के बाद भी चारपाई को बाहर निकाल देती है। प्रियंवदा ने पारिवारिक, आर्थिक और सामाजिक मूल्यों पर मानवीय करुणा के स्वर फूंके हैं। निर्मल वर्मा ने उपन्यासों और कहानियों में 'वापसी' जैसी भावना को भी कथ्य नहीं बनाया है फिर भी अकेलेंपन के अहसास और परिवार के अलगाव की भित्ति पर चित्र बनाये हैं, जैसे- "पीछे मुड़ा तो बिट्टी बैठी थी, चीज ....क्यूज को कुतर रही थी गिलहरी की तरह ....'सुनो' उसने कहा, "मैं आज ही तुम्हें इलाहाबाद भेज दूंगा".......क्यों? ऐसे ही। मैं अकेली रहना चाहती हूं, तुमसे तंग भी आ गयी हूं। [3]

स्वतांत्र्योत्तर हिन्दी कथा साहित्य में आने वाले परिवर्तन अथवा विकास को निर्मल वर्मा जैसे समर्थ कथाकारों की भांति अन्य कथाकारों ने समवेत स्वर में स्वीकार किया। नयी कहानी का कथ्य और शिल्प का आज हर कथाकार जिस प्रकार ताने बाने के साथ बुन रहा है वैसे ही उपन्यास का ढांचा भी बदलते मानव मूल्यों की उभरती रेखायें प्रकट कर रहा है। साठोत्तरी कथा साहित्य के मूल्य कथ्य और संवेदना का अध्ययन करें तो यह बात स्पष्ट प्रतीत होती है कि व्यक्ति

1- भीष्म साहनी की प्रिय कहानियां, पृष्ठ 83
2- मेरी प्रिय कहानियां, पृष्ठ 20
2- पिछली गर्मियों में, पृष्ठ 104
4- लाल टीन की छत, पृष्ठ 142

नकारात्मक अनुभवों से टूट चुका है। वह छटपटा रहा है। सम्बंधों की टूटन उसे जीने के लिए विवश कर रही है। वे सम्बन्ध सामान्य धरातल के भी हैं और सेक्स परक भी। आज का व्यक्ति दोहरे अलगाव को झेल रहा है।

एक ओर वह अपनेपन से अलगाव महसूसता है दूसरी ओर समाज से। अकेलापन, अजनबीपन उसकी धरोहर बन रहे हैं।

डॉ. शिव प्रसाद ने आज के कथा कथ्य पर परिवेशात्मक टिप्पणी इस प्रकार की है...........''त्रास की अवस्था'' में समझ में आने योग्य यह सारा जगत, जो व्यक्तिगत अस्तित्त्व से निर्मित था, जहां आदमी सुरक्षित और घरेलूपन का अनुभव करता था, एकाएक नीरसता में डूब गया है। वह पोत, जिस पर व्यक्ति सवार होकर यात्रा तय कर रहा था, अन्तर्ध्यान हो गया है और पहली बार उसे समुद्र के जल का खारा स्वाद मिलने लगा है।'' [-1]

सचमुच आज के कथानकों में व्यक्ति अभिशप्त है, बौना है, कुंठित है, ठण्डा है, सिनिक है, परिणामस्वरूप व्यक्ति की विद्रूपता की झलक कथा साहित्य में उभरकर आयी है।

कथा साहित्य का शिल्प पक्ष जिसमें भाषा शैली साधन हुआ करती है, उसे आज की कथा वस्तु में बहुत ही गुंथे रूप में देख जा सकता है। इसी विषय पर जितेन्द्र भाटिया ने 'सारिका' पत्रिका में एक लेख दिया है..........कथाकार अक्सर विशिष्ट भाषा और शिल्प के कारण ही कहानियों की भीड़ में अपनी आइडेन्टिटी बनाने में सफल होता है।

कथाकार के लिये कुशल होना आवश्यक है। पर शिल्प अपने आप में एक आर्ट फार्म रही है। रचनाकार के सामने शिल्प के मुकाबले में संवेदनायें प्रमुख होती हैं। कहानी के क्षेत्र में पिछले वर्षों में शिल्प की आड़ में कथ्यहीनता को छिपाने की जितनी कोशिशें की गयीं, वे अन्ततः असफल रहीं, क्योंकि शिल्प और भाषागत चालाकियां कथ्य को प्रभावशाली बनाने में सहायक तो हो सकती हैं, उसका सब्सटीट्यूट नहीं बन सकती हैं। वास्तव में किसी भी जैनुइन लेखक के सामने भाषा और शिल्प को लेकर कोई गंम्भीर समस्या नहीं होती। कथ्य अपनी भाषा खुद ही तलाश लेता है।'' [-1]

तत्त्वतः शिल्पगत चेतना के पीछे एक मानसिक संवेदना अन्तर्निहित रहती है। लेखक वैयक्तिक चेतना के तहत कथ्य और शिल्प को अभिनव दिशा प्रदान करता है।निर्मल वर्मा ने भले ही प्रवासीय जीवन की रागात्मकता [illegible] उपन्यासों और कहानियों में प्रदर्शित की हो, फिर भी परिवेशात्मक सौन्दर्य, मांसल, अनुभूति, चित्रात्मक वृत्ति तथा रागात्मक संतृप्ति का विश्लेषण यथा स्थान किया है। इस अभिनव प्रयोग से कथाकार ने अभीष्ट प्रभाव की सृष्टि की है। राजेन्द्र यादव ने साठोत्तरी कथा साहित्य में इसी प्रकार के कथ्यगत विश्लेषण प्रस्तुत करते हुये कहा है............' अपने कथ्य को सीधा भोगने, जीने और प्रस्तुत कर देने का यथार्थ परक प्रयत्न नये कथाकारों का ही है'' [-2]

मूलतः आज के कथा साहित्य में शिल्प, वातावरण और संवेदना को सम्मिलित इकाई के रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है। कथा समीक्षक से बहुत ही तेजी से अपेक्षा की जा रही है कि वह इस सम्मिलित प्रभाव सृष्टि को समझे और समीक्षा के नये प्रतिमान घोषित करे। किसी भी

1- मेरी प्रिय कहानियां, पृष्ठ 118
2- एक चिथड़ा सुख, पृष्ठ 11
3- आधुनिक परिवेश और अस्तित्ववाद, पृष्ठ 86
4- सारिका, सितम्बर 1971

पारम्परिक प्रतिमान के द्वारा यहीं आज के कथा साहित्य को उरेहा गया हो, तो उसके साथ न्याय न हो सकेगा। सचमुच आज परम्परा की धरोहर नहीं है और न किसी की बपौती। आज को समझने के लिये आज के ही विकास हमें गढ़ना होंगे। साहित्य में कथा विधा ने इस दृष्टि से पर्याप्त विकास किया है।

आधुनिक युग चेतना के परिप्रेक्ष्य में साहित्यिक वर्ग दिशा हीन होकर दौड़ लगाता हुआ भी गन्तव्य को नहीं छू पा रहा है। कारण बहुत ही स्पष्ट है कि पुराने कथाकार शास्त्रीय मानों के लिये उलझे हुये हैं, युवा पीढ़ी नये-नये प्रयोगों की लालसा में भटक रही है। कथा समीक्षक दावतों पर आंख गड़ाये हुये हैं। और रही बात पाठक की, वह तो बेहद निराशा लेकर ही घर वापस आता है। लगता है कि अब कुछ चुक गया है, बुझ गया है और यत्र-तत्र थोड़ी बहुत रोशनी टिमटिमाने की है भी तो उसे निगलने के लिये मुंह फैलाये हुये मठाधीशों की कमी नहीं है। ऐसी परिस्थिति में भी निर्मल वर्मा ने वस्तु चयन और भाव गुंफन को एक दिशा दी है। उनके कथ्य और रूप-बंध की संश्लिष्टता पठनीय है। शिल्पगत पहलू से आंख मूंद लेना भी उचित नहीं है। सहज कथ्यात्मक और शिल्पात्मक रूप बंधों को देखकर

डा. भगवानदास वर्मा ने उचित ही तो कहा है ....''शिल्प कोई कृत्रिम प्रक्रिया नहीं वह एक सजग आंतरिक प्रक्रिया है। शिल्प-बोध लेखकीय अनुभूति की सामर्थ्य से जन्म लेकर पुष्ट होता है। जब लेखन में विभिन्न साहित्यिक विधाओं का एक-दूसरे से अनिवार्य मिश्रण मानकर भी किसी विधा विशेष का हुलिया सुरक्षित रहना आवश्यक है। विधागत प्रयोग रचना की जीवन्तता का लक्षण है और शिल्प बोध की अनिवार्यता रचनाकर्म की अंगभूत शर्त है।''[1]

वस्तुतः निर्मल वर्मा के कथा साहित्य का गत्यात्मक स्वरूप उनके निजी सोच और संवेदना से जुड़ा हुआ है। उन्होंने देशी-विदेशी भावात्मक जगत का अन्तरर्भूत प्रभाव बड़ी गहनता के साथ आत्मसात किया है, और ऐसा कहने में भी संकोच नहीं है कि वह अन्तर्राष्ट्रीय मानक के कथा-शिल्पी हैं।

(ख) उपलब्धि एवं महत्त्व :-

निर्मल वर्मा के समग्र कथा साहित्य का समाकलन करने के बाद एक बात बहुत ही स्पष्ट होती है कि कथागत विदेशी प्रभाव प्रचुर मात्रा में उन पर है। उनकी यह उपलब्धि है और कथा साहित्य के महत्त्व का प्रतिपादन भी है। उन्होंने कथ्यगत विदेशी प्रभाव का स्वरूप अपने मन के अनुरूप ग्रहण किया है। विदेशी सौन्दर्य को उन्होंने मान्यता प्रदान नहीं की बल्कि उसमें यथार्थ का नवीन आयाम खोला है। प्रेम के क्षेत्र में मोह भंग, बौद्धिकता, ऊब, देहात्मबोध, मुक्तमिलन आदि स्थितियां उन पर विदेशी प्रभाव की परिचायक हैं। इन तमाम स्थितियों पर कथा साहित्य में विचार करते हुये वे पश्चिमी संगीत और शराब घर का जिक्र अवश्य करते हैं। इन जिक्रों में भी एक ओर जहां अस्तित्ववादी विचारकों की झलक है, वहीं दूसरी ओर अकेलेपन से जुड़े हुये संत्रस्त जीवन की झलक है। उन्होंने शराब के विविध भेद और विविध नाम कथासाहित्य में गिनाये हैं। दरअसल इनका कथासाहित्य उस वातावरण और परिवेश की देन है, जहां वियर बार होते हैं। इतना

1- कहानी की संवेदनशीलता, सिद्धान्त और प्रयोग, पृष्ठ 81

ही नहीं छलछलाते मग को उठाकर पीने वाले हमराही भी होते हैं। शराब की प्रतिक्रिया का जिक्र करते हुये निर्मल वर्मा ने जीवन के यथार्थबोध से एक नाता स्थापित कर लिया है 'खोज' की लडकी की आवाज ह्विस्की पीने के बाद तरल हो जाती है। 'लन्दन की एक रात' का पात्र फड़फड़ाते पंख से उड़ने को आतुर हो जाता है। 'अमालिया' का अरब पीने के बाद लड़कियों को देखकर सीटी बजाता है। 'इतनी बड़ी आकांक्षा' का पति पीने के बाद कांप उठता है ये सब प्रतिक्रियायें कहानी साहित्य की कथ्यगत उपलब्धियां ही हैं। वर्मा के कथासाहित्य में जहां शराब के स्वाद पर जोर दिया जाता है वहां सिगरेट के धुयें को उड़ाने की दिलचस्पी भी दिखायी गयी है। प्रवास यात्रा में वर्मा ने पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों को अधिक सिगरेट पीते हुये देखा है। 'अंतर' की नायिका को सिगरेट पीना बहुत पसंद है। इतना ही नहीं 'लवर्स' की निन्दी, 'छुट्टियों के बाद' की लड़की, ''वीक एण्ड'' की मार्था ऐसे ही अनेक पात्र हैं, जो सिगरेट से शिष्टाचार ही नहीं बल्कि साथियों की भूखी लालसा को भी तृप्त करते हैं। यहां तक ही नहीं- वर्मा ने सिगरेट के अनौचित्य एवं अपराध बोध से ग्रसित पात्रों की सजगता का भी ख्याल किया है। यदि सिगरेट वाली बात कथ्यगत अनुकूलता में शराब की भांति नकार भी दी जाये, लेकिन एक कथ्य जो वर्मा ने उजागर किया है, वह आधुनिकता-बोध का सबसे प्रमुख लक्षण है। बीच बाजार में दो प्रेमी प्रेमिकाओं का लिपटना, चूमना, सहलाना, गुदगुदाना तक ही नहीं बल्कि प्लेटफार्म पर अपने मंगेतर से लिपट जाना एक विदेशी ही प्रभाव है। 'छुट्टियों के बाद' कहानी की मार्था अपने प्रेमी से लिपटती ही नहीं है, बल्कि परस्पर खूब कसकर चूमने का प्रयास करती है। 'अमालिया' का युवक दफ्तर में महिला से हाथ ही नहीं मिलाता बल्कि उसके कनपटियों के पास सटे हुये बालों को और होठों के नजदीक उगते हुये भावों को पीने का प्रयास करता है। दो घर की नायिका ने तो कमाल ही कर दिया। उसने बीच बाजार में अपने प्रेमी को झकझोरा ही नहीं बल्कि मुखर होकर उसे शयनकक्ष तक खींच ही लायी। 'अन्तर' की नायक-नायिका खुले चौराहे पर दोस्तों के बीच मौज मस्ती करने में चूकने नहीं हैं। यह तो बात रही लिपटने, चिपटने और छूने तक की। उनके उपन्यास 'वे दिन' में और भी खासियत है लेखक ने कह दिया है कि चमकती धूप में उसे ऐसा लग रहा था कि उसने अपने मन की धूप जैसी उजली आभा मेरे मन पर उतार दी है और मेरे होंठ अचानक ही उसके मुंह पर घिसटते चले गये। इतना ही नहीं वह मुझसे सटती ही चली गयी, पास आ गयी और मैं निर्वाक हो गया। निर्मल वर्मा की 'पिता और प्रेमी' कहानी साम्प्रतिकता की सबसे बड़ी पहचान है। इसमें नायक नायिका की शादी नहीं होती है, किन्तु नायिका की गोद में बच्चा है। इस प्रकार उसका प्रिय प्रेमी भी है और पिता भी है। 'पिछली गर्मियों में' और भी बात स्पष्ट हो जाती है। महीप बिना शादी के ही एक उस लड़की के साथ रह रहा है। 'दो घर' कहानी में बिना शादी के गृहस्थी बना ली गयी है, जिसमें पति-पत्नी, बाल-बच्चे सब कुछ तो है। इतना भी तो प्रभाव कह सकेंगे, लेकिन इससे भी ज्यादा 'पिछली गर्मियों में' भारतीय संस्कार के विद्रोह की बात है। इसमें नीता और निन्दी भाई-बहन होकर भी परस्पर नृत्य करते हैं, नृत्य ही नहीं अंग प्रदर्शन का भी सिलसिला जारी रहता है और लगता है कि भारत जिसे नैतिकता की संज्ञा देता है वह विदेशी नैतिकता से मेल नहीं खाती है।

'अन्तर' कहानी का नया आयाम खोलती है शारीरिक सम्बन्ध विदेशों में यद्यपि विश्लेषण के

बहुत बड़े मुद्दे नहीं होते, फिर एक बार विदेशों में इस सम्बन्ध से अद्भुत प्रक्रिया पर विचार करने योग्य है। 'अन्तर' कहानी के अस्पताल को रिसेप्शनिष्ट जब यह जानती है कि लोग गर्भपात अपने सुख के लिये करते हैं, तो उसे बड़ा आश्चर्य होता है और वह कहानी के प्रेमी से अजीब रूखे ढंग से विरक्ति से बात करती है। वहां भी लोग गर्भपात को अपराध भाव से देखते हैं। वर्मा ने इस दृष्टि से समूचे विश्व के संस्कार को नैतिकता की भिंची हुयी मुट्ठी में भरकर देखने का हल्का सा प्रयास किया है। प्रवासी जीवन में कहानीकार के विचित्र अनुभव हैं। जीवनगत घोर विडंबनाओं को कहानीकार ने बारीकी से उकेरने का प्रयास किया है।

निर्मल वर्मा का कथा संसार रूमानियत और अस्तित्व बोध का अद्भुत सामंजस्य लिये हुये है। उनके कथापात्र पूर्व पश्चिम परम्परा और आधुनिकता दोनों ही छोरों से जुड़े हुये दृष्टिगत होते हैं। इन जुड़ावों में सबसे प्रभावी कोई बात है तो आधुनिकता ही है, जिसके करण कथ्य तरल भी है और भावुकता से सराबोर भी है। सौन्दर्य बोध भी है और देहात्म बोध का नया परिचय भी है। राग भी है और तनाव से मुक्ति का साधन भी है। ऐसा प्रतीत होता है कि कथाकार का रूमानियत-चिन्तन आधुनिकता मिश्रित रूमानियत है। उन्होंने व्यक्ति की आस्थाओं पर परम्परा से उठकर कुछ नवीन आकार तराशने का प्रयास किया है, वहां मानसिक बेचैनी से मुक्ति पाने के लिये आत्म केन्द्रित स्थापना भी की है। वातावरण की खामोश आवाजें, पेड़ों के फड़फड़ाते पत्ते, इमारतों की चुप्पी साधे दीवारें, हवा की सांय-सायं करती हुयी ध्वनियां तथा व्यक्तियों के पथराये नेत्रों की बिरलता उनके कथानक का सूत्रधार है। कथाकार ज्यों ही कथा पट को खोलने का प्रयास करता है उसमें एक अजीब सी वातावरण की तन्द्रा सिमटकर उसके सामने खड़ी हो जाती है। इस भाव भीने शान्त पहलू को प्रतीकात्मक ढंग से यदि सोचा जाये, तो यह प्रतीत होता है कि अकेलेपन का घुटता हुआ मन चारों ओर अंधेरा ही अंधेरा उगल रहा है। और समालोचक को यह कहते देर नहीं लगेगी कि निर्मल वर्मा के मन के भीतर बैठी हुयी दो धारणायें, जिनमें व्यक्ति का व्यक्ति से स्टेचमेण्ट है और व्यक्ति का व्यक्ति से एलीनियेशन है -- यह सब कुछ कथा का सूत्र पकड़कर जूझ रहा है।

इसीलिए कथानक में रूमानियत होने के बावजूद भी कहीं कुछ खोया और कहीं कुछ पाया हुआ है। एक ओर लेखक मन से ग्रसित विडम्बना का शिकार होकर खुद ही पात्र बन जाता है तो दूसरी ओर सामाजिक सापेक्षता का ख्याल करता चलता है। 'तीसरी गवाह' कहानी इसका अन्त तक उदाहरण है। रोहतगी साहब से पिछले दो--ढाई वर्ष से प्यार जताने वाली लड़की कोर्ट में शादी करने के लिये तत्पर हो जाती है, लेकिन तीसरे गवाह की तलाश में समय लग जाने पर और उसी अन्तराल में सामाजिक बतौर मुंशी तथा जज की गढ़ी हुयी अपलक दृष्टि से उस लड़की का पलायनवादी हो जाना यह सिद्ध करता है कि समूह में भी एक वर्चस्व है। निर्मल वर्मा ने विसंगतियों के संसार में अकेले अभिशप्त मनुष्य का चित्रण किया है। मानसिक स्तर पर व्यक्ति फटे चिथड़े पहनकर भी स्वर्णिम भव्यता की कामना करता रहता है। युद्ध की विभीषिका को समझते हुये भी रूमानियत के दरवाजे पर दस्तक देता रहता है। प्रवासी जीवन के इन विसंगतिपूर्ण झमेलों को कथाकार ने खूब गाया है सबसे बड़ा प्रश्न निर्मल वर्मा के समूचे कथा साहित्य में आदमी की जिन्दगी से है कि वह इन विसंगतियों के बीच भी जी रहा है। वह एक ओर अलगाव भी सहन नहीं करता तो दूसरी ओर उसे प्रतिबद्धता भी बोझिल लगती है। इन तात्विक विचारों

के बीच लगता है कि लेखक यही मान लेता है कि आदमी अपनी जिन्दगी में स्वेच्छा से कोई चुनाव करता है, तो शराब का करता है। फिर भी उन विदेशियों का व्यक्तित्व स्वतंत्र रहने के अभिशाप्त है। स्वतंत्र्योत्तर से अभिप्राय प्रतिबद्धता से ऊपर उठने से है कथाकार बार-बार यही कहता है कि व्यक्ति को अपने स्तर से जरा ऊपर उठकर रहना चाहिये और अपने निर्णय पर किसी के निर्णय को हावी नहीं होने देना चाहिये। दरअसल जिन्दगी बड़ी बेदर्दी से खिसकती है, उसे अपनी हथेलियों पर आराम से नहीं खिसकने देना चाहिये। व्यक्ति के जीवन में स्वतंत्र निर्णय ही जिन्दगी को बढ़ाने और घटाने में सहायक हो सकते हैं। मन का सच्चा व्यायाम निर्णय के अभ्यास से नहीं, चिन्तन से भी नहीं, अगर है तो मन की सूक्ष्म प्रवृत्ति से है, जिसे कथाकार ने हर कथापात्र द्वारा अनिवार्यतः स्वीकारा है। निर्मल वर्मा कथा साहित्य में बेकारी, बेरोजगारी, बुढ़ापा, रूग्णता तथा स्त्रैण समस्या को प्रधानता देते हुये मनोवैज्ञानिक जीवनपरक सत्यों का उद्‌घाटन करते हैं। 'पराये शहर में' की वेश्या आदमियों की भीड़ में मकान की तरह खड़ी है। अमालिया की आंखों के नीचे नीले-नीले गड्ढे बन गये हैं। इतनी बड़ी आकांक्षा की जिप्सी लड़की लगातार सोयी नहीं है। 'डायरी का खेल' बिट्‌टो विवाह की समस्या को कर अनबूझ पहेली बन गयी है। 'लन्दन की एक रात' में मनुष्य-मनुष्य के बीच दीवार खड़ी कर दी गयी है। 'दो घर' में एक व्यथा को लेकर विविध काया कल्प किये गये हैं। इतना ही नहीं 'डेढ़ इंच ऊपर' में पुलिस के अमानवीय व्यवहार को दर्शाया गया है। और कितनी ही ऐसी कहानियां हैं, जिनमें बेरोजगारी, बेकारी का लबादा पात्रों को पहनाया गया है। विदेश के अमानवीय सूत्र खतरे से खाली नहीं हैं।

''दो घर'' कहानी के बच्चे और अन्य पड़ोसियों के बच्चों के साथ खेल नहीं सकते हैं, क्योंकि उनका पिता भारतीय है और मां अंग्रेज है। इतना ही नहीं 'लन्दन की एक रात' और नीग्रो की ज्वलन्त समस्या बनी हुयी है। कथाकार ने जहां कहानियों में जीवन की घिसटती छाया को यत्र-तत्र छिटकाया है वहां झिपझिपाती आंखों की हल्की सी रोशनी को अन्तर्मन की परतों तक पहुंचाया है। 'एक चिथड़ा सुख' उपन्यास में बिट्‌टी पात्र धीरे से हंसती है और सोचती है कि यह जिन्दगी भी क्या जिन्दगी है जिसे कभी नार्मल कभी एबनार्मल कहा जाता है। बिट्‌टी के होंठ एक अजीब मुस्कान से खुल जाते हैं और सोचने लगती है कि उसने अपना घर छोड़ा ही क्यों था। धीरे-धीरे एक सन्नाटा हो जाता है और सारी चीजें डूबती सी जान पड़ती हैं फिर जिन्दगी की उजली परिभाषा जानने के लिये सिगरेट जलाना ही श्रेयष्कर समझती है। उसे लगता है कि तीली की रोशनी से सहसा थमा और जमा हुआ जिन्दगी का स्वरूप भभक उठा है और उसे ऐसा लगता है कि जिन्दगी जीने का सवाल आखिरकार दोहराया ही क्यूं जा रहा है। उदग्र होकर वह समूचे तनावपूर्ण जिन्दगी का प्रतिनिधित्व करती हुयी एक ही आवाज में रट लगाने लगती है-गेट आउट, गेट आउट आफ माई हाउस, गेट आउट। वर्मा ने इन शब्दों में केवल मकान से बाहर चले जाने की बात नहीं कही है, बल्कि उन्हें महसूसता है कि जिन्दगी का सब कुछ बाहर चला गया है। निर्मल का कथा साहित्य शिल्पगत आग्रह को लिये हुये नहीं है, फिर भी इसमें संश्लिष्ट शैल्पिक योजना है। उनके कथा साहित्य को पढ़कर यह स्पष्ट होता है कि वह रूपवाद से मुक्त है। कमलेश्वर के शब्दों में ऐसी ही कथात्मक धारा को निराकार शैली कहा जाता है। वर्मा जी प्रतीकात्मक, बिम्बात्मक शिल्प सौन्दर्य के अनोखे सत्य को उद्‌घाटित करते हैं जिसमें अपूर्व दीप्ति है, चेतन प्रवाह है और व्यक्ति से व्यक्ति का सम्प्रेषणीय स्वरूप है। कथाकार की भाषा ने कथ्यानुरूप चिंतन एवं भावुकता का वर्णन किया

है। युग पुरुष कथाकार ने भाषा की गति को नये धरातल प्रदान किये हैं, इसीलिए भाषा में अंग्रेजी का पुट अन्तर्राष्ट्रीयकरण की प्रवृत्ति का द्योतक है। और जहां-तहां उर्दू का पुट हिन्दुस्तानी शैली का स्मरण कराता है। तत्सम शब्द ऐतिहासिक परम्परा के संवाहक बने हैं। आधुनिकता के विभिन्न आयामों को छूने वाले शब्द विन्यास को पढ़कर यह बात सहसा ही सामने आ जाती है। निष्कर्षतः निर्मल वर्मा ने जीवनगत सम्वेदित उन्हीं आयामों को संस्पर्श किया है, जिन्हें वे प्रवास काल में भोग सके हैं आज समूचा विश्व भौगोलिक इकाई होता जा रहा है। ऐसी गत्यात्मक स्थिति में कथाकार की अन्तःतलाश उपयुक्त ही है। दरअसल आधुनिकता के गर्भ में विकसित होती साम्प्रतिकता स्वयं एक विवादास्पद सवाल बनकर हर कथाकार के सामने खड़ी हुयी है। निर्मल वर्मा ने कभी इसे प्रक्रिया के रूप में देखा है तो कभी जीवन बोध को नये सिरे में। आधुनिकता वर्ग सापेक्ष एक कड़ी भी है और सोच संवेदना की संश्लिष्ट इकाई भी है। वर्मा जी ने इसे बहुआयामी और अभिव्यंजित शैली से नाना रूपों में देखा है। यदि बहुत ही स्पष्ट तरीके से फूल के पराग की भांति आधुनिकता के सन्निवेश को ग्रहण किया जाये तो वर्मा के कथा संसार में जटिल और दुरूह रूप में पनपती स्वतंत्रता की ही दुहाई स्त्री पुरुष के मध्य एक विचित्र सृष्टि बनी हुयी है। व्यक्ति चाहे देशी हो या विदेशी, उसकी अपनी प्राथमिक आवश्यकतायें होती हैं, जिन्हें वह पूरा न कर पाने पर अपूर्ण तथा अधूरा ही महसूस करता है। वर्मा जी की दृष्टि इन्हीं साम्प्रतिक विसंगतियों की पड़ताल करती है। व्यक्तियों की इसी खीझ, अतृप्ति, कुंठा तथा अन्य मानसिक रुग्णता का स्थान कथाकार ने उपन्यासों और कहानियों के कथ्य में अनवरत रूप से किया है। आज नर-नारी का सह सम्बन्ध पुरातन मूल्यों को जहां अस्वीकारता है, वहां विवश होकर सुविधा की दृष्टि से मान्य भी समझता है। वर्मा जी ने वैदेशिक संस्कृति में यद्यपि इस मूल्यवता को अभिनव दिशा दी है, फिर भी उनके मन की कठोर और उभयपक्षीय बढ़ती हुयी विचारधारा कभी इधर कभी उधर निकासों के कगारों से टकराती ही रही है। कथाकार प्रेम, सौन्दर्य का उपासक है, पोषक है। किन्तु यह प्रेम देहत्व बोध का वर्चस्व लिये हुये है। प्रवास काल के दौरान विदेशियों के मध्य लेखकीय तटस्थता निर्विकार नहीं रह सकी है वह 'मैं' पात्र होकर हर पात्र के साथ सह पात्र बन गया है। भारतीयता का यह सामंजस्य भले ही वैदेशिक संस्कृति में फीका लगे, लेकिन लेखक ने दूसरे देशों में बनती बिगड़ती साम्प्रतिकता के दरवाजों से निकलती हुयी ठण्डी गर्म हवा का अनुभव किया है। हमारे देश की मानसिकता और विदेश के परिवेश से जुड़ी संश्लिष्ट (Complexed) वैयक्तिकता की प्रभाव सृष्टि कथाकार की अभीष्ट का साध्य हो सकी है। वस्तुतः आधुनिकता के क्रोड़ में सुगुम्फित साम्प्रतिकता दुरूह, जटिल एवं संग्रंथित इकाई है। कहा जा सकता है कि आज की हवा में सांस लेने वाला हर प्राणी प्रयोग धर्मिता की सह अस्तित्ववादी रूपरेखा से जितना जुड़ा हुआ है, उतना ही पुराने से हटकर कुछ नया है बहुत ही स्पष्ट है कि निर्मल वर्मा की कहानियां और उपन्यास समाधान के लिये नहीं बल्कि यथार्थ के भोगे हुये क्षणों की सूचना है कथाकार ने मानव मन की लिप्सा और वातावरण में बुनी हुयी संवेदनात्मक अवधारणाओं को अपने कथा संसार में एक रूपता प्रदान की है। लगता है मन के भीतर भी मन परतों दर परतों कुछ कहता चला गया है, जिसे सुलझाया तो नहीं जा सकता लेकिन ऐकान्तिक क्षणों में अनुभूतिगम्य बनाया जा सकता है। इस दृष्टि से निर्मल वर्मा एक सजग, संवेदनशील, जीवन और जगत के सूक्ष्म दृष्टा और परिवेशगत साम्प्रतिक संदर्भों में कुशल पर्यवेक्षक हैं।

युग- संवाह के आधुनिक काल-खण्ड का वर्तमान परिदृष्य ही 'साम्प्रतिकता' है। काल-चेतना की अखण्ड अस्मिता को प्रागैतिहासिक, ऐतिहासिक, पूर्व मध्यकालीन, मध्य मध्यकालीन, उत्तर मध्यकालीन तथा आधुनिककालीन रूप में परिशीलित करने के लिये बहुधा तत्कालीन स्मृत सामग्री, लिखित सामग्री तथा उक्त आधारों पर सृजित काल्पनिक सामग्री का उपयोग होता है। निर्मल वर्मा ने प्रायः विदेशी धरती पर विश्वव्यापी युग-संस्कृति, परिवेशगत व्यावहारिकता तथा विज्ञान एवं तर्क के आलोक में विकसित समकालीन मनोदशा को अपने वस्तुविन्यास के माध्यम से प्रस्तुत करने का उपक्रम किया है। मानव साम्प्रतिक सन्दर्भों से प्रतिबद्ध होता हुआ भी भूत और भविष्य की छायाओं से मुक्त नहीं। कालगत सातत्य के अन्तर्गत ही भूत, भविष्यत् तथा वर्तमान का अस्तित्व है। भूत जहां अवचेतन में प्रतिष्ठित रहकर मानव के साम्प्रतिक क्रियाकलापों को निदेशित, प्रेरित तथा पुरस्तात करता है, वहीं आशाओं के इन्द्रधनुषी स्वप्न भविष्यत् में प्रवेश की परियोजनायें परिसृष्ट करते हैं। इस प्रकार वर्तमान के पीछे और आगे के दोनों छोर मानव के क्रमिक विकास तथा जीवन-पद्धति के सूत्रधार हैं। मानव की इस सतत यात्रा का प्रभाव उसके मनोजगत को विविध संस्कार देता है। मानव की इस मानसिक यात्रा को हम आधुनिकता और परम्परा से सम्पृक्त पाते हैं, जिसमें भावी सम्भावनाओं के रेशमी ताने-बाने बुने जाते रहते हैं। आज की उपभोक्तावादी संस्कृति में परिवेशगत परिदृष्यों में तीव्र वेग से विस्तार परिवर्तन हो रहे हैं, जिनसे दूर भाग पाना सम्भव नहीं। उसकी बौद्धिकता पर पड़ता साम्प्रतिक दवाव उसकी संवेदनाओं को आहत तथा कभी-कभी चिथड़ा-चिथड़ा कर देता है। इस यथार्थ का वोध तथा पड़ताल का क्रम भी निरन्तर चलता रहता हैं जिसको समाज शास्त्री अपने ढंग से, नीति शास्त्री अपने ढंग से तथा साहित्यकार अपने ढंग से निरूपित करता है। इसी उपक्रम से उंतपन्न विविध विचारधाराओं के फलस्वरूप विश्व की विभिन्न संस्कृतियों तथा सभ्यताओं ने परम्परा से ही पाथेय ग्रहण करते हुये मानव-संस्कृति को नव्य पथ तथा लक्ष्य प्रदान किये हैं।

आधुनिकता के साथ साम्प्रतिकता का प्रश्न उठना स्वाभाविक ही है। आधुनिकता को साम्प्रतिकता मानना सर्वथा भ्रामक है। आधुनिकता साम्प्रतिकता से भिन्न अर्थ रखती है। 'साम्प्रतिकता' को अंग्रेजी में 'conteprary' कहते हैं, जिसका सम्बन्ध समकाल अर्थात सम-सामयिकता से है और 'आधुनिकता' को अंग्रेजी में 'modernity' कहते हैं, जिसका सम्बन्ध प्रवृत्ति या शैली से है। 'आधुनिक' एक ऐसा शब्द है, जो आधुनिक जीवन-पद्धति के निर्वाह में आधुनिक अस्तित्ववाद का निर्वाह करता है। साम्प्रतिकता या समकालीनता से हमारा आशय सम-काल के साथ-साथ उस क्षण गहरी तीव्रानुभूति की ग्राह्यता से है, जो परिस्थितिजन्य है और बिना किसी पूर्वाग्रह के औचित्यधर्मी आग्रह के साथ व्यक्त होती है। साम्प्रतिकता आधुनिक होने का मानदण्ड नहीं है, बल्कि आधुनिकता की सृजनात्मक अर्थवत्ता साम्प्रतिकता का अतिक्रमण करने में है और आधुनिकता के परिपार्श्व में अद्यतन क्षण पर अपनी अस्मिता के हस्ताक्षर करना साम्प्रतिकता की नव्य धर्मी संक्रान्ति है।

समकालीन भारत में साहित्य के बदलते प्रतिमान इस तथ्य की ओर संकेत करते हैं कि विज्ञान और प्रौद्योगिकी ने समाज के सारे मानदण्ड परिवर्तित करने चाहे हैं। यांत्रिकी के इस

निविड़ वन में सतत् वेगमय जीवन की अवकाशहीनता, निरर्थकता, अजनबीपन, संत्रास, घुटन, मृत्युबोध, कुण्ठा, कुत्सा, न्यूनता, विसंगति तथा विकृति जन्म ले रही है। साम्प्रतिक साहित्य ने सामाजिक यथार्थ की गहराइयों का चित्र उत्कीर्ण किया है। सामाजिक, राजनीति, सांस्कृतिक, पारिवारिक एवं मानसिक धरालत पर सृजित हुये नवीन सन्दर्भों तथा सत्यों को साम्प्रतिक साहित्य ने ईमानदारी से प्रस्तुत करना चाहा है। इन साहित्यकारों में निर्मल वर्मा को विशेष स्थान प्राप्त है। इनकी कृतियों में विश्वजनीन सांस्कृतिक उत्क्रान्ति से उपजी मनोवृत्तियों के सूक्ष्मातिसूक्ष्म परिदृष्य प्रस्तुत हैं। मानवीय जिजीविषा के बदले लक्ष्यों के अनन्त आयाम उनके कथ्य तथा विमर्श में समाहित हैं। उनकी कृतियों में संपूर्ण युग को उसकी सोच तथा संवेदना के साथ प्रस्तुत करने की चेष्टा है। 'वे दिन', 'लाल टीन की छत', 'एक चिथड़ा सुख' जैसे उपन्यास तथा 'परिन्दे', 'पिछली गर्मियों में', 'जलती झाड़ी', 'बीच बहस में', तथा 'कौआ और काला पानी' जैसे कहानी संग्रहों में निर्मल वर्मा ने वैश्विक सांस्कृतिक क्रान्ति के परिप्रेक्ष्य में भारत के महानगरीय मध्यवर्गीय जीवन के सामाजिक, वैचारिक, संवेदनात्मक, मनोकायिक तथा बौद्धिक यथार्थ के क्रान्तिग्रस्त परिवर्तनगामी यथार्थ का उद्घाटन किया है। उनके वस्तुविन्यास में सुगुम्फित पात्र, परिदृष्य, घटनायें, बाह्य तथा अर्न्तद्वद्व वैश्विक यथार्थ को व्यक्ति यथार्थ के माध्यम से व्यक्त करने में सक्षम हैं। निर्मल वर्मा ने जीवनगत यथार्थ को विविध कोणों से अनावृत किया है। उन्होंने कथा-साहित्य की आत्मा को नये ढंग से परिभाषित करते हुये कथ्यगत बदलाव को विशेष रूप से रेखांकित किया है। जीवनगत गतिशीलता का अपनी रचनाधर्मिता में निर्वाह करते हुये उन्होंने उपेक्षित, कारुणिक, दुखी चरित्रों को सत्य के धरातल पर ईमानदारी से उभारा है। सम्पूर्ण कथा-यात्रा में व्यक्तिगत अभावों की प्रतिक्रिया के कारण मन में उठते भावों का सूक्ष्म विश्लेषण किया गया है, जिनके मूल में सहज कामनायें हैं। कथाकार का लक्ष्य वैयक्तिक अनुभवों द्वारा मानव-भावों का चित्रण है। उनके कथा-साहित्य में एक ओर यथार्थवाद की महत्वपूर्ण कड़ियां हैं, तो दूसरी ओर जीवनगत मनोवैज्ञानिकता के श्रेष्ठ उदाहरण हैं। उनका कथ्य व्यक्तिवादी, आत्मकेन्द्रित तथा अहंग्रस्त हो गया है, इसलिए उनका प्रायः प्रत्येक वस्तु-विन्यास आत्मविद्रोह तथा विशिष्टताओं को समेटे हुये है।

साम्प्रतिकता के सन्दर्भ में इन कृतियों के सांकेतिक निष्कर्ष अधोप्रस्तुत बिन्दुओं के रूप में परिलक्षित हैं-

1- साम्प्रतिक परिवेशः मूल्यहीनता की स्थिति

2- पारिवारिक और सामाजिक मूल्यों में परिवर्तन

3- सम्बन्धहीता तथा सम्बन्ध के नये आयाम

4- यथार्थ के प्रति बदला हुआ दृष्टिकोण

5- साहित्य के कथ्य में नये मूल्यों का सम्प्रेषण

6- कालधर्मी वस्तुविधान में संयोजशीलता

निर्मल वर्मा का कथागत शैल्पिक आयोजन पूर्ववर्ती परम्परा से सम्बन्धित होते हुये भी अपना पृथक अस्तित्व रखता है। वस्तुतः शिल्प-विधि कथ्यगत पारार्ध का एक प्रयोग पक्ष है, जिसे कथाकार चेतना-प्रवाह के विविध पड़ावों में विविध रंग भरता चलता है। कथाकार की

रहस्यात्मकता, कुतूहलता, आकस्मिकता और वर्णनात्मकता कथ्य विकास के लिये आधार स्तम्भ है। वातावरण, परिवेश इन आयामों को उभारता चलता है। शैली, भाषा, कथ्य, वस्तुविन्यास की गहराई का समाहार करती चलती है। निर्मल वर्मा ने सहज मानवीय समस्याओं को सहज शैली में ही प्रस्फुटित किया है। जीवनपरक दार्शनिकता यद्यपि दुर्बोध और संश्लिष्ट है, फिर भी कृतिक ने कृति में उनकी गहराइयों को नयी दृष्टि से अनुशीलित किया है। रचनाकार मानवीय संवेदना को लेकर अटल और संकीर्ण गलियों में शिल्प-प्रयोग के बल पर ही प्रविष्टि होता है। व्यक्ति के टेढ़े-मेढ़े अंधकारपूर्ण जीवन को शिल्प के झरोखे से देखा है। कहीं-कहीं तो वर्मा जी का शिल्प इतना पैना हो गया है कि कथानक सूक्ष्म ओर सीमित सा होने के बावजूद भी आन्तरिक गहराई अधिक छूता चला है इसीलिए निर्मल वर्मा की नौ कहानियों से नवीन शिल्प का शुभारम्भ माना जाता है। कहानियों में ही नहीं- उनके उपन्यासों में भी कथानक पारम्परिकता से अलग हट कर हैं।

भाषा में लाक्षणिक व्यंजना का प्राधान्य है। शैली में विविधता है, जिसके कारण वस्तुविधान में अनेक प्रयोगों का आग्रह मिलता है। भिन्न शैलियों का प्रयोग होते हुये भी सभी के मूल में जीवन-विश्लेषण का प्रमुख ध्येय है। अन्तसंघर्ष एवं स्वगत कथनों की भरमार भी इसलिए ही है कि व्यक्ति के अहं का विश्लेषण और अहं की एकाकिता आज सर्वत्र परिव्याप्त है। इन उपपत्तियों के बाद भी शैल्पिक सपाटता के कारण उनके कथानक स्पष्ट और परिष्कृत हैं। कलात्मक आग्रह का अत्यधिक अभाव है। काल-सापेक्ष उद्भावनाओं का समावेश है।

निर्मल वर्मा चाहे कहानी हो या उपन्यास, शैल्पिक दृष्टि से दोनों में ही रूप-बन्ध का आयोजन करते हैं। कथानक की गहराई और मार्मिकता को बहुत अधिक पाट देने से रूप-बन्ध की अस्मिता का प्रश्न खड़ा हो जाता है।

वर्मा जी की कृतियों में कथ्य के अनुरूप ही भाषा का प्रयोग परिदृष्ट होता है। उनके उपन्यासों में भाषा के प्रयोग से अनुभूति, प्रयोग और शिल्प की अभिन्नता स्पष्ट हो जाती है। निर्मल वर्मा के कथा-साहित्य में भाषिक संरचना का स्वरूप पांच प्रकरणों में प्रयुक्त हुआ है। वे हैं.....

1- भावानुकूल भाषा

2- जन-भाषा

3- अलंकृत भाषा

4- काव्यात्मक भाषा

5- सूत्रात्मक भाषा

साम्प्रतिकता एक कालवाची शब्द है। काल का कोई ठोस आकार नहीं होता, अतः उसके स्वतन्त्र रूप का साक्षात्कार भी कठिन है। परिवेश के साथ रखकर उसकी अवधारणा स्पष्ट हो सकती है। परस्पर आकर्षण-विकर्षण और संघात से जीव और प्रकृति में जो परिवर्तन होते हैं, उनका सातत्य ही 'काल' का बोध कराता है। इस अर्थ में 'काल' अनुभव के साथ एकाकार हो जाता है। हमारे अनुभव में ही 'काल' की सत्ता है। साम्प्रतिकता का सम्बन्ध किसी न किसी रूप में 'वर्तमान' के साथ जोड़ा गया है। वर्तमान- अर्थात् वर्तमान अनुभव से। यहां 'वर्तमान' शब्द का संकीर्ण शब्दिक अर्थ लेने वाले 'वर्तमान' को तात्कालिकता से जोड़ सकते हैं। काल-संवाह के

वर्तमान परिदृष्य पर 'आधुनिकता' का प्रचुर प्रभाव रहता है। 'वर्तमान' को 'आधुनिकता' के सन्दर्भ में परिशीलित करने पर एक विस्तृत और व्यापक अर्थ-बोध रूपायित होता है। आधुनिकता का काल-विस्तार साम्प्रतिकता की तुलना में अतिविस्तृत है। वस्तुतः आधुनिकता का सम्बन्ध हमारे उन अनुभवों से है, जिन्हें हम वैज्ञानिक एवं औद्योगिक सभ्यता के अनुभव कह सकते हैं। इस वैज्ञानिक, औद्योगिक सभ्यता का जन्म पश्चिम में बहुत पहले हो चुका था, पर बीसवीं शताब्दी से तो यह सम्पूर्ण विश्व में छा गयी। विज्ञान ने पहली बार रूढ़ियों और रहस्यमय चमत्कारों से पृथक होकर जीवन और जगत को एक यथार्थ और वैज्ञानिक दृष्टि से देखा। सृष्टि के अनेक रहस्यों का, जिन्हें मनुष्य दैवी चमत्कार समझता था, विज्ञान ने उनका यथार्थपरक उद्‌घाटन किया। उसने मनुष्य को एक तार्किक, संतुलित और स्वतन्त्र दृष्टि प्रदान की। विज्ञान के आविष्कारों ने औद्योगिक तथा उपभोक्तावादी संस्कृति को जन्म दिया। 'डार्विन' ने बहुत पहले ही 'विकासवादी सिद्धान्त' द्वारा मनुष्य की धार्मिक भावनाओं को झकझोर दिया था। 'मार्क्स' और 'फ्रायड' जैसे विचारकों ने उसे पुष्ट और गतिशील किया।

'ईश्वर', 'रहस्य' तथा 'धर्म' की रूढ़ियों से अलग मानवीय सामर्थ्य में विश्वास आधुनिकता का लक्षण माना गया। काल-संवाह में आधुनिकता का प्रवाह निरन्तर साम्प्रतिकत सन्दर्भों का सृजन करता हुआ समकालीन परिवेश का सूत्रधार बना रहता है। उसका उत्स प्रागैतिहासिकता में, वर्तमान साम्प्रतिकता में और भविष्यत् नितनूनता में समानिष्ट है।

मार्क्स के भौतिकवाद ने यदि मानवीय इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या की तो फ्रायड के मनोविश्लेषक ने मनुष्य को उसके अनेकानेक रहस्यों से परिचित कराया। इन सभी महत्वपूर्ण प्रभावों ने मानव के सम्पूर्ण अस्तित्व में हलचल मचा दी। दैवी चमत्कार, रहस्य और अन्ध श्रद्धा का युग समाप्त हुआ। मनुष्य की भावुकता कम हुयी और एक नये प्रकार की बौद्धिक जागरूकता का विकास हुआ। इस नवीन बौद्धिक जागरूकता ने परम्परागत रूढ़ियों के स्थान पर यथार्थ को महत्व दिया। नैतिकता के परम्परागत मानदण्ड टूटने लगे। श्लील-अश्लील को नयी दृष्टि से देखा जाने लगा।

निर्मल वर्मा के समग्र तथा साहित्य का गवेषणापरक परिशीलन करने के उपरान्त एक बात स्पष्टया विवक्षित होती है, कि उन पर प्रचुर परिमाण में विदेशी प्रभाव पड़ा है। यह उनकी विशेषता है कि उन्होंने विश्वव्यापी, वैचारिक, सांस्कृतिक, मूल्यपरक तथा यथार्थ के धरातल पर अभिनव स्थापापरक सृजनधर्मी प्रस्तुतियां की हैं, जो नितांत मौलिक और निर्मल वर्मा की आत्माभिव्यक्ति से संवेष्टित दस्तावेज बन गयी हैं। विश्व के दार्शनिकों, साहित्यकारों, विदेश-प्रवास की स्वानुभूतियों तथा विज्ञान और तर्क के आलोक में उन्होंने आधुनिकता से ओत-प्रोत जीवन-प्रवाह के साम्प्रतिक सन्दर्भों को अपनी निजस्विनी दृष्टि से देखा-परखा, महसूस किया और भागे हुए के यथार्थ रूप में लोकार्पित कर दिया। उन्होंने कथ्यगत विदेशी प्रभाव का स्वरूप अपने प्रतिमानों के अनुसार ग्रहण किया है। विदेशी सौन्दर्य को उन्होंने अभिनव मानकों से गुजार कर विम्बायित किया है।

भोगवादी परिवेश में रहते हुये उनकी अन्तश्चेतना पर उसका प्रभाव न पड़ना सम्भव नहीं था। वासनात्मक आसक्ति के खण्डित चित्रों, देहात्मबाध, मुक्तामलन, उत्तजक संगीत, शराबघरों

के चित्रांकन ने उनकी कृतियों में विदेशी संस्कृति की मुक्त भोगवादी प्रवृत्तियों का वास्तविक प्रस्तुतीकरण किया है। ऐसा कर सकने के लिये निर्मल वर्मा ने भाषा को नयी गढ़न, नयी तराश तथा नयी ऊर्जा दी है। अंग्रेजी के पुट, उर्दू की बघार तथा हिन्दुस्तानी शैली को नयी अदा से प्रस्तुत करके वर्मा जी ने कथ्यगत साम्प्रतिकता में भाषा-शैलीगत साम्प्रतिकता का भी सन्निवेश किया है। वस्तुतः आधुनिकता के कुसुम-हार में अनुस्यूत साम्प्रतिकता दुरूह, जटिल एवं संग्रन्थित इकाई है।

निर्मल वर्मा के कथा-साहित्य का अनुशीलन करने के उपरान्त कहा जा सकता है कि समकालीन परिवेश में सांस लेने वाला प्रत्येक मानव प्रयोगधर्मिता की सह-अस्तित्ववादी चेतना से जितना संपृक्त है, उतना ही पुराने से हट कर नया है। बहुत ही स्पष्ट है कि निर्मल वर्मा का कथा-साहित्य समाधान के लिये उतना व्यग्र नहीं, जितना कि भोगे हुये यथार्थ से उपजी स्वानुभूति को अभिव्यक्ति देने के लिये उद्दाम प्रतिबद्धता लिये हुये है। वर्मा जी की सृजनधर्मिता ने मानव-मन की अतृप्त वासना की परितृप्ति के लिये छटपटाती मरीचिकाओं एवं परिवेश में व्याप्त संवेदनात्मक अवधारणाओं को एकरूपता प्रदान की है। लगता है चेतना की गहराइयों में परत-दर-परत लालसाओं की अस्मिता की सूक्ष्म पड़ताल में निर्मल वर्मा की लेखनी मन की ढकी-छुपी सच्चाइयों के उत्खनन में तल्लीन बनी रहना चाहती है। परिवेश में व्याप्त साम्प्रतिक सन्दर्भ अपनी नव्य विरचनाओं की जटिलताओं के अनन्त व्यूह सृजित करते रहते हैं, जिन्हें भेदना तो सम्भव नहीं लगता, किन्तु नित-नूतन तथा दुर्भेद्य प्रतीतियों की ऐकान्तिक अनुभूति की जा सकती है।

▬ ▪ ▬ ▪ ▬ ▪ ▬

—::—परिशिष्ट—::—

1- उपजीव्य ग्रंथः-

1. वे दिन	निर्मल वर्मा, पहला संस्करण, 1983 प्रकाशक- राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
2. एक चिथड़ा सुख	द्वितीय संस्करण-1982 राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
3. लाल टीन की छत	द्वितीय संस्करण-1977 राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
4. परिन्दे	चतुर्थावृति-1984 राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
5. जलती झाड़ी	चतुर्थ संस्करण-1971 राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
6. पिछली गर्मियों में	द्वितीय संस्करण-1971 राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
7. मेरी प्रिय कहानियां	चौथा संस्करण-1981 राजपाल एण्ड सन्स, कश्मीरी गेट, दिल्ली।
8. बीच बहस में	तृतीय संस्करण-1984 संभावना प्रकाशन, रेवती कुंज, हापुड़।
9. कौवे और काला पानी	द्वितीय संस्करण-1985 राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।

2- उपस्कारक ग्रंथः-

ग्रंथ	लेखक
10. हिन्दी उपन्यास-आधुनिक विचारधारायें	डा. सुमित्रा त्यागी
11. समकालीन कहानी की पहचान	डा. नरेन्द्र मोहन
12. स्वतंत्रयोत्तर हिन्दी कहानी का समाज-सापेक्ष अध्ययन	डा. कीर्ति शेखर
13. स्वतंत्रयोत्तर हिन्दी उपन्यास	डा. राधेश्याम कौशिक
14. स्वतंत्रयोत्तर हिन्दी कहानी में सामाजिक परिवर्तन	डा. भैरू लाल गर्ग
15. आधुनिकता और मोहन राकेश	डा. उर्मिला मिश्र
16. हिन्दी कहानी-बदलते प्रतिमान	डा. रघुवर दयाल वार्ष्णेय
17. समकालीन कहानी-दिशा और दृष्टि	डा. धनंजय
18. आधुनिक हिन्दी उपन्यास साहित्य में प्रगति चेतना	डा. राजाराम
19. नई कहानी-प्रकृति और पाठ	श्री सुरेन्द्र
20. कहानीकार निर्मल वर्मा	डा. मधु संधू
21. साहित्य का इतिहास दर्शन	डा. नलिन विलोचन शर्मा
22. परम्परा बंधन नहीं	डा. विद्यानिवास मिश्र
23. आधुनिकता के पहलू	डा. विपिन कुमार अग्रवाल
24. आधुनिकता और हिन्दी साहित्य	डा. इन्द्र नाथ मदान
25. आधुनिकता और समकालीन रचना संदर्भ	सं. नरेन्द्र मोहन
26. आधुनिकता बोध और स्वातंत्रयोत्तर कहानी (अप्रकाशित शोध प्रबंध)	डा. सुरेन्द्र शर्मा, मेरठ विश्व विद्यालय, मेरठ
27. हस्तक्षेप	डा. धनंजय वर्मा
28. नयी समीक्षा, नये संदर्भ	डा. नगेन्द्र
29. जलते और उगलते प्रश्न	डा. विशम्भर नाथ उपाध्याय
30. नये प्रतिमान पुराने निष्कर्ष	डा. लक्ष्मी कान्त वर्मा
31. नई कविता के प्रतिमान	डा. लक्ष्मी कान्त वर्मा
32. साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबंध	आलेख महादेवी वर्मा
33. समकालीन साहित्य और आलोचना की चुनौती	डा. बच्चन सिंह
34. बदलते परिवेश	नेमी चन्द्र जैन
35. परम्परा आधुनिकता	आलेख हजारी प्रसाद द्विवेदी

36. नये साहित्य के सन्दर्भ शास्त्र	गजानन माधव मुक्ति बोध
37. तार सप्तक	सं. अज्ञेय
38. चांद का मुंह टेढ़ा	गजानन माधव मुक्तिबोध
39. एक और जिन्दगी	डा. विजय मोहन सिंह
40. मेरी प्रिय कहानियां	कमलेश्वर
41. अमृत और विष	अमृत लाल नागर
42. आधे-अधरे	मोहन राकेश
43. तीन अपाहिज	विपिन कुमार अग्रवाल
44. नई कहानी की भूमिका	कमलेश्वर
45. आधुनिकता बोध और आधुनिकीकरण	डा. रमेश कुन्तल मेध
46. सह चिन्तन	अमृत राय
47. कांग्रेस का इतिहास	पद्मनाभीसीतारमैया
48. प्रेम चतुर्थ	डा. रक्षा पुरी
49. स्वान्त्रयोत्तर कथा साहित्य के सामान्य सन्तुलन	सीता राम शर्मा
50. हरामी के बच्चे	मार्कण्डेय
51. हंसा जाये अकेला	मार्कण्डेय
52. कर्मनाशा की हार	शिव प्रसाद सिंह
53. खोई हुई दिशायें	कमलेश्वर
54. समकालीन साहित्य	डा. बच्चन सिंह
55. खेल खिलौने	राजेन्द्र यादव
56. राजा निवशिया	कमलेश्वर
57. वापसी	ऊषा प्रियवंदा
58. मेरी प्रिय कहानी	मन्नू भण्डारी
59. टट्टू सवार	विजय मोहन सिंह
60. बन्द गली का आखिरी मकान	धर्मवीर भारती
61. मत छुओ	मनु भण्डारी
62. आज का हिन्दी साहित्य संवेदना और दृष्टि	डा. राम दशरथ मिश्र
63. आधुनिकता साहित्य के संदर्भ में	डा. गंगा प्रसाद
64. आधुनिकता और हिन्दी कहानी	डा. इन्द्रनाथ मदान
65. हिन्दी कहानी दो दशक यात्रा	स.डा. रामदशरथ मिश्रा
66. मनोविज्ञान की रूपरेखा	सीताराम जयसवाल
67. कहानी के संवेदन शीलता-सिद्धान्त और प्रयोग	डा. भगवान दास वर्मा
68. नई कहानी दशा और सन्दर्भ	राजेन्द्र यादव

69. विपगथा	अज्ञेय
70. नई कहानी की मूल संवेदना	डा. सुरेश सिन्हा
71. एक दुनिया समानान्तर	राजेन्द्र यादव
72. कहानी-नई कहानी	डा. नामवर सिंह
73. हिन्दी कहानी एक अंगरंग परिचय	महीप सिंह
74. उजाले के उल्लू	महीप सिंह
75. कहानी रूप और संवेदना	राजेन्द्र यादव
76. कहानी परिवेश और प्रभाव	डा. धनंजय
77. समकालीन कथा साहित्य-समाज में संक्रमण	सीताराम शर्मा
78. समकालीन कहानी की पहचान	डा. निरंजन मोहन
79. परिप्रेक्ष्य और प्रतिक्रियायें	डा. लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय
80. गांधीवाद की शव परीक्षा	यशपाल
81. आधुनिक परिवेश और अस्तित्ववाद	डा. शिव प्रसाद सिंह
82. आज की हिन्दी कहानी	डा. धनंजय वर्मा
83. कहानी और कहानी	इन्द्रनाथ मदान
84. नई कहानी के विविध प्रयोग	डा. शितांस
85. हिन्दी कहानी में जीवन मूल्य	डा. रमेश चन्द्र लवानिया
86. आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य और मनोविज्ञान	डा. देवराज उपाध्याय
87. आधुनिक हिन्दी कहानी का परिपार्श्व	डा. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय
88. हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास	डा. गणपति चन्द्र गुप्त
89. लेखक के बहीखाते से	डा. देवी शंकर अवस्थी
90. मानव मूल्य और साहित्य	धर्मवीर भारती
91. हिन्दी कहानी उद्‌भव और विकास	डा. सुरेश सिन्हा
92. हिन्दी कहानी साहित्य में प्रेम	डा. देव कथूरिया
93. हिन्दी कहानी की पहचान और परख	स. डा. इन्द्रनाथ मदान
94. हिन्दी के आंचलिक उपन्यास	प्रकाश बाजपेयी
95. प्रगतिशील साहित्य की समस्या	शिवदान सिंह चौहान
96. उखड़े हुये लोग	राजेन्द्र यादव
97. हिन्दी साहित्य की जनवादी परम्परा	प्रकाश चन्द्र गुप्त
98. सती मैया का चौरा	भैरव प्रसाद गुप्त
99. प्रेत बोलते हैं	राजेन्द्र यादव
100. हिन्दी के समाजवादी उपन्यास	अमृत राय
101. शैली विज्ञान और काव्य का अध्ययन	कृपा शंकर सिंह

102. कब तक पुकारूं	रागेय राघव
103. दीवारें	उपेन्द्र नाथ अश्क
104. सत-सरोधज	प्रेम चन्द्र
105. आकाशदीप तथा अन्य कहानियां	जय शंकर प्रसाद
106. जानवर और जानवर	मोहन राकेश
107. पटरियां	फणीश्वर नाथ रेणु
108. काठ का सपना	राजेन्द्र प्रसाद
109. सेवा सदन	प्रेम चन्द्र
110. कंकाल	प्रसाद
111. त्याग पत्र	जैनेन्द्र
112. परदे की रानी	इलाचन्द्र जोशी
113. जहां लक्ष्मी कैद है	राजेन्द्र यादव
114. अंधेरे बंद कमरे	मोहन राकेश
115. मास का दरिया	राजेन्द्र यादव
116. गुनाहों का देवता	धर्मवीर भारती
117. हिन्दी उपन्यास और यथार्थवादी	डा. त्रिभुवन सिंह
118. आधुनिक भाव बोध की संज्ञा	अमृत राय
119. अस्तित्ववाद और द्वितीय समरोत्तर हिन्दी साहित्य	डा. श्याम सुन्दर मिश्रा
120. अपने-अपने अजनबी	अज्ञेय
121. अंधा युग	धर्मवीर भारती
122. बीसवीं-शताब्दी हिन्दी साहित्य नये सन्दर्भ	डा. लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय
123. देखा, सोचा, समझा	यशपाल
124. समीक्षा दर्शन	डा. नारायणदास समाधिया
125. आधुनिक साहित्य	नन्द दुलारे बाजपेयी
126. प्रगतिशील साहित्य के मानदण्ड	रागेय राघव

3- पत्र पत्रिकायें:-

1. क ख ग	जनवरी 1964
2. सारिका	मार्च 1973, सितम्बर 1971
3. आदेश	अंक 11, 1956
4. संचेतना	अक्टूबर 1964, अप्रैल 1966
5. ज्ञानोदय	मार्च 1970
6. कहानी	जनवरी 1955
7. लहर	जुलाई 1964
8. नई धारा	मार्च 1966
9. धर्मयुग	जून 1964, नवम्बर 1966
10. नई कहानियां	अप्रैल 1965, दिसम्बर 1968
11. विकल	नवम्बर 1968
12. नवभारत टाइम्स	नवम्बर 1986 (साक्षात्कार)
13. साप्ताहिक हिन्दुस्तान, उत्तरार्द्ध, उत्तरगाथा, कादम्बिनी, आलोचना, जनयुग, ललाम, नवनीत आदि	